श्रीमद् भागवत पुराण
(शुक सागर)
गोल्ड बुक्स
भगवान श्रीकृष्ण की अलौकिक लीलाओं का सरल सचित्र वर्णन

श्रीमद्‌भागवत पुराण

(शुक सागर)

'श्रीमद्‌भागवत पुराण' मानव सभ्यता के इतिहास में विश्व के प्राचीनतम धर्म-ग्रन्थों में से एक है। जब-जब इस पृथ्वी पर पाप ने सिर उठाया है भगवान विष्णु ने किसी-न-किसी रूप में अवतार लेकर पाप को जड़ से नष्ट कर एक नये युग का प्रारम्भ किया है। 'श्रीमद्‌भागवत पुराण' में भगवान विष्णु के कृष्णावतार की अपरम्पार महिमा एवं अद्‌भुत चमत्कारों का सचित्र वर्णन है। भगवान विष्णु की अद्‌भुत लीलाओं का सरल, सचित्र एवं सटीक वर्णन करता— 'श्रीमद्‌भागवत पुराण'।

श्रीमद्भागवत पुराण

(शुक सागर)

प्रस्तुति :

पं. विवेक श्री कौशिक 'विश्वमित्र'

4537, दाईवाड़ा, नई सड़क,
दिल्ली-110006

कदम वृक्ष पर बैठे बांसुरी बजाने में मस्त भगवान श्रीकृष्ण

श्रीमद्भागवत पुराण का महात्म

पहला अध्याय

महामुनी, परमज्ञानी, सूत जी के पास नैमिषारण्य क्षेत्र में एक बार भगवत् चर्चा के रसिया शौनक मुनि उपस्थित हुए और उनसे भागवतपुराण सुनाने का आग्रह किया। भगवान श्रीकृष्ण की प्राप्ति करा देने वाला, ज्ञानदायक, पवित्र व कल्याणकारी शाश्वत साधन पूछा। उनका शुभ उद्देश्य जान कर सूत जी बोले—"तुम्हारे भगवतप्रेम और लोकहित के कारण, मैं मृत्यु के भय और अज्ञान के अंधकार को नष्ट कर भक्ति प्रवाह की वृद्धि करने वाला—सम्पूर्ण सिद्धांतों का निष्कर्ष सुनाता हूं। मानसिक शुद्धि का यह सर्वश्रेष्ठ उपाय है और भगवान श्रीकृष्ण की अनुकम्पा को निश्चित ही प्राप्त कराता है।"

महाज्ञानी शुकदेव जी ने जब राजा परीक्षित के उद्धार के लिए यह भागवत अमृत कथा सुनाई थी, तब अपना कार्य निकालने में चतुर देवताओं ने राजा परीक्षित को उद्धारार्थ अमृत देने और स्वयं श्री शुकदेव जी से यह कथा सुन लेने का निवेदन किया था, किन्तु शुकदेव जी ने देवताओं को कथा श्रवण के लिए अधिकारी न देख कर उनका निवेदन स्वीकार नहीं किया था। इस प्रकार यह देवताओं के लिए दुलर्भ कथा है। इसी कथा के प्रभाव से राजा परीक्षित की मुक्ति हुई थी। तब स्वयं ब्रह्मा जी ने विस्मित होकर विवेक की तराजू में भक्ति, मुक्ति व ज्ञानदायक समस्त साधनों को तोला था और भागवत कथा को अपने महात्म के कारण सबसे गुरु पाया था। सप्ताह विधि से इसका श्रवण और भी प्रभावी होता है। इसका उपदेश सनकादि ऋषियों ने नारद जी को दिया था, यद्यपि नारद पूर्व ही इस कथा का श्रवण ब्रह्मा जी के मुखकमल से कर चुके थे, किन्तु सप्ताह विधि से श्रवण का उपदेश उन्हें बाद में सनकादि ने ही दिया था।

शौनक ऋषि के जिज्ञासा प्रकट करने पर सूत जी ने—उन्हें वह कथा सुनाई जो उन्हें उनके गुरु शुकदेव जी ने सुपात्र व अनन्य जान कर एकान्त में सुनाई थी।

एक दिन सनक, सनातन, सनन्दन व सनत्कुमार आदि चारों निर्मल ऋषि एक

विशाल नगर में सत्संग हेतु पधारें। वहां उन्होंने नारद जी को बहुत उदास और व्याकुल देखा। कारण पूछने पर नारद जी बोले—"मैं सर्वोत्तम लोक जान कर पृथ्वी पर विचरण हेतु आया था, किन्तु यहां कलियुग के प्रभाव से उत्पन्न विसंगतियां और मर्यादाओं का नाश हुआ देख, मन खिन्न हो गया। तब मैं श्रीकृष्ण की लीला स्थली रह चुकी यमुना के तट पर इस उद्देश्य से आया कि कलियुग के प्रभावों व दोषों से भ्रष्ट, दूषित व विकृत पृथ्वी को देख संतप्त हुआ मन वहां शांति पाएगा, किन्तु वहां मैंने एक विचित्र ही दृश्य देखा।"

"मैंने देखा—एक अत्यन्त सुन्दर तरुणी अचेतावस्था में पड़े, गहरी सांसें लेते दो वृद्धों की सेवा कर उन्हें चैतन्य करने का प्रयास कर रही है और रो रही है। उसके चारों ओर सैंकड़ों अन्य स्त्रियां उसे पंखा झलती हुई सांत्वना दे रही हैं। मैं यह देख जिज्ञासावश उधर बढ़ा तो वह तरुणी मुझे देखते ही पहचान गई। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उस तरुणी का नाम भक्ति है। वे दोनों वृद्ध उसके ज्ञान और वैराग्य नामक दो पुत्र हैं। जो समय के फेर से जर्जर हो गए हैं। भक्ति की सेवा करने वाली अन्य स्त्रियां वास्तव में गंगा आदि नदियां हैं। उन देवियों से सेवित होते हुए भी अशान्त होने वाली भक्ति ने मुझसे अपना वृत्तान्त कहा—वह द्रविड़ देश में उत्पन्न, कर्नाटक में पली, महाराष्ट्र में सम्मानित हुई, किन्तु गुजरात में बूढ़ी हो गई। घोर कलियुग के दुष्प्रभाव से पाखण्डियों ने वहां उसका अंग-भंग कर दिया। बहुत समय तक वहीं उपेक्षित व दीनावस्था में रहने से वह अपने पुत्रों सहित निस्तेज और दुर्बल हो गई। फिर जब से वह वृन्दावन में आई, तब से स्वस्थ हो पुनः सुन्दर व युवा हो गई, किन्तु उसके पुत्र वैसे ही रहे। अब वह वृन्दावन से अन्यत्र जाना चाहती थी, किन्तु अपने युवा होने व पुत्रों के वृद्ध होने पर अचम्भित और शोकग्रस्त थी। तब उसने मुझसे इसका कारण जानना चाहा।"

सूत जी ने आगे कहा—"मुनिवर! नारद जी ने क्षण भर में ही कारण जान कर कहा—'दारुण कलियुग के प्रभाव से योगमार्ग, तप और सदाचार आदि सब लुप्त हो गए हैं। लोग दुष्कर्मों में फंस गए हैं। मर्यादाओं का नाश हो जाने से सज्जन दुःखी और दुर्जन सुखी हो रहे हैं। विषयों में अंधे लोगों से उपेक्षित होकर तुम्हारे पुत्र और तुम जर्जर हो रहे थे, किन्तु सर्वत्र भक्ति के नर्तन से व्याप्त श्रीकृष्ण की लीला भूमि वृन्दावन के संयोग के प्रभाव से तुम फिर नवीन तरुणी हो गई, फिर भी तुम्हारे इन दोनों पुत्रों-वैराग्य और ज्ञान को चाहने वाला यहां भी कोई नहीं है, अतः इन दोनों की अवस्था अभी जर्जर ही है।"

तब भक्ति ने नारद से पूछा—"राजा परीक्षित ने ऐसे पापी कलियुग को आने ही क्यों दिया? दयालु भगवान विष्णु भी यह अधर्म कैसे देख पाते हैं? कोई उपाय क्यों नहीं करते?"

नारद जी बोले—"हे कल्याणी! भगवान कृष्ण के इस भूलोक से पधारते ही कलियुग पृथ्वी पर आ डटा था। परीक्षित की दृष्टि पड़ते ही वह उनकी शरण में आ

गया। अन्य युगों में तप, योग और समाधि आदि उपायों द्वारा भी जो फल अत्यन्त कठिनाई से मिलता है, वही कलियुग में श्रीहरि के कीर्तन मात्र से ही सुप्राप्य होता है। ऐसा सोच सारहीन-कलियुग को भी परीक्षित ने एक ही दृष्टि में सारयुक्त जाना और आगे उत्पन्न होने वाले जीवों के हितार्थ ही कलियुग को आने दिया, उसका वध नहीं किया। अब मर्यादाओं के नाश व कुकर्मों की वृद्धि से सभी वस्तुएं सारहीन हो कर बीजहीन भूसी के समान हो गई हैं। ब्राह्मणों के लोभ के कारण कथा का सार, नास्तिकता के कारण तीर्थों और पूजा आदि का सार, जितेन्द्रीय न रहने के कारण तप का सार तथा मन पर नियंत्रण न रहने के कारण योग/ध्यान का सार एवम् यश कामना आदि स्वार्थों के कारण दान का सार भी चला गया है। यह कलियुग का प्रभाव है, कोई उसके लिए दोषी नहीं। अतः भगवान विष्णु तटस्थ बने हुए हैं।''

भक्ति ने तब नारद जी को प्रणाम करते हुए कहा—''देवर्षि! आप धन्य हैं। साधुओं का दर्शन ही समस्त सिद्धियों का परमकारण है। आपके सम्भाषण से मुझे बहुत शांति मिली। मेरा सौभाग्य कि आपके दर्शन हुए। आपको मेरा प्रणाम है।''

दूसरा अध्याय

नारद जी बोले—''चिन्ता मत करो देवि! श्री कृष्ण के चरण कमलों का चिन्तन करो। उनके अनुग्रह से तुम्हारे समस्त दुःख दूर हो जाएंगे। तुम तो भगवान को अति प्रिय हो। तुम्हारे वशीभूत हो भगवान नीचों के घरों में भी चले जाते हैं। सतयुग, त्रेता व द्वापर में ज्ञान और वैराग्य मुक्ति के साधन थे, परन्तु कलियुग में तुम्हीं मोक्ष दिलाने वाली हो, इसीलिए जगदीश्वर ने तुमको रचा है। अपने भक्तों का पोषण करने की आज्ञा देकर तुम्हें ज्ञान और वैराग्य रूप में पुत्र दिए और मुक्ति को दासी के रूप में तुम्हें दिया है। तुम सतयुग से द्वापर तक अपने पुत्रों एवं दासी के साथ आनन्द से रहीं। कलियुग में पाखण्ड रोग से पीड़ित होकर क्षीण हो जाने वाली अपनी दासी-मुक्ति को तुमने वापस वैकुण्ठ भेज दिया। इस लोक में अब वह तुम्हारे स्मरण करने से ही आती है। कलियुग के प्रभाव से उपेक्षित होकर तुम्हारें पुत्र वृद्ध व निरुत्साह हो गए हैं, मैं इनके नवजीवन का कुछ उपाय करूंगा। तुम व्यथित न होओ।'

नारद जी ने आगे कहा—''भक्ति देवी! तुम जिनके हृदय में निवास करती हो उन्हें कोई भय, शोक आदि नहीं रहता और वे निश्चित ही श्रीहरि का सायुज्य पाते हैं। तुमसे विमुख हुआ मनुष्य निश्चय ही तीनों लोकों में दुःखी होता है। मैं इस लोक में तुम्हारा और तुम्हारे महात्म का प्रचार करूंगा, क्योंकि इस युग में मात्र तुम्हीं मनुष्य के कल्याण का आधार हो।''

नारद जी के वचनो से भक्ति को पुष्टता व शांति प्राप्त हुई। उसने नारद जी के हृदय में सदा वास करने का वचन दिया और अपने पुत्रों को सचेत करने की प्रार्थना की।

सूत जी आगे बोले—''तब नारद जी ने ज्ञान और वैराग्य के कान मे 'उत्तिष्ठ'

(उठो/जागो) कहा और वेदध्वनि, वेदान्तघोष तथा गीता पाठ द्वारा उन्हें जगाया। इससे उन्हें चेत तो हुआ मगर उनका आलस्य, निद्रा और वृद्धावस्था दूर न हुई। तब नारद जी को चिन्तित देख कर यह भविष्यवाणी हुई—''हे मुनि! खेद मत करो। तुम्हारा प्रयास सफल होगा। तुम संत शिरोमणी द्वारा बताए सत्कर्म का अनुष्ठान करो, उससे इनकी निद्रा और वृद्धावस्था दूर होगी तथा भक्ति का प्रसार भी होगा।''

नारद जी को भविष्यवाणी सुन कर प्रसन्नता हुई, किन्तु हे शौनक! उन्हें गुप्त संकेत में कही गई बात का मर्म समझ न आया। वे इसीलिए दुःखी और चिन्तित होकर वहां से चल दिए और मार्ग में मिलने वाले संतों से आकाशवाणी द्वारा निर्देशित उस गुप्त साधन को पूछने लगे, किन्तु सभी ने असमर्थता प्रकट की। तब नारद जी बदरीवन में चले आए और सनकादि मुनियों से भेंट की।

नारद जी ने सनकादि ऋषियों से कहा—''आप देखने में भले ही 5-5 वर्ष के बालक जान पड़ते हैं, किन्तु हैं पूर्वजों के भी पूर्वज। पूर्वकाल में आपके भौं टेढ़ी करने मात्र से भगवान विष्णु के द्वारपाल जय और विजय पृथ्वी पर गिर पड़े थे, बाद में आपकी ही कृपा से उन्हें पुनः वैकुण्ठ लोक प्राप्त हुआ। अतः, हे मुनीश्वरों! आप ही आकाशवाणी का मर्म समझ सकते हैं, कृपाकर मुझे बताइए।''

तब सनकादि ऋषियों ने कहा—''आप विरक्तों के शिरोमणी हैं। आपका भक्ति के उद्धार के लिए प्रयास करना सर्वथा उचित है। आप भगवान के भक्त हैं और भक्त को भक्ति की सम्यक स्थापना करनी ही चाहिए। ऋषियों ने यूं अनेक मार्ग व साधन प्रकट किए हैं, जो कष्ट साध्य हैं और अन्ततः स्वर्ग प्राप्ति तक ही जाते हैं, किन्तु ईश्वर प्राप्ति का साधन गुप्त ही रह गया है। वह सरल मार्ग हम आपको बताते हैं। पंडितों ने—द्रव्य यज्ञ, तपोयज्ञ व योग यज्ञ को स्वर्ग प्राप्ति का ही उपाय माना है और ज्ञानयज्ञ को ही सत्कर्म सूचक माना है। हे नारद—वह मुक्तिदायक सत्कर्म श्रीमद्भागवत परायण है। उसके शब्द सुनने मात्र से ही भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को बहुत बल मिलता है। सिंह की दहाड़ से जैसे भेड़िए भाग जाते हैं, वैसे ही श्रीमद्भागवत की ध्वनि से कलियुग के समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान और वैराग्य को पुष्ट करने वाला और भक्ति को भी आनन्द देने वाला एक यही सहज और प्रभावशाली उपाय है।''

नारद जी ने तब यह शंका प्रकट की कि ज्ञान और वैराग्य को जब वेदोच्चार, वेदान्तध्वनि व गीतापाठ भी जागृत नहीं कर पाए तब भागवत के श्रवण से वे कैसे जाग सकेंगे? क्योंकि समस्त पुराण कथाएं अन्ततः वेदों का ही सारांश हैं। तब सनकादि ऋषियों ने बताया कि रस जिस प्रकार वृक्ष की जड़ों, तनों, शाखाओं, पत्तियों आदि सभी अवयवों में व्याप्त रहता है किन्तु उस स्थिति में उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता लेकिन वही रस उनसे पृथक होकर जब फल के रूप में आता है तभी उसका आस्वादन किया जा सकता है। उसी प्रकार यह भागवत कथा है। यह वेदवृक्ष का ही फल है किन्तु वेदज्ञान और तथ्यरस भागवत कथा के रूप में ही सुगम्य है। पूर्व काल में वेदव्यास जब अज्ञान सागर में फंसे

थे तब स्वयं नारद जी ने ही चार श्लोकों में इस कथा का उपदेश दिया था, जिससे व्यास जी की समस्त चिन्ताएं दूर हो गई थीं। इस प्रकार सनकादि ऋषियों ने नारद जी को पूर्वकाल का संस्मरण भी याद दिला कर कहा—"अतः आप आश्चर्य न करें। भय, शोक, अज्ञान व दुःख का विनाश करने वाला श्रीमद्भागवत पुराण ही उन्हें सुनाएं। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के पोषण के लिए इससे सरल, प्रभावी तथा उत्तम कोई भी साधन नहीं है।'

तब नारद जी ने सत्संग की महिमा बताते हुए उनको प्रणाम किया और सनकादि द्वारा—ज्ञान व वैराग्य के उद्धार हेतु बताए गए उपाय को करने का निश्चय किया।

तीसरा अध्याय

नारद जी ने तब शुकदेव द्वारा कहे गए भागवतपुराण या शुकशास्त्र की महिमा पूछी। यह भी पूछा कि यह कथा किस विधि से, कहां और कितने दिनों में कही जाए?

तब सनकादि ऋषियों ने हरिद्वार के समीप स्थित आनन्द घाट को इस कथा के अनुष्ठान के लिए सबसे उपयुक्त बताया। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य इस कथा अमृत के सेवन हेतु स्वयं ही वहां पहुंचेंगे, क्योंकि जहां भागवत कथा होती है, ये तीनों वहां स्वतः ही आ जाते हैं।

फिर तो नारद सहित सनकादि भी भागवतकथा सुधा का पान करने को तुरन्त गंगातट पर आ गए। भूलोक, देवलोक तथा ब्रह्मलोक में भी यह शुभ समाचार फैल जाने से रसिक हरिभक्त वहां दौड़-दौड़ कर आ पहुंचे। भृगु, वशिष्ठ, परशुराम, विश्वामित्र, च्यवन, गौतम, देवरात, मेघातिथि, मार्कण्डेय, देवल, शाकल, पिप्पलाद, पराशर, व्यास, छायाशुक, जह्नु, जाजली आदि सभी ऋषि अपने परिवार व शिष्यों सहित वहां आ पहुंचे। समस्त वेद, पुराण, नदियां, पुण्यसरोवर, पर्वत, क्षेत्र, दिशाएं, वन आदि मूर्त रूप में वहां आ पहुंचे। दानव, दैत्य, गंधर्व, देव आदि सभी वहां आ गए। पूजा आदि के बाद विधिवत स्थान ग्रहण कर सभी एकाग्रचित हो नारद जी को सुनने लगे।

सर्वप्रथम सनकादि ऋषियों ने नारद जी को इस कथा का महात्म बताया और कहा—"इस पुराण में बारह स्कन्ध तथा कुल अठारह हजार श्लोक हैं। श्री शुकदेव और राजा परीक्षित का संवाद है। मनुष्य अंधकार में तभी तक भटकता और संसार चक्र में फंसा रहता है, जब तक इस कथा को सुनता नहीं है। समस्त पापों को नाश कर मुक्ति दिलाने वाला और श्री विष्णु को हृदय में बसा देने वाला यही शुकशास्त्र है। हजारों अश्वमेध यज्ञों से प्राप्त होने वाला फल इसके फल के 16वें अंश के बराबर भी नहीं है। कोई तीर्थ इसकी समता नहीं कर सकता। इसका चौथाई श्लोक भी नित्य नियमपूर्वक पढ़ने से परम गति प्राप्त होती है। जो इस कथा का थोड़ा-सा भी रसास्वादन न करे वह मनुष्य तो केवल माता को प्रसव वेदना देने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। ॐकार, गायत्री, वेदत्रयी, पुरुषसूक्त, द्वादशाक्षर मन्त्र, बारह मूर्तियों वाले भगवान भास्कर, श्रीमद्भागवत, प्रयाग, गौ, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, द्वादशतिथि, तुलसी, काल और भगवान पुरुषोत्तम—पंडितजन इनमें तत्वतः कुछ भेद नहीं मानते। इसे श्रवण करने के लिए दिनों

का कुछ नियम नहीं है, इसे तो सदा ही श्रवण करना चाहिए। सत्यभाषण व ब्रह्मचर्य पालन करते हुए इसका श्रवण करना अति उत्तम है। ऐसा सम्भव न हो तो शुकदेव द्वारा बताई गई विधि से सप्ताह श्रवण करें। माघमास में अथवा श्रद्धापूर्वक कभी भी श्रवण करने से प्राप्त होने वाला फल सप्ताह विधि से श्रवण करने से भी मिलता है। तप, ज्ञान, यज्ञ, ध्यान, व्रत, तीर्थ, योग आदि कुछ भी भागवत के सप्ताह श्रवण से श्रेष्ठ नहीं है अर्थात् यही सर्वश्रेष्ठ है।''

सूत जी द्वारा ऐसा सुनकर शौनक ऋषि ने आश्चर्य करते हुए पूछा—''प्रभो! अवश्य ही यह शास्त्र ब्रह्माजी के भी आदिकारण भगवान नारायण का निरूपण करता है, किन्तु मोक्ष की प्राप्ति में यह ज्ञान आदि अन्य सभी उपायों को उपेक्षित कर इस युग में उनसे भी आगे कैसे हो गया?''

तब सूत जी बोले—''श्रीमद्भागवत वास्तव में श्रीहरि की ही साक्षात् शब्दमयी मूर्ति है। जब भगवान् कृष्ण इस पृथ्वी को त्याग कर वैकुण्ठ सिधारने लगे, तब उद्धव जी ने उनसे सज्जनों के कल्याण, भक्तों के हित और सृष्टि की रक्षा के लिए पृथ्वी पर ही ठहर जाने का निवेदन किया था, तब भक्तों के लिए भगवान कृष्ण ने अवलम्ब व्यवस्था के लिए अपनी समस्त शक्ति भागवत में रख दी थी। वे अन्तर्ध्यान होकर भागवत सागर में प्रविष्ट हो गए थे। अतः यह भागवत—साक्षात श्री भगवान को ही शब्दमयी मूर्ति होने से अन्य सभी साधनों से श्रेष्ठ हो गई। भगवान विष्णु की जिस माया का देवता भी पार नहीं पा सकते, उसी माया से मनुष्य भागवत के माध्यम से मुक्त हो जाता है। अतः यह सर्वोत्तम साधन है।''

शौनक ऋषि को आश्वस्त करके सूत जी ने आगे कहा—''हे मुनि! जब सनकादि मुनि भागवत के सप्ताह श्रवण का महात्म बता रहे थे, तभी तरुणावस्था को प्राप्त हुए अपने पुत्रों ज्ञान एवं वैराग्य के साथ भक्ति देवी वहां भगवान के विभिन्न नामों का उच्चारण करती हुई प्रकट हुईं। उन्होंने भागवत अर्थों के आभूषण पहने हुए थे। उनको अकस्मात प्रकट हुआ देख, वहां उपस्थित अन्य सभी विस्मय करने लगे, तब सनकादि मुनियों ने बतलाया कि भक्ति देवी अपने पुत्रों सहित अभी कथा के अर्थ से ही प्रकट हुई हैं। यह सुनकर भक्ति देवी सविनय बोलीं—''मैं कलियुग में नष्ट प्रायः हो गई थी, आपने कथामृत से सींचकर हमें फिर पुष्ट किया है। अब आप ही बताइए मैं कहां वास करूं?''

तब सनकादि ऋषियों ने कहा—''तुम भक्तों को भगवान का स्वरूप प्रदान करने वाली और उनका साक्षात्कार कराने वाली हो, अतः नित्य विष्णु भक्तों के हृदय में ही वास करो। कलियुग के दोषों और प्रभावों से तुम वहां सुरक्षित रहोगी।'' तब भक्ति ने ऐसा ही किया। अतः हे शौनक! इस पुराण की महिमा कहां तक कहें, इसे तो सुनने वाला, सुनाने वाला, पढ़ने वाला और लिखने वाला—सभी भगवान कृष्ण की समता पा जाते हैं।

प्रथम स्कन्ध

मंगलाचरण

जिनसे इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति व विलय होता है, जो समस्त गोचर व अगोचर पदार्थों में व्याप्त होते हुए भी उन सबसे पृथक हैं। योगी, सिद्ध, मुनि, पंडित और विद्वान भी जिनके सम्बन्ध में विभ्रम व मोह के शिकार हो जाते हैं। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का पोषण करने, अज्ञान व पाप को नष्ट करने, भय का नाश कर मोक्ष प्रदान करने वाला, यह श्रीमद्‌भागवत पुराण जो वेदव्यास द्वारा निर्मित है और शुकदेव जी के श्रीमुख से सम्बद्ध हो जाने से तोते के कुतरे फल के समान और भी रसपूर्ण व अमृतमयी हो गया है—जिन आदिकारण भगवान विष्णु के स्वरूप का निरूपण करता है और स्वयं भगवान विष्णु अपनी समस्त शक्तियों सहित इस भागवत पुराण में शब्दमयी मूर्ति के रूप में विश्राम कर रहे हैं—उन जगदीश्वर भगवान नारायण का हम ध्यान करते हैं।

कथा आरम्भ

एक बार श्री विष्णु व देवताओं के परमपुण्यमय क्षेत्र नैमिषारण्य में शौनक आदि मुनियों ने भगवत् प्राप्ति की शुभेच्छा से हजार वर्षों में सम्पन्न होने वाले महायज्ञ का अनुष्ठान किया। तब परमज्ञानी सूत जी से ऋषियों ने कलियुगी जीवों के कल्याण हेतु उनके अंतःकरण की शुद्धि, पापमोचन, कल्याण और मोक्षप्राप्ति का सहज उपाय पूछा। साथ ही भगवान विष्णु के अवतारों की लीलाओं को भी सुनना चाहा और यह प्रश्न भी किया कि योनेश्वर श्रीकृष्ण के अपने धाम को लौट जाने के बाद अब धर्म किसकी शरण में है?

तब सूत जी बोले—"ऋषियों! आपने समस्त विश्व के हित में बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। यह प्रश्न श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में है और इससे भली प्रकार आत्मशुद्धि हो

जाती है। मनुष्यों के लिए सर्वोत्तम धर्म वही है, जिससे कृष्ण की भक्ति उत्पन्न हो। धर्म का फल मोक्ष है। कर्मों की गांठ का बन्धन ही जीव को संसार में आवागमन को विवश करता है। अतः विचारवान पुरुष भगवान के चिन्तन की तलवार से उस गांठ को काट डालते हैं। ज्ञान ही जीवन का फल और उद्धार का मार्ग है। वेद-वेदान्त आदि के ज्ञान का सार ही भागवत है। यह परमगोपनीय व रहस्यात्मक पुराण है। शुकदेव जी इसका वर्णन करने वाले तथा वेदव्यास जी इसको निर्मित्त करने वाले हैं। यह भगवान विष्णु के अवतारों एवं विभिन्न लीलाओं और ज्ञान का अक्षुण्ण भंडार है और कलियुग के समस्त दोषों का नाश कर पढ़ने-सुनने वालों और सुनाने वालों का अज्ञान, भय, पाप, दुर्गुण व दुर्भाग्य नष्ट कर, अन्ततः मोक्ष देने वाला है। कलियुग में जीवोद्धार का एकमात्र सहज व अचूक साधन है। हृदय में आत्मरूप नारायण का साक्षात्कार करा कर समस्त संदेहों तथा बंधनों का निवारण कर शुद्ध, पवित्र और मुक्त कर देने वाला है और भगवान कृष्ण पृथ्वी लोक को त्यागते समय उद्धव जी की प्रार्थना पर भक्तों व सज्जनों के अवलम्ब व धर्मरक्षार्थ इसी भागवत पुराण में अपनी समस्त शक्तियों सहित व्याप्त हो गए थे। अतः यही धर्म का एकमात्र आश्रय है। जिस सयम शुकदेव का यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं हुआ था और वे सन्यास ग्रहण करने को जाने लगे थे, तब कातर होकर उनके पिता व्यास जी द्वारा 'बेटा-बेटा' कहकर पुकारे जाने पर तन्मयता के कारण शुकदेव जी की ओर से वृक्षों ने उत्तर दिया था। ऐसे सबके हृदय में स्थित शुकदेव जी को प्रणाम करके मैं वही भागवत कथा आपसे कहता हूं, जिसका चौथाई भाग भी नित्य नियमपूर्वक पढ़ने से जीव बन्धन रहित हो जाता है और जिसे कहने वाला, सुनने वाला, लिखने वाला व पढ़ने वाला कृष्ण के समान ही हो जाता है। उस श्रीमद्भागवत पुराण को एंकाग्रचित होकर सुनिए।"

सूत जी आगे बोले—"सृष्टि के आदि में निर्माणेच्छा से भगवान ने दस इन्द्रियां, एक मन और पंचभूत—इन सोलह कलाओं से युक्त, महतत्व आदि से निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया। कारण-जल में शयन करते हुए योगनिद्रा का विस्तार किया, जिससे उनकी नाभि से प्रजापतियों के अधिपति ब्रह्मा जी को उत्पन्न करने वाला एक कमल उत्पन्न हुआ। भगवान के सहस्रों हाथ, पैर, मुंह, आंख, नाक, कान आदि अंग वाले उसी विराट रूप के अंग-प्रत्यंगों में समस्त लोकों की कल्पना की गई है और इसी पुरुष रूप को नारायण कहा गया है। इसी विराट नारायण नामक रूप से समस्त प्राणियों व जीवों की, समग्र योनियों की सृष्टि होती है। यही रूप अनेक अवतारों का अक्षय कोष है।"

"सर्वप्रथम इन्हीं नारायण ने कौमारसर्ग में—सनक, सनातन, सनन्दन व

सनत्कुमार—इन चार ब्राह्मणों के रूप में अवतार लेकर अति कठिन अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया। दूसरी बार पृथ्वी के रसातल में चले जाने पर उन्होंने वाराहावतार लेकर पृथ्वी का उद्धार किया। तीसरी बार ऋषियों की सृष्टि में वे नारद के रूप में अवतरित हुए और कर्मों के द्वारा ही कर्मों से मुक्ति का वर्णन करने वाले शाश्वत-तन्त्र का उपदेश दिया। जिसे 'नारद-पांचरात्र' भी कहा जाता है। चौथा अवतार धर्म पत्नी मूर्ति के गर्भ से उन्होंने नर व नारायण रूप में लिया। पांचवें अवतार में समय के फेर से लुप्त हो चुके, तत्वों का निर्णय करने वाले—सांख्यशास्त्र के सिद्धों के स्वामी कपिल मुनि के रूप में—आसुरि नामक ब्राह्मण को उपेदश दिया। छठा अवतार अनुसूइया के वर मांगने पर उन्होंने अत्रिपुत्र दत्तात्रेय का लिया और अलर्क राजा व प्रह्लाद को ब्रह्मज्ञान का उपेदश दिया। सातवें अवतार में वे रुचि प्रजापति की आकूति नामक पत्नी के द्वारा यज्ञ रूप में प्रकट हुए। तब उन्होंने अपने पुत्र याम आदि देवताओं सहित स्वयंभुव मन्वन्तर की रक्षा की। राजा नाभि की पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव के रूप में आठवां अवतार लेकर परमहंस मार्ग दिखाया। नौवां अवतार ऋषियों की प्रार्थना पर उन्होंने राजा पृथु के रूप में लिया और पृथ्वी से औषधियों का दोहन करके समस्त जीवों का कल्याण किया।''

''हे शौनक आदि ऋषियों! चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में त्रिलोकी को समुद्र में डूबने से बचाने के लिए वे मत्स्य रूप में अवतरित हुए। इसी दसवें मत्स्यावतार में पृथ्वी रूपी नौका पर बैठाकर अगले मन्वन्तर के अधिपति वैवस्वत मनु की भी उन्होंने रक्षा की। देव-दानवों के समुद्र मंथन के समय मंदराचल को पीठ पर धारण करने के लिए एक कछुए के रूप में उन्होंने ग्यारहवां अवतार लिया। समुद्र मंथन के ही समय धनवन्तरी के रूप में उन्होंने बारहवां और मोहिनी के रूप में तेरहवां अवतार लिया। चौदहवां नरसिंह अवतार और पंद्रहवां वामनावतार लिया। फिर परशुराम, वेदव्यास, श्रीराम, बलराम और श्रीकृष्ण के रूप में उनके पांच अवतार और हुए। ऋषियों! मगध (बिहार) में अजन के पुत्र के रूप में वे इक्कीसवां बुद्ध अवतार लेंगे। कलियुग के अन्त के समय विष्णुयज्ञ नामक ब्राह्मण के यहां उनका बाईसवां कल्कि अवतार भी होगा।'' (भगवान विष्णु सम्बन्धित कुछ अन्य पुराणों में हंस व हयग्रीव के दो और अवतार मिलाकर कुल 24 अवतारों का भी वर्णन आता है, किन्तु यहां बाईस ही गिनाए गए हैं।)

''हे ऋषियों! भगवान विष्णु के असंख्य अवतार हैं। प्रजापति, मनुपुत्र, देवता, ऋषि एवं शक्तिशाली सम्राट भी विष्णु जी के अवतार ही हैं। मैंने आपसे प्रमुख अवतारों की ही चर्चा की है।

''बादल जैसे वायु पर आश्रित रहता है, किन्तु अविवेकी जन बादल को आकाश

में होना समझते हैं, इसी प्रकार सबके साक्षी आत्मा में स्थूल दृश्य रूप जगत को समझते हैं, किन्तु स्थूल शरीर से परे सूक्ष्म शरीर है, जो इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है। आत्मा के प्रवेश होने पर यही सूक्ष्म शरीर जीव कहलाता है और जन्म-जन्मान्तर प्रक्रिया से गुजरता है। यह स्थूल व सूक्ष्म शरीर अविद्या से ही आत्मा में आरोपित है। जब आत्मस्वरूप के ज्ञान से यह आरोप हट जाता है, तभी ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। अतः अविद्या ही ब्रह्म साक्षात्कार में बाधक है। जन्म व कर्म रहित भगवान के अप्राकृत जन्म तथा कर्मों का वर्णन ही वेदों का अतिगुप्त रहस्य है। भगवान की लीला अमोघ है। प्राणियों के अन्तःकरण में रहकर वे अपनी ही लीला को ग्रहण करते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होते, क्योंकि वे स्वयं ही जगत के कारण हैं, स्वयं ही जगत भी हैं, फिर भी जगत से परे हैं। नट या जादूगर की करामातों को जैसे साधारण मनुष्य समझ नहीं पाता, वैसे ही भगवान की लीलाओं के सार को कुबुद्धिजन तर्क युक्तियों द्वारा नहीं जान पाता। वेदों व इतिहासों का सार संग्रह ही महर्षि वेदव्यास ने इस पुराण में किया है, कलियुग में अज्ञानतम नाशक सूर्य यही हैं। इसे शुकदेव ने राजा परीक्षित को सुनाया था, तभी उनकी अनुमति से मैंने भी यह सुना था।''

अपनी बुद्धि व सामर्थ्यानुसार जो कुछ मैं इस पुराण को समझ पाया, वह आपसे कहता हूं—''हे ऋषियों! मनुष्यों की बौद्धिक असमर्थता को देखकर सर्वप्रथम व्यास जी ने एक ही वेद को ऋृगु यर्जु, साम व अथर्व इन चार वेदों में विभक्त किया। इतिहास व पुराण पांचवां वेद कहलाए। तदुपरांत पैल ऋषि ने ऋृगु, वैशम्पायन ऋषि ने यर्जु, जैमिनि ऋषि ने साम, सुमन्तु ऋषि ने अथर्व तथा पुराणों को मेरे पिता रोमहर्षण ऋषियों ने भी कई शाखाओं में बांटा। स्त्री, शूद्र आदि वेद श्रवण के अधिकारी नहीं थे, अतः उनके कल्याण के लिए व्यास जी ने महाभारत इतिहास की रचना की और वेद सार उसमें भरा। फिर भी उन्हें संतोष न हुआ। स्वयं को अपूर्ण मानकर वे खिन्न हो रहे थे तब देवर्षि नारद वहां पहुंचे।''

''हे ऋषियों! आवश्यक शिष्टाचार के बाद व्यास जी ने नारद जी से ही अपनी खिन्नता का कारण पूछा। तब नारद जी ने बताया कि व्यास जी ने धर्म व ज्ञान आदि का जैसा निरूपण अपनी रचनाओं में किया है, भगवान की महिमा व यश का नहीं, जिससे प्रभु संतुष्ट नहीं होते, वह शास्त्र या ज्ञान अपूर्ण ही है। मोक्ष प्रदान करने वाला निर्मल ज्ञान भी भगवान की भक्ति से रहित हो तो शोभा नहीं पाता। यही उनकी खिन्नता का कारण है, क्योंकि कृष्ण के प्रति सब कर्मों का समर्पण ही तीनों तापों की एकमात्र औषधि है। इस लोक में जो शास्त्रविहीन कर्म भगवान की प्रसन्नता के लिए किए जाते हैं, उन्हीं से पराभक्ति युक्त ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस संदर्भ में उन्होंने अपना, भगवान की कृपा प्राप्त करने और सदा उनका कीर्तन करते रहने का

प्रसंग भी सुनाया। अतः व्यास जी को भगवान की कीर्ति और उनकी प्रेममयी लीलाओं का वर्णन करना चाहिए। इस प्रकार नारद जी की प्रेरणा से उन्होंने भागवत पुराण की रचना की और इसे अपने पुत्र शुकदेव जी को पढ़ाया।''

तब शौनक ऋषि ने प्रश्न किया—''शुकदेव जी तो अत्यंत ही निवृत्तिपरायण हैं, उन्हें किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं, वे सदा आत्मा में ही रमण करते हैं, फिर उन्होंने किस लिए इस विशाल ग्रंथ का अध्ययन किया?''

सूत जी बोले—''अविद्या की गांठ काट चुके ज्ञानी, जो सदा आत्मरमण करते हैं, वे भी भगवान की हेतुरहित भक्ति किया करते हैं, क्योंकि भगवान के गुण ही ऐसे मधुर और आकर्षक हैं, इसीलिए शुकदेव जी ने भी इस विशाल ग्रंथ का अध्ययन किया।''

सूत जी आगे बोले—''अब मैं राजर्षि परीक्षित के जन्म आदि की तथा पाण्डवों के स्वर्गारोहण की कथा कहता हूं, क्योंकि इन्हीं से श्रीकृष्ण की अनेक कथाओं का उदय होता है। महाभारत के युद्ध के लगभग अन्त में जब दुर्योधन भीम के हाथों अपनी जंघा तुड़ा बैठा था, तब अश्वत्थामा ने द्रौपदी के सोए हुए पुत्रों के (पाण्ड़वों के भ्रम में) शीष काट दूर्योधन को भेंट में दिए थे। अर्जुन को इसका ज्ञान होने पर वह प्रतिज्ञा कर अश्वत्थामा पर चढ़ दौड़ा। अश्वत्थामा अपने ही कर्म से उद्विग्न था, आंतकित होकर भागने लगा। अन्त में जब उसके रथ के घोड़े थक गए तो वह अन्य कोई उपाय न देख, लौटाने की विधि न जानते हुए भी अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का संधान किया। तब प्राणरक्षा के लिए अर्जुन को श्रीकृष्ण के परामर्श पर ब्रह्मास्त्र चलाना पड़ा, क्योंकि अन्य कोई भी अस्त्र उसे रोक नहीं सकता था। दोनों ब्रह्मास्त्रों के तेज और प्रभाव से समस्त दिशाएं और प्रजा जलने लगीं। तदुपरांत अर्जुन ने अश्वत्थामा को बंदी बनाया। कृष्ण द्वारा परीक्षार्थ अश्वत्थामा के वध का आदेश देने पर भी अर्जुन ने गुरुपुत्र और ब्राह्मण अश्वत्थामा का वध नहीं किया और उसके मस्तक से केश व मणि निकाल कर उसे श्री तथा ब्रह्मतेज से हीन बनाकर छोड़ दिया। अपमानित होना भी ब्राह्मण के लिए वध के समान ही है।

अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ को नष्ट करने वाला था, क्योंकि अश्वत्थामा पाण्डवों का बीजनाश कर देना चाहता था, किन्तु उत्तरा की प्रार्थना पर श्री कृष्ण ने अपनी माया के कवच से उत्तरा की रक्षा की और सुदर्शन चक्र द्वारा ब्रह्मास्त्र को काट डाला। यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है और उसके निवारण का कोई उपाय भी नहीं है तो भी श्रीकृष्ण भगवान के तेज के आगे वह शांत हो गया तब कुन्ती ने इस प्रकार कृष्ण की स्तुति की।''

''आप समस्त जीवों के बाहर और अन्दर एक रस स्थित हैं, फिर भी इन्द्रियों

और वृत्तियों का विषय नहीं हैं। आप अनादि, अनन्त, विभु, सर्वनियंता और स्वयम्भुव हैं। आप सर्वशक्तिमान और भक्त वत्सल हैं। आपने अनेकों बार युद्ध में मेरे पुत्रों की रक्षा की है। आप जन्म-कर्म से परे विश्वात्मा और सर्वरूप हैं। हे निराकार, समस्त आकार आप ही के हैं, फिर भी आप रूप, आकार, नाम आदि के बंधनों से रहित हैं। हे असीम्! आप महाज्ञानी, ऋषियों, महातपस्वी योगियों और महाविद्वान मुनियों की भी समझ से परे हैं। प्रभो! मैं एक स्त्री भला आपके स्वरूप का क्या बखान कर सकती हूं? हे योगेश्वर! हे चराचर के गुरु भगवान श्री कृष्ण—मैं बस आपको नमस्कार करती हूं।''

''हे शौनक! श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर का धोखे से छीन लिया गया राज्य, उनको वापस दिलाकर, उनके द्वारा तीन अश्वमेध यज्ञ कराए और उनकी यश कीर्ति चहुंओर फैलाकर विदा मांगी—तब युधिष्ठिर युद्ध में अपने द्वारा की गई हिंसा, बांधव वध, गुरुद्रोह आदि का स्मरण कर ग्लानि करने लगे। कृष्ण द्वारा सांत्वना दिए जाने पर वे सभी पांडवों और कृष्ण सहित बाणशय्या पर पड़े भीष्म के दर्शन को गए। वहां पितामह भीष्म के दर्शनार्थ अनेक ऋषिगण भी एकत्रित थे। भीष्म ने भी युधिष्ठिर को आशीष व सांत्वना देकर कहा—''सभी घटनाएं ईश्वराधीन हैं। तुम व्यर्थ चिंतित न होओ पुत्र। यह गर्व का विषय है कि परमपुरुष नारायण श्रीकृष्ण का संरक्षण तुमको प्राप्त है और मैं भी पुण्यवान हूं कि अन्त समय में भगवान के दर्शन कर रहा हूं। तुम ग्लानि त्याग कर धर्म का अनुसरण करो।''

तब युधिष्ठिर ने भीष्म से धर्म के सम्बन्ध में अनेक रहस्य पूछे। तत्ववेत्ता भीष्म ने सबका विस्तार से उत्तर दिया। फिर सूर्यदेव के उत्तरायण होने पर श्रीकृष्ण की स्तुति व उन्हें प्रणाम कर भीष्म जी ने देहत्याग दिया। अंत्येष्टि संस्कार के बाद युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौटे और श्रीकृष्ण की अनुमति से धर्मपूर्वक शासन करने लगे। तब श्रीकृष्ण उद्धव व सात्यकि आदि प्रेमी मित्रों के साथ द्वारिका लौट गए।

तब शौनक जी के प्रश्न करने पर सूत जी ने उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न होने वाले परीक्षित का वृत्तान्त सुनाया, जिसकी श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा द्वारा चलाए गए ब्रह्मास्त्र से रक्षा की थी।

''परीक्षित जन्म से ही बहुत तेजस्वी था। ब्राह्मणों ने उसका नाम विष्णुरात बताया, क्योंकि विष्णु ने उस बालक की रक्षा की थी तथा ब्राह्मणों ने यह भी भविष्यवाणी की कि यह बहुत यशस्वी, परमभक्त और महान होगा। ब्राह्मण भक्त, सत्यप्रतिज्ञ, श्रेष्ठ धनुर्धर, दुर्धर्ष और दुस्तर होगा, अति पराक्रमी, सहनशील और कृपालु होगा, शरणागत वत्सल, उदार, धार्मिक और बहुत से अश्वमेध यज्ञों को करने वाला होगा।'

मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए भीष्म पितामह को दर्शन देते भगवान श्रीकृष्ण

'ऋषियों! यहां विष्णुरात बाद में परीक्षित कहलाया, क्योंकि गर्भ में ही उसने जिस परमपुरुष के अपनी रक्षार्थ दर्शन किये थे, जन्म के बाद सबमें वह उसी की परीक्षा किया करता था, कि वह कौन-सा है?'

'उधर महात्मा विदुर तीर्थयात्रा से महर्षि मैत्रेय से आत्मज्ञान पाकर हस्तिनापुर लौटे। विदुर जी ने मैत्रेयऋषि से जितने प्रश्न किए थे, उनका उत्तर सुनने से पूर्व ही श्रीकृष्ण में अनन्य भक्ति हो जाने से वे उपराम हो गए थे। हस्तिनापुर लौटने पर युधिष्ठिर आदि ने उनकी उचित आवभगत की। तदुपरांत विदुर की यात्रा व तीर्थों आदि के विषय में पूछा। विदुर जी ने सब बताया, केवल यदुवंश के विनाश की बात छुपा गए। विदुर जी तो काल की गति जान चुके थे। वे वास्तव में धर्मराज ही थे, जो माण्डव्यऋषि के शाप से सौ वर्षों के लिए शुद्र बन गए थे। (माण्डव्य ऋषि के आश्रम पर एक बार एक राजा के सैनिकों ने कुछ चोरों को पकड़ा और ऋषि को भी चोरों से मिला समझ कर राजाज्ञा से सभी को सूली पर चढ़ा दिया। जब राजा को माण्डव्य के महात्मा होने का पता चला तो उनसे क्षमा मांगते हुए उन्हें सूली से उतरवाया। माण्डव्य ने तब यमराज के पास जाकर इस दण्ड का कारण पूछा। यमराज ने बताया कि बालपन में एक टिड्ड़े को कुश की नोक से ऋषि ने वेध दिया था। अतः उन्हें सूली पर बिंधने का दण्ड मिला। तब माण्डव्य ऋषि ने क्रुद्ध होकर यमराज को शाप दिया कि उनके अज्ञानता वश किए गए एक छोटे से अपराध के लिए इतना कठोर दण्ड देने के कारण यमराज को सौ वर्ष शूद्र योनि में रहना होगा। इसी शाप के कारण यम को विदुर के रूप में जन्म लेना पड़ा था।)'

'विदुर ने धृतराष्ट्र को भी समझाया कि वह मोह छोड़े, अपने भतीजों (पाण्डवों) के यहां न पड़ा रहे। आने वाला समय मनुष्यों के गुणों का ह्रास करेगा। अतः वह संन्यास लेकर उत्तराखण्ड को चले जाएं। तब धृतराष्ट्र के प्रज्ञानेत्र खुले और वह गांधारी सहित हिमालय को चला गया। विदुर भी उनके साथ ही चले गए और सप्त सरोवर पर वास करने लगे, जहां गंगा ने सप्तऋषियों की प्रसन्नता के लिए स्वयं को सात धाराओं में बांट लिया था। वहीं उन लोगों ने देह त्यागा।''

सूत जी ने आगे कहा—''युधिष्ठिर ने अर्जुन को श्रीकृष्ण का समाचार लेने द्वारका भेजा, मगर वह सात महीनों तक भी लौट कर नहीं आए। युधिष्ठिर ने तब भारी अपशकुन देखे और काल की गति की विकटता को अनुभव किया। ऋतुओं का समय बदल गया। उनकी क्रियाएं उल्टी हो गईं। प्रजा लोभी, पापी, क्रोधी और असत्य परायण हो गई। कलिकाल के आने से प्रकृति का और जीवों का भी स्वभाव बदल गया था। चिन्तित होकर युधिष्ठिर ने भीम से परामर्श लिया और भयंकर उत्पादों व अनिष्ट आंशका की चर्चा की। तभी अर्जुन लौट आए, किन्तु उनके निस्तेज चेहरे,

उदास नेत्र और शिथिल शरीर को देख वे घबरा गए। उन्होंने अर्जुन से ढेर सारे प्रश्न व्याकुलता के कारण एक साथ ही कर डाले। तब अर्जुन ने इस प्रकार कहा—

"महाराज! मेरे सखा, मेरे हृदय श्रीकृष्ण भगवान से मैं रहित हो गया हूं। मेरा जो कुछ भी पराक्रम था, सब उन्हीं के कारण था। उन्हीं के प्रताप से मैं महाभारत का युद्ध जीत पाया, उन्हीं के प्रताप से शिव भगवान ने पाशुपति अस्त्र मुझे दिया, उन्हीं के प्रताप से मैं सदेह स्वर्ग जाकर इन्द्र के आधे सिंहासन पर बैठने का सौभाग्य पा सका, उन्होंने अनेकों बार विपत्ति में हमारी रक्षा की। हमें बनवाश के समय ऋषि दुर्वासा के कोप का भाजन बनने से बचाया। मैंने उन पुरुषोत्तम को अपने रथ का सारथी तक बना डाला। हाय! मैं ठगा गया। उनसे हीन होकर मैं निवीर्य हो गया हूं। श्रीकृष्ण की पत्नियों को मैं द्वारका से साथ ला रहा था, किन्तु मार्ग में दुष्ट गोपों ने मुझे एक अबला की भांति हरा दिया। मैं उनकी रक्षा भी न कर सका। वही मेरा गाण्डीव है, वही बाण, वही रथ, वही अश्व और वही मैं अर्जुन हूं, मगर एक कृष्ण के न रहने से सभी सार शून्य हो गया है।

हे राजन्! ब्राह्मणों के शाप से द्वारकावासी मोह ग्रस्त हो गए। वारुणी के नशे में वे आपस में ही लड़-भिड़कर नष्ट हो गए। भगवान कृष्ण के स्वधाम गमन और यदुवंश का विनाश हो चुका है। हे राजन्! हम अनाथ हो गए हैं।"

सूत जी ने आगे कहा—"युधिष्ठिर ने यह समाचार सुनकर स्वर्गारोहण का निश्चय किया। कुन्ती ने भी यह समाचार सुनकर संसार से मुख मोड़ लिया। तब युधिष्ठिर ने अपने स्थान पर अपने पौत्र परीक्षित का राज्याभिषेक किया तथा मथुरा के सिंहासन पर अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को बिठा कर, स्वयं संन्यास ग्रहण कर लिया। शेष पाण्डवों ने भी युधिष्ठिर का अनुसरण कर संन्यास ले लिया और परब्रह्म का ध्यान करते हुए उत्तर दिशा की यात्रा की। द्रौपदी ने भी प्राण त्याग दिए और विदुर जी ने भी प्रभास क्षेत्र में देह त्याग दी। पाण्डवों के महाप्रयाण की यह कथा श्रद्धा सहित सुनने वाला प्रभु की भक्ति और मोक्ष को प्राप्त करता है।"

'परीक्षित ने सम्राट बनने के बाद धर्मानुसार शासन किया और उत्तर की पुत्री इरावती से विवाह किया। उनके जनमेजय आदि चार पुत्र हुए। कृपाचार्य को पुरोहित बनाकर परीक्षित ने तीन अश्वमेध यज्ञ किए। दिग्विजय के समय उन्होंने कलियुग को शुद्र के रूप में राजा के वेष धारण कर एक गाय और बैल के जोड़े को ठोकरों से मारते देखा तो बलपूर्वक उसे पकड़ कर दण्डित किया।'

तब शौनक जी ने पूछा—"प्रभो! महाराज परीक्षित ने कलियुग को दण्डित करके छोड़ देने की बजाय उसे प्राणदण्ड क्यों नहीं दिया? राजा के भेष में आखिर वह अधम शुद्र ही था, जिसने गौमाता को लात मारी थी? यदि यह प्रसंग श्रीकृष्ण की लीला

से सम्बन्ध रखता हो तो कृपया हमें सुनाइए। हम भगवान के चरण कमलों के मकरन्द रस का पान करने के इच्छुक हैं। उनकी लीलाओं को सुनकर हमें कभी तृप्ति नहीं होती।"

सूत जी ने शौनक आदि ऋषियों की इच्छा देख कर तब कलियुग और परीक्षित का पूर्ण वृत्तांत विस्तार से सुनाते हुए इस प्रकार कहा—"महाराज परीक्षित जिस समय दिग्विजय कर रहे थे, उन्हीं दिनों उनके शिविर से कुछ दूर एक आश्चर्यजनक घटना घटी। धर्म बैल का रूप धारण करके एक पैर से घूम रहा था। तभी उसे गाय के रूप में पुत्रशोक में आंसू बहाती पृथ्वी दिखाई दी। धर्म ने तब पृथ्वी से पूछा—

"कल्याणी! तुम किसलिए इतनी चिन्ता कर रही हो? क्या तुम मेरे टूटे हुए तीन पैरों का शोक कर रही हो? अथवा इस आंशका से चिन्तित हो कि अब शूद्र तुम पर शासन करेंगे? तुम उन देवताओं के लिए उदास हो, जिन्हें अब यज्ञाहूतियां नहीं दी जातीं? या तुम प्रजा के दारुण भविष्य का अवसाद करती हो? देवी! तुम क्यों रूदन कर रही हो?"

तब पृथ्वी ने कहा—"सब जानते हुए भी मुझसे क्यों पूछते हो, जिन भगवान के आश्रय से तुम चार चरणों से युक्त थे, उन्हीं भगवान श्रीकृष्ण के इस लोक से लीला का संवरण करते ही यह संसार पापमय कलियुग की कुदृष्टि का शिकार हो गया है, जिससे समस्त मर्यादाएं नष्ट होती जा रही हैं। इसलिए मैं अपने लिए, देवताओं के लिए, देवताओं के श्रेष्ठ तुम्हारे लिए, ऋषियों, पितरों, मनुष्यों और समस्त प्रकृति के लिए शोकाकुल हो रही हूं। अब हमारे सौभाग्य का अन्त जो हो गया है। उन्तालीस अप्राकृत गुण (सत्य, पवित्रता, क्षमा, त्याग, दया, सन्तोष, समता, सरलता, वीरता, तेज, बल, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, उपरति, तितिक्षा, तप, दम, सम, शास्त्रविचार, कौशल, धैर्य, कान्ति, कोमलता, निर्भीकता, विनय, स्वतंत्रता, स्मृति, उत्साहें, साहस, शील, गौरव, स्थिरता, गम्भीरता, निरहंकारिता, सौभाग्य, आस्तिकता, कीर्ति तथा निस्वृहता आदि) तथा और भी बहुत से गुणों के आश्रय भगवान कृष्ण के वियोग को भला कौन सह सकता है?"

धर्म और पृथ्वी इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि राजा परीक्षित पूर्ववाहिनी सरस्वती के तट पर आ पहुंचे।

सूत जी ने आगे कहा—"राजा परीक्षित ने देखा, एक राज वेषधारी शूद्र हाथ में डंडा लिए उनको (गाय व बैल) को पीट रहा है। बैल अपने एक पैर पर कांपता हुआ आंतकित होकर मूत्र त्याग कर रहा है और गाय उस शूद्र की ठोकरों से पीड़ित हो अत्यंत दीन हो रही है। परीक्षित यह देख अपने धनुष पर बाण चढ़ाया और उस शूद्र को चेतावनी दी। बैल और गाय को सांत्वना दी और बैल से उसके एक पैर

पर खड़े रह कर दुःख भोगने का कारण पूछा।"

हे शौनक जी! इस प्रकार पूछे जाने पर बैल रूपी धर्म ने कहा—"आप पाण्डु के वंशज हैं। आपके पूर्वजों ने भगवान कृष्ण को भी सारथी और दूत बना दिया था, दुःखियों को आश्वासन देना आप ही के योग्य है। विभिन्न मतों से मोहित होने के कारण हम अपने क्लेशों का कारण नहीं जानते। कोई भाग्य को दोष देता है, कोई ईश्वर को, कोई स्वभाव या कर्म को दोष देता है, कोई कहता है दुःखों का कारण तर्क व वाणी से परे है—उसे न समझा जा सकता है, न बताया जा सकता है। अतः मैं अपने दुःख के विषय में क्या कहूं? आप ही इनमें से सही मत का निर्णय करके अपनी बुद्धि अनुसार विचार करें।"

तब परीक्षित ने अत्यंत प्रभावित होकर कहा—"आप तो धर्म का तत्व जानने वाले हैं। अवश्य ही आप वृषभ के रूप में धर्म हैं जो धर्म का उपदेश दे रहे हैं। धर्मदेव सतयुग में आपके—तप, पवित्रता, दया और सत्य—यह चार चरण थे। अब अधर्म के अंश, गर्व, आसक्ति और मद से प्रथम तीन चरण नष्ट होकर एक सत्य ही शेष रहा है। उसी एक चरण के आधार पर आप स्थिर हैं। असत्य से पुष्ट हुआ यह अधर्मरूपी कलियुग उस एक चरण को भी ग्रस लेना चाहता है। प्राणियों के मन व वाणी से परमात्मा की माया के स्वरूप का निरूपण संभव नहीं है, अथवा अधर्मी को मिलने वाला नाटकीय दण्ड चुगली करने वाले को भी मिलता है, इसी से आप अपने को दुःख देने वाले का नाम नहीं बता रहे थे, किन्तु मैं बैल के रूप में आपको और राजवेष धारी इस शूद्र के रूप में कलियुग को पहचान गया हूं। यह गौमाता अवश्य ही पृथ्वीमाता हैं। भगवान कृष्ण ने इनका सारा बोझ उतार दिया था किन्तु अब यह उनसे विमुक्त हो गई हैं। अतः रोते हुए यही चिंता कर रही हैं कि अब राजा का स्वांग बनाकर ब्राह्मण द्रोही शूद्र ही इन्हें भोगेंगे किन्तु राजाओं का धर्म दुःखियों का दुःख दूर करना, प्रजा व सम्पदा की रक्षा करना तथा व्यवस्था व न्याय की स्थापना करना है। अतः मैं राजा परीक्षित यह अधर्म होने नहीं दूंगा।"

ऐसा कहकर परीक्षित ने राजा का स्वांग बनाए उस शूद्र वेष में स्थित कलियुग को मारने के लिए तलवार निकाल ली। तब प्राण भय से कांपते हुए कलियुग अपना छद्मवेश त्यागकर राजा परीक्षित के चरणों में गिर कर क्षमा मांगने लगा। परीक्षित दीनवत्सल और शरणागत रक्षक थे, अतः दीन बनकर शरण में आ गए कलियुग को उन्होंने मारा नहीं किन्तु उसे अपना राज्य छोड़ कर अन्यत्र कहीं चले जाने को कहा। ब्रह्मावर्त में धर्म व सत्य का निवास है अतः ब्रह्मावर्त में कलियुग एक क्षण भी न रुके, ऐसा उन्होंने कहा।

हे मैत्रेय आदि ऋषियों! कलियुग ने तब हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा—"हे

गाय रूपी पृथ्वी की शूद्र रूपी कलियुग से रक्षा करते राजा परीक्षित

सार्वभौम! आप पृथ्वीपति सम्राट हैं। आपकी आज्ञा से मैं जहां भी जा कर रहने का विचार करता हूं, वही धनुष पर बाण चढ़ाए आपको खड़ा पाता हूं। अतः आप ही मुझे वह स्थान बताइए, जहां मैं आप से अभय पाकर स्थिर रह सकूं?"

तब परीक्षित ने कलियुग को—द्यूत, मद्यपान, स्त्रीसंग और हिंसा यह चार स्थान निवास के लिए दिए। इन स्थानों पर क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता ये चार प्रकार के अधर्म रहते हैं। अतः कलियुग को अभय के यह चार स्थान राजा ने दिए और अधिक मांगने पर परीक्षित महाराज ने कलियुग को स्वर्ण (सोना) में रहने की भी अनुमति दे दी। इस प्रकार—झूठ, नशा, कामासक्ति, वैर तथा लोभ/लालच—यह पांच स्थान कलियुग को अभय के मिल गए। अतः अपना कल्याण चाहने वालों को इन पांच स्थानों का सेवन कभी नहीं करना चाहिए। राजा परीक्षित ने वृषभ रूपी धर्म के तीनों चरण—तप, शौच व दया भी जोड़ दिए तथा आश्वासन देकर गौरूपी पृथ्वी का भी संवर्धन किया।"

कलियुग और परीक्षित का वृत्तांत विस्तार से सुनाने के बाद, सूत जी ने आगे कहा—"इस प्रकार राजा परीक्षित अपनी माता के गर्भ में अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से भी कृष्ण कृपा से सुरक्षित रहे। ब्राह्मण के शाप से जब उन्हें तक्षक डसने को आया, तब भी वे भयभीत नहीं हुए, क्योंकि उनका हृदय कृष्ण को समर्पित था। बाद में सब आसक्ति छोड़ शुकदेव जी से गंगातट पर उपदेश ग्रहण कर उन्होंने शरीर त्यागा। इस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा पृथ्वी को छोड़ते ही पृथ्वी पर आ धमकने वाला कलियुग, जब तक अभिमन्यु पुत्र सम्राट परीक्षित रहे, तब तक प्रभावहीन ही रहा।"

तब ऋषियों ने राजा परीक्षित के शापग्रस्त होने तथा विशेष रूप से शुकदेव द्वारा उन्हें दिए गए उपदेश को सुनने का आग्रह किया। तब सूत जी ने कहा—"आप महात्माओं से धर्म चर्चा करने से आज विलोम जाति (उच्चवर्ण की माता व नीच वर्ण के पिता) में उत्पन्न होते हुए भी मैं धन्य हो गया। मैं अपनी सामर्थ्यानुसार आपके द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर में कहता हूं, क्योंकि पक्षी अपनी सामर्थ्यानुसार ही उड़ पाता है—

"एक दिन वन में शिकार से भ्रमित परीक्षित पानी की तलाश में शमीक ऋषि के आश्रम पर चले गए और ऋषि के ध्यानावस्था में रहने पर भी व्याकुलता के कारण ऋषि से जल मांगा, किन्तु ध्यानस्थ होने के कारण ऋषि ने सुना ही नहीं। पानी न मिलने और बैठने का आसन तक न दिए जाने अथवा समुचित स्वागत न होने से स्वयं को अपमानित हुआ जान वे क्रोधित हो गए। उन्होंने सोचा कि ये ऋषि समाधिस्थ होने का ढोंग कर रहे हैं। अतः एक मरे हुए सांप को धनुष की नोक से उन्होंने ऋषि के गले में डाल दिया और वापस लौट गए।

उन शमीक ऋषि का पुत्र जो दूसरे ऋषि कुमारों के साथ पास ही खेल रहा था, बहुत तेजस्वी था। अपने पिता के साथ ऐसा दुर्व्यवहार देख, उसने परीक्षित को शाप दिया कि 'आज के सातवें दिन परीक्षित को तक्षक सर्प डस लेगा।' बाद में शमीक ऋषि को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्हें बहुत खेद हुआ। उनकी दृष्टि में परीक्षित इतने बड़े दण्ड का अधिकारी नहीं था, जितना कच्ची बुद्धि होने से उनके पुत्र ने दे दिया था। शाप देने वाले वह ऋषिपुत्र शृंगी थे, जिन्होंने यह नहीं सोचा कि राजा से हीन हो जाने पर राज्य की व्यवस्था व सुरक्षा सभी संकट में पड़ जाएंगे। शमीक ऋषि इस पर पछताने लगे, किंतु क्या हो सकता था? तीर और शब्द कमान व मुख से निकल कर वापस नहीं आते।

राजधानी लौट कर परीक्षित भी अपने कर्म के प्रति पछताए और अनिष्ट से आशंकित हो गए। जब उन्हें शाप ग्रस्त होने का समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने प्रायश्चित रूप में उसे स्वीकार किया और वैराग्य धारण कर गंगातट पर अनशन व्रत लेकर बैठ गए। इस प्रकार तक्षक की प्रतीक्षा करते हुए श्रीकृष्ण का ध्यान करते रहे। उस समय, अत्रि, वशिष्ठ, अंगिरा, भृगु, अरिष्टनेमी, पराशर, विश्वामित्र, च्यवन, गौतम, परशुराम, देवज्ञ, पिप्लाद, मेघातिथि, अगत्स्य, और्व, भारद्वाज, व्यास, नारद आदि बहुत से देवर्षि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि तथा महर्षियों का वहां शुभागमन हुआ। तब परीक्षित ने उन्हें प्रणामकर यह आशीर्वाद मांगा कि उनका अगला जन्म किसी भी योनि में हो मगर श्रीकृष्ण चरणों में उनका अनुराग बना रहे। ऋषियों ने उनको यह आशीर्वाद दिया और परीक्षित के देहत्याग करने तक वहीं ठहरने का निश्चय किया। तब परीक्षित ने उनसे पूछा—"समस्त अवस्थाओं में विशेषतः थोड़े ही समय में मरने वाले पुरुष के लिए अन्तःकरण व शरीर से करने योग्य विशुद्ध कर्म कौन-सा है?"

उसी समय अवधूत वेष में, शुभ लक्षणों से सम्पन्न तथा आश्रम व वर्ण के बाह्य चिन्हों से रहित, व्यासपुत्र, सोलह वर्षीय, श्री शुकदेव वहां स्वेच्छा से विचरण करते हुए पधारे। यद्यपि उन्होंने अपने तेज को छिपा रखा था तो भी उनके लक्षणों को जानने वाले ऋषियों ने उनको पहचान लिया और सम्मान में उठ खड़े हुए। महाराज परीक्षित ने भी उन्हें प्रणाम किया और उनकी प्रशंसा व स्तुति की। तत्पश्चात् उनसे भी प्रश्न किया—"आप योगियों के परम गुरु हैं। अतः परम-सिद्धि के स्वरूप और साधन के विषय में आपसे पूछ रहा हूं। कृपया यह बतलाइए कि मनुष्य को क्या करना चाहिए? किसका श्रवण, किसका जप, किसका स्मरण व भजन करें? तथा किसका त्याग करें यह भी बतलाइए कि जो व्यक्ति मरणासन्न है, उसे क्या करना चाहिए?"

□□

द्वितीय स्कन्ध

शुकदेव जी ने कहा—"आत्मज्ञानी पुरुषों द्वारा आदर के योग्य तुम्हारा यह प्रश्न लोकहित की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। संक्षेप में इतना ही जान लो कि अभय पद के इच्छुक मनुष्य को सर्वात्मा भगवान कृष्ण की लीलाओं का कीर्तन, स्मरण व श्रवण करना चाहिए। मनुष्य जन्म का इतना ही लाभ है कि—ज्ञान से, भक्ति से, श्रद्धा या धर्मनिष्ठा से, जीवन को ऐसा बना लिया जाए कि अन्त समय में प्रभुस्मृति अवश्य ही बनी रहे, क्योंकि हे राजन्! कल्याण साधन की ओर से असावधान रहने वाले पुरुष की लम्बी आयु भी व्यर्थ है और सावधानी से ज्ञानपूर्वक बिताये दो क्षण भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि उनके द्वारा स्वकल्याण की चेष्टा तो की जा सकती है। तुम्हारे जीवन की अवधि तो सात दिन की है, राजर्षि खट्वाङ्ग तो अपनी आयु की समाप्ति जानकर दो घड़ी में ही सब त्याग कर भगवान का अभय पद पा गए थे।

'मृत्योन्मुख होने पर मनुष्य घबराए नहीं, बल्कि वैराग्य की तलवार से शरीर व उससे सम्बन्धित ममता, मोह के बंधनों को काट दे। घर से निकलकर पवित्र तीर्थ के जल में स्नान करे और एकान्त में विधिपूर्वक आसन लगा कर तीन मात्राओं वाले प्रणव मंत्र ॐ (ओउम्) का मन में जाप करे। प्राणवायु पर नियंत्रण कर (प्राणायाम द्वारा) मन को शांत करे। बुद्धि के प्रयोग से मन तथा इंद्रियों का संयम करें और भगवान के मंगलमय रूप में ध्यान केन्द्रित करें। इस प्रकार धारणा द्वारा जब रजो व तमोगुण दोष निवृत्त हो जाएं तो ध्यान में सतो गुण की स्थिरता होते ही उसे भक्ति योग की प्राप्ति हो जाएगी।'

तब परीक्षित ने पूछा कि—"मनुष्य के मन को तमो व रजोगुण की निवृत्ति कर निर्मल कर देने वाली धारणा किस साधन से, किस वस्तु में और किस प्रकार की जाती है? तथा उसका स्वरूप क्या है?"

शुकदेव जी ने कहा—"आसन, श्वास, आसक्ति तथा इंद्रियों पर विजय पाकर

बुद्धि द्वारा मन को भगवान के स्थूल रूप में केन्द्रित करें। पंचमहाभूत, अहंकार, प्रकृति (जड़) तथा महतत्व (चेतन) इन सात आवरणों से घिरे इस ब्रह्माण्ड-देह में जो विराट पुरुष प्रभु हैं, वही धारणा का आश्रय हैं। इन्हीं में आसक्ति रहित होकर धारणा करें, क्योंकि यह आसक्ति ही जीव के अद्य:पतन का मूल कारण है।''

शुकदेव ने आगे कहा—''स्वयं ब्रह्मा जी ने इसी प्रकार धारणा द्वारा भगवान को प्रसन्न कर यह सृष्टि विषयक स्मृति प्राप्त की थी, जो पहले प्रलयकाल के बाद विलुप्त हो चुकी थी। अतः धारणा व ध्यान आवश्यक है। मनुष्य को अपनी आवश्यकताएं यथा सम्भव सीमित कर लेनी चाहिए, जिससे उन्हीं के उपार्जन में सारा समय नष्ट न हो जाए और अधिक से अधिक समय ईश्वर चिन्तन या भजन में बिताना चाहिए, क्योंकि इसी से बंधनकारी अज्ञान नष्ट होता है। धारणा द्वारा जैसे-जैसे बुद्धि व चित्त शुद्ध होते जाते हैं, स्थिरता प्राप्त होती जाती है। जब मन व बुद्धि की स्थिरता चरम सीमा पर पहुंच जाए तब आत्मा के परमात्मा में लीन हो जाने से सतोगुण व अहंकार आदि भी निवृत्त हो जाते हैं और कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। यही समाधि या तुरीय अवस्था है।''

अब तुमसे योग व स्वेच्छा से देहत्याग की विधि कहता हूं—ज्ञानचक्षुओं से जिसने चित्त की वासनाएं नष्ट कर दी हों, उस ब्रह्मनिष्ठ योगी को इसी प्रकार शरीर त्यागना चाहिए। पहले पद्मासन पर अपनी एड़ी से गुदा को दबाकर मूलबन्ध लगाते हुए स्थिर हो जाएं। फिर धैर्यपूर्वक प्राणवायु को षट्चक्रभेदन विधि से ऊपर लाएं। नाभिचक्र मणिपूरक से हृदयचक्र अनाहत में प्राणवायु को लाएं, वहां से उदानवायु के द्वारा छाती के ऊपर विशुद्धचक्र में, फिर विशुद्ध चक्र के अग्रभाग तालुमूल में चढ़ा दें। तब आंखों, कानों, मुख व नासि छिद्रों को रोककर तालुमूल में स्थित वायु को भृकुटियों के मध्य आज्ञाचक्र में लाएं। यदि किसी लोक में जाने की इच्छा न हो तो आधा घड़ी वहां ठहराकर वायु को सहस्रार में ले जाकर परमात्मा में स्थिर करें और फिर ब्रह्मरन्ध्र का भेदन कर शरीर व इन्द्रियां त्याग दें। यदि ब्रह्मलोक या अन्य लोक में जाने की इच्छा हो तो उसे मन व इन्द्रियों के साथ ही शरीर से निकालना चाहिए। उपासना, ज्ञान, तपस्या व योग का सेवन करने वाले योगियों का शरीर वायु की ही भांति सूक्ष्म होता है। अतः त्रिलोकी के बाहर-भीतर सर्वत्र स्वच्छन्द विचरण का उन्हें अधिकार होता है।

ब्रह्मलोक को जाने वाला योगी सुषुम्ना द्वारा प्रयाण करता है। पहले अग्निलोक में वह अपने बचे-खुचे मल को जलाता हुआ शिशुमार चक्र में जाता है। विश्व ब्रह्माण्ड के भ्रमण के उस केन्द्र का अतिक्रमणकर वह महर्लोक में जाता है। प्रलय का समय आने पर शेषनाग के मुख से निकल कर, अन्य लोकों को भस्म करने वाली प्रलयाग्नि

को देख, वह ब्रह्मलोक को चला जाता है। जहां न शोक है, न दुःख, न भय है, न रोग, न वृद्धावस्था है, न मृत्यु, जबकि बिना लोक की इच्छा से शरीर त्यागने वाला योगी ब्रह्मलोक से सत्यलोक में आता है तथा पंचमहाभूत, अहंकार व महतत्व आदि सातों आवरणों को पार कर अन्त में प्रकृतिरूप आवरण—जो समस्त गुणों का लय स्थान है—में जा मिलता है। प्रलय में जब इस आवरण का भी लय होता है, तब वह आनन्द स्वरूप होकर निरावरण रूप से आनन्दस्वरूप शान्त परमात्मा में लीन होकर स्वयं ही परमात्मा हो जाता है। फिर उसे कभी संसार में आना नहीं पड़ता। इस प्रकार यह सद्योमुक्ति व क्रममुक्ति के दो वेदोक्त सनातन मार्ग तुमसे कहे। ब्रह्मा जी की आराधना से प्रसन्न होकर भगवान वासुदेव ने उनके पूछने पर इन्हीं दो मार्गों की बात कही थी।''

ब्रह्मा जी ने वेदों को तीन बार अनुशीलन कर अपनी बुद्धि से यही निश्चय किया था कि सर्वात्मा भगवान कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम उत्पन्न करने वाला मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। अतः जिस भी साधन से श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति प्राप्त होती है—वही श्रेष्ठ है, सो सब मनुष्यों को यथाशक्ति श्रीहरि का ही चिन्तन, मनन, स्मरण, ध्यान, श्रवण तथा कीर्तन करना चाहिए। भागवत कथा के अमृत से हृदय से विषयों का विषैला प्रभाव नष्ट होकर शुद्धता व निर्मलता प्राप्त होती है। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति प्राप्त होती है। जो अन्ततः श्रीकृष्ण के चरणाविंदों की सान्निध्य को प्राप्त करा देती हैं। अतः मरणासन्न को तो विशेषतः श्री भागवत कथा की सुधा का पान करना ही चाहिए।

शुकदेव जी ने आगे कहा—''हे परीक्षित! मृत्योन्मुख को क्या करना चाहिए? यह तुमसे कहा और सुनो! यदि ब्रह्मतेज की इच्छा हो तो बृहस्पति की, इन्द्रियों की विशेष सामर्थ्य चाहता हो तो इन्द्र की, सन्तान का इच्छुक हो तो प्रजापतियों की, लक्ष्मी चाहता हो तो मायादेवी की, तेज चाहता हो तो अग्नि की, वीरता चाहता हो तो रूद्र की, धन की इच्छा हो तो वसुओं की, अन्नादि की अधिकता चाहने वाले को अदिती की, राज्य चाहे तो विश्वदेवों की, स्वर्ग चाहे तो देवताओं की, प्रजा को अनुकूल करना चाहे तो साध्य देवताओं की, दीर्घायु चाहिए हो तो अश्विनी कुमारों की, पुष्टि व प्रतिष्ठा चाहने वाले को पृथ्वी की तथा आकाश की सौंदर्याभिलाषा हो तो गन्धर्वों की, पत्नी की इच्छा करने वाले को उर्वशी अप्सरा की तथा सबका स्वामी बनने की इच्छा वाले को ब्रह्मा की, यश चाहने वाले को यज्ञ पुरुष की, कोष या खजाने के लिए वरुण की, विद्या व ज्ञान चाहने वालों को भगवान शंकर की, पति-पत्नी में परस्पर प्रेम के लिए पार्वती जी की, धर्म उपार्जन के लिए विष्णु भगवान की, वंश परम्परा की रक्षार्थ पितरों की, बाधाओं से बचने के लिए यक्षों की, बल व शक्ति के लिए मरूद्गणों

की, अभिचार के लिए निर्ऋति की, भोगों के लिए चन्द्रमा की तथा निष्कामता के लिए मनुष्य को नारायण की ही उपासना करनी चाहिए। निष्काम हो या सकाम अथवा मोक्ष का ही इच्छुक हो तो उसे तीव्र भक्ति योग से केवल पुरुषोत्तम भगवान की ही आराधना करना फलद है।''

सूत जी से इतना सुनने के बाद शौनक जी बोले—''परीक्षित जी ने शुकदेव जी से और भी क्या-क्या प्रश्न किए और श्री शुकदेव जी ने उनके जो भी उत्तर दिए हमारी ज्ञानवृद्धि के लिए कृपा पूर्वक हमसे कहिए। हम सब यह प्रसंग पूरा सुनना चाहते हैं।''

सूत जी बोले—''राजा परीक्षित ने सृष्टि रचना रहस्य को जानने की इच्छा प्रकट की। सृष्टि का निर्माण व विनाश किस प्रकार होता है? किन शक्तियों का आश्रय लेकर भगवान यह लीला करते हैं? आदि प्रश्न परीक्षित ने शुकदेव से किए।'' श्री शुकदेव जी ने उनका उत्तर देते हुए कहा—

''सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय के लिए सत्व, रज व तमोगुण रूपी तीन शक्तियों को स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का रूप धारण करने वाले, चर-अचर समस्त प्राणियों में अन्तर्यामी के रूप में विराजमान रहने वाले श्री पुरषोत्तम भगवान को कोटि-कोटि प्रणाम है। पंचभूतों से शरीरों का निर्माण कर उनमें जीवरूप से शयन करने वाले, दस इन्द्रियों, पांच प्राणों और एक मन, इन सोलह कलाओं से युक्त हो 16 विषयों का भोग करने वाले वे सर्वभूतमय भगवान मेरी वाणी को अपने गुणों से अलंकृत करें। ज्ञानियों और योगियों द्वारा शुद्ध बुद्धि व समाधि के माध्यम से जिस आत्मतत्व का साक्षात्कार और दर्शनों के अनंतर अपनी मति व सामर्थ्यानुसार जिनका वर्णन किया जाता है, वे भगवान कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों। वेदगर्भ स्वयम्भु ब्रह्मा जी ने नारद जी के प्रश्न करने पर भगवान नारायण के उपदेश द्वारा प्राप्त जो बात कही थी, वही मैं तुमसे कहता हूं—सावधान होकर सुनो—

''नारद जी ने पूछा—'हे पिता! आप सबके पिता हैं। मुझे आत्मतत्व का साक्षात्कार कराने वाला ज्ञान प्रदान करें। यह संसार क्या है? इसके लक्षण क्या हैं? यह क्यों और किसलिए है? कब से कब तक है? किसके अधीन है? मुझे सब बताइए। सारा संसार ही हथेली पर रखे आंवले की भांति आपकी ज्ञान दृष्टि के भीतर ही है। आखिर आपको यह ज्ञान कहां से मिला? आपका स्वरूप व आधार क्या है? आपके स्वामी कौन हैं? आप अकेले ही समस्त संसार की रचना कैसे कर पाते हैं? और कर लेने पर विकार रहित कैसे रहते हैं? कृपापूर्वक मुझे समझाइए।'

ब्रह्मा जी बोले—'नारद! तुमने जीवों के प्रति हित भाव से यह बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। तुम्हारे समस्त प्रश्नों का एक ही उत्तर-'नारायण' है। वही सब जगत के

और मेरे भी स्वामी हैं, वही आधार हैं। वही यह भी हैं, वही इस जगत के सृष्टा, पालक और संहारक भी हैं। उनसे पृथक कुछ भी नही है। जो कुछ मन बुद्धि और इन्द्रियों के माध्यम से जाना जाता है—सब वही हैं। जो कुछ नहीं जाना जा सकता वह सब भी वहीं हैं। उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। फिर भी वे सत, रज, तम तीन गुणों की माया के कारण—द्रव्य, ज्ञान और क्रिया का आश्रय लेकर, कार्य, कारण और कर्तायन के अभिमान से जीव को भ्रम, मोह व बंधन में डाल देते हैं, जिससे जीव उनके स्वरूप को समझ नहीं पाता और उन्हीं का अंश होते हुए भी अहं के कारण स्वयं को भिन्न समझता है। हे नारद! सृष्टि का एक ही सत्य-नारायण है। इस एक से आगे कुछ नहीं है, पीछे भी कुछ नहीं है। फिर भी जीव-द्वैत के भ्रम में रहता है। अनेकता के भ्रम में रहता है। एक से अलग जो कुछ भी है, सब अविद्या है, माया है। तुम और मैं या यह सृष्टि और इसके जीव केवल अपनी अहं की परिधियों के कारण भिन्न-भिन्न भासित होकर अनेकता का भ्रम उत्पन्न करते हैं, वरना जो कुछ भी है और जो कुछ नहीं भी है, वह सब मात्र एक नारायण ही हैं।'

'एक से अनेक होने की इच्छा होने पर यही मायापति प्रभु ही अपनी माया से अपने स्वरूप में स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार करते हैं। अपनी ही शक्ति से काल के तीनों गुणों में विक्षोभ उत्पन्न करके, स्वभाव से रूपांतरित होकर कर्म से महतत्व को जन्म देते हैं। सत-रज-तम इन त्रिगुणों की वृद्धि होने से महतत्व में और ज्ञान-क्रिया व द्रव्य में जो विकार उत्पन्न होता है, वह अहंकार कहा जाता है। जो विकारी होकर—वैकारिक, तेजस और तामस तीन प्रकार का हो जाता है। यही क्रमशः ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्ति प्रधान हैं। पंच महाभूतों के कारणरूप तामस अहंकार में विकार होने से सर्वप्रथम आकाश महाभूत उत्पन्न होता है, जिसकी तन्मात्रा शब्द और गुण है। अतः उसकी इन्द्री कान है। आकाश में विकार होने से स्पर्श गुण व तन्मात्रा वाला वायु महाभूत उत्पन्न होता है, जिसकी इन्द्रीय त्वचा है। काल, कर्म व स्वभाव से अनन्तर वायु में भी विकार उत्पन्न होने से रूप गुण तन्मात्रा वाले तेज/अग्नि की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार अग्नि महाभूत विकारी होकर रस गुण तन्मात्रा वाले जल महाभूत को उत्पन्न करता है और जल में विकार होने से गन्ध गुण तन्मात्रा वाला पृथ्वी महाभूत उत्पन्न होता है। इनकी इन्द्रियां क्रमशः नेत्र, जिस्वा तथा नासिका हैं। इनमें उत्तरोत्तर अपने गुणों के साथ-साथ अपने कारण महाभूत के गुण भी विद्यमान रहते हैं। जैसे आकाश में शब्द तो आकाश से वायु उत्पन्न होने के कारण उसमें स्पर्श के साथ शब्द भी रहता है, इसी प्रकार अग्नि में रूप के साथ-साथ स्पर्श व शब्द भी रहते हैं और जल में स्पर्श, शब्द व रूप के साथ-साथ रस व पृथ्वी में इन चारों के साथ गन्ध का गुण होता है। इस प्रकार तामस अहंकार से पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं।'

महर्षि नारद को नारायण के महात्म्य को समझाते हुए ब्रह्मा जी

'वैकारिक अंहकार में विकार से मन तथा दस इन्द्रियों के दस अधिष्ठाता देवताओं की उत्पत्ति होती है। यह अधिष्ठता देवता क्रमशः दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति हैं। तेजस अहंकार पांच ज्ञानेन्द्रियों (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा प्राण नासा), पांच कर्मेंद्रियों (वाक्, हस्त, पाद, गुदा तथा जननेन्द्रिय), इन दस इन्द्रियों तथा ज्ञान शक्ति रूप बुद्धि व क्रिया शक्तिरूप प्राण की भी वैकारिक होकर उत्पत्ति होती है।'

'प्रारम्भ में यह महाभूत, इन्द्री, मन आदि पृथक-पृथक होने से अपने रहने के लिए भोगों के साधन रूप शरीर के निर्माण में असमर्थ होते हैं, किन्तु ईश्वरीय शक्ति से प्रेरित होकर जब ये संयुक्त हो संगठित हो जाते हैं और परस्पर कार्य-कारण भाव स्वीकार कर लेते हैं, तब व्यक्ति समष्टि रूप और पिण्ड-ब्रह्माण्ड रूप की रचना होती है। यह ब्रह्माण्ड रूप अण्डा, जिसे हिरण्यगर्भ भी कहा गया है, एक हजार वर्षों तक जल में निमग्न रह निर्जीव रहता है, तब भगवान की प्रेरणा से उस अण्ड के फूटने से वही विराट पुरुष निकलता है, जिसके अंग-प्रत्यंग सहस्रों होते हैं। ब्रह्माण, इस विराट पुरुष के मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जांघों से और शूद्र पैरों से उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के चरणों से कटि तक सातों पाताल और भूलोक की कल्पना की जाती है। नाभि में भुर्वलोक, हृदय में स्वर्लोक , छाती में महर्लोक, गले में जनलोक, कपोलों में तपलोक तथा मस्तक में सत्यलोक कल्पित हैं। इसी प्रकार सातों पातालों में—कमर में अतल, जांघों में वितल, घुटनों में सुतल, पिंडलियों में तलातल, टखनों में महातल तथा पंजों व एड़ियों में रसातल एवं तलवों में पाताल कल्पित हैं। यह कल्पनाएं विद्वानों द्वारा उपासना हेतु की जाती हैं। कई विद्वान संक्षेप में त्रिलोकी की ही कल्पना इस विराट पुरुष में इस प्रकार करते हैं—चरणों में पृथ्वी, नाभि में भुवर्लोक व सिर में स्वर्लोक। यही विराट पुरुष नारायण हैं।'

'इन्हीं के मुख से वाणी व उसके अधिष्ठाता देव अग्नि पैदा हुए। सातों छन्द इनकी सात धातुओं से, सब प्रकार के अन्नरस आदि जीभ से, पांचों वायु नासाछिद्रों से, अश्विनी कुमार नासिका से, समस्त औषधियां व गन्ध सहित उत्पन्न हुए। नेत्रों से सूर्य-चन्द्र, कानों से आकाश, शब्द, सारे यज्ञ व स्पर्श उनकी त्वचा से उद्भिज पदार्थ रोभों से, उनके दाढ़ी-मूंछ केश व नखों से—बिजली, शिला, मेघ व लोहा आदि तथा भुजाओं से लोकपाल उत्पन्न हुए। इस प्रकार जो भी कुछ पदार्थ, जीव, वस्तु, घटक आदि सृष्टि में हैं। सब उनके विभिन्न अंग-प्रत्यंगों से उत्पन्न हुए हैं। देवता, दानव, नाग, पशु, पक्षी, यक्ष, किन्नर, गंधर्व, पिशाच, जलचर , सरिसर्प, कीट-पतंग, वृक्ष, नदियां, पर्वत, सागर, नक्षत्र, ग्रह, तारे आदि सब उन्हीं के शरीर से उत्पन्न हुए हैं। वही सम्पूर्ण विश्व हैं। उनके दस अंगुल के परिमाण में यह समस्त विश्व उन्हीं में स्थित है।'

'मैं सदा प्रेमपूर्ण व उत्कण्ठित हृदय से उन्हीं के स्मरण में रमा रहता हूं, इसी से मेरी वाणी कभी असत्य नहीं होती, मेरा मन कभी असत् संकल्प नहीं करता, मेरी इन्द्रियां कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करतीं इसीलिए कभी मुझमें विकार उत्पन्न नहीं होता। यह सब उन्हीं श्री हरि प्रभु के चिन्तन व उनकी अनुकम्पा का प्रताप है। मैं और भगवान शंकर भी उनके स्वरूप से भली भांति परिचित नहीं हैं, स्वयं वे नारायण भी अपनी महिमा का विस्तार न जानते होंगे, फिर देवताओं, ऋषियों और मनुष्यों की बात ही क्या है? अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार ही सब अटकलें लगाते हैं, परन्तु वे परमपुरुष तो बुद्धि आदि की सीमाओं से बहुत परे हैं। वे प्रत्येक कल्प में, अपने में ही अपनी सृष्टि आप ही करते हैं। आप ही अपने आप का पालन और आप ही अपने आप का संहार करके अपने आप में ही लीन हो जाते हैं। इस सृष्टि, पालन व विनाश की लीला को अपने आप ही करते हुए भी वे इन सब से अलग रहते हैं और अलग रहते हुए भी सब में विद्यमान हैं। उनका न आदि है, न अंत। वे सनातन और एक रस हैं। शान्त व शुद्ध अन्तःकरण वाले उन श्रीहरि का अपने स्व में साक्षात्कार कर सकते हैं, किन्तु तर्क, विचार या पाखण्ड द्वारा उनकी परछाईं भी देख नहीं पाते।'

'हे नारद! यह विराट पुरुष उनका नारायण नामक प्रथम अवतार है। उनके अन्य प्रधान अवतार भी शास्त्रों में वर्णित हैं, जिनका मैं तुमसे वर्णन करूंगा, क्योंकि इन अवतारों व प्रभुलीला की कथाएं सुनने में बहुत सरस व मधुर हैं तथा अन्तःकरण को निर्मल करने वाली एवं दोषों को दूर करने वाली हैं। ज्ञान और भक्ति को प्रदान करने वाली, मोक्षदायनी एवं अमृत के समान हितकारिणी हैं। इन्हीं सब को श्रीमद्भागवत पुराण कहा जाता है। सो मैं सभी के कल्याण के लिए तुमसे कहता हूं।''

ब्रह्मा जी ने आगे कहा—''प्रलय जल में डूबी पृथ्वी के उद्धार के लिए इन्हीं अनन्त भगवान ने सर्वज्ञमय वाराह रूप धारण किया। तब जल के भीतर ही आदि दैत्य हिरण्याक्ष का अपनी तीखी दाढ़ों से वध करके पृथ्वी को रसातल से निकाला। उनका यह दूसरा अवतार वाराह अवतार कहलाया।'

'इन्हीं भगवान ने फिर रुचि प्रजापति की पत्नी आकूति के गर्भ से सुयज्ञ के रूप में अवतार लिया तथा दक्षिणा नामक पत्नी से सुयम नामक देवताओं को उत्पन्न किया। इस अवतार में उन्होंने तीनों लोकों के बड़े-बड़े संकट हर लिए। अतः स्वयम्भुव मनु ने उनको 'हरि' नाम से पुकारा। अतः यह हरि नामक तीसरा अवतार कहलाया।'

'देवहूति के गर्भ से कर्दम प्रजापति के यहां नौ बहिनों के साथ कपिल रूप में इनका चौथा अवतार हुआ जो कपिल अवतार कहलाया। इस अवतार में कपिल भगवान ने अपनी माता को आत्मज्ञान उपेदश दिया।'

'हे नारद! महर्षि अत्रि भगवान को पुत्र रूप में पाना चाहते थे, उनकी पत्नी अनुसूइया ने भी भगवान से ऐसा ही वर लिया था। अतः एक दिन प्रसन्न होकर भगवान ने स्वयं को पुत्ररूप में उन्हें दिया, जिससे उनका नाम दत्तात्रेय (अत्रि को दिया हुआ) पड़ा, अतः इस पांचवें अवतार को दत्तात्रेय अवतार कहा गया। राजा यदु, सहस्रार्जुन, राजा अलर्क तथा प्रह्लाद आदि पर कृपा कर दत्तात्रेय जी ने ब्रह्म ज्ञान, सिद्धियां व मोक्ष दिया।'

'मैंने सृष्टि के आरम्भ में विविध लोकों की रचना के लिए तप किया था। उससे प्रसन्न होकर भगवान ने 'तप' अर्थ वाले ही 'सन' नाम से युक्त होकर—सनक, सनन्दन, सनातन व सनत्कुमार के रूप में मेरे पुत्र होकर अवतार लिए। प्रलय के कारण पहले भूले हुए ब्रह्म ज्ञान को इस अवतार में उन्होंने ऋषियों को उपदेश दिया।'

'नर-नारायण के रूप में उन्होंने सातवां अवतार धर्म की पत्नी व दक्ष की कन्या मूर्ति के गर्भ से लिया और क्रोध को जीता, जिसे काम को जीतने वाले भगवान शंकर भी जीत न पाए थे। इसी प्रकार ब्राह्मणों की हुंकार से भस्म हुए कुमार्गी वेन राजा जब नरक में गिरने लगे तब ऋषियों की प्रार्थना पर उनके शरीर मंथन से उनके पुत्र पृथु के रूप में भगवान ने आठवां अवतार लिया। इस प्रकार अपने पिता वेन की 'पुत्' नामक नरक से रक्षा करने के कारण 'पुत्र' (पुत्-नरक से त्राण दिलाने वाला) शब्द को सार्थक किया। इसी पृथु अवतार में पृथ्वी को गाय बनाकर उससे समस्त जगत के हित के लिए औषधियों का दोहन किया। इसी कारण धरती का नाम पृथ्वी भी पड़ा। यह अवतार मनुष्यों के लिए बहुत हितकारी हुआ।'

'महर्षियों को अवधूतचर्या या परमहंस पद का मार्ग दिखाने के लिए इन्हीं भगवान ने राजा नाभि की पत्नी सुदेवी के गर्भ में ऋषभदेव के रूप में अवतार लिया, जो ऋषभावतार कहा गया। दसवें अवतार में मेरे ही यज्ञ में स्वर्णकान्ति वाले हयग्रीव के रूप में उन्होंने अवतार लिया। भगवान हयग्रीव की नासिका से ही उच्छ्वास के रूप में वेद वाणी प्रकट हुई। यह हयग्रीव अवतार वेदमय, यज्ञमय और सर्वदेवमय कहा जाता है।'

'चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में वे मत्स्य रूप में सत्यव्रत को मिले। उस समय पृथ्वी सहित समस्त जीवों को अपनी पीठ पर धारण कर उन्होंने प्रलय के भयंकर जल से रक्षा की और मेरे मुख से गिरे हुए वेदों की रक्षा की। यह उनका ग्यारहवां मत्स्यावतार कहलाया। बारहवां अवतार उन्होंने एक कछुए के रूप में लिया और अमृत प्राप्ति के लिए देवताओं और दानवों द्वारा किए गए समुद्र मंथन में मंदराचल पर्वत का आधार बने। इसे कश्यप अवतार कहा गया। इसी समय उनके धनवन्तरी व मोहनी अवतार भी हुए।'

'अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा तथा मनुष्यों को निर्भयता दिलाने के लिए एवं देवताओं की रक्षार्थ उन्होंने नरसिंह अवतार लिया तथा महापराक्रमी दैत्य हिरण्यकश्यप का वध किया। इसी प्रकार ध्रुव को परमपद देकर तथा गजेन्द्र को मगर के मुख से छुड़ा कर उन्होंने भक्तों की रक्षा व उन पर कृपा का अपनी महानता सिद्धि की। अदिति के सबसे छोटे पुत्र के रूप में उन्होंने वामन अवतार लिया और राजा बलि से तीन पगों में त्रिभुवन जीत लिया। हंस के रूप में स्वयं तुमको योग, ज्ञान और आत्मतत्व को प्रकाशित करने वाले भागवत् धर्म का उपदेश दिया। स्वयम्भुव आदि मन्वन्तरों में मनु के रूप में अवतरित हो मनुवंश की रक्षा की। इस प्रकार और भी अनेकों अवतार प्रभु ने लिए।'

'संसार के क्षत्रिय जब आर्य मर्यादाओं का उल्लंघन करने लगे और अहंकार युक्त होकर ब्राह्मण द्रोही हो गए तब इन्हीं भगवान ने महा पराक्रमी परशुराम के रूप में अवतरित होकर अपने विकराल परशु से इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार कर पृथ्वी को क्षत्रिय हीन किया। दिग्विजयी और महावीर्यवसन राक्षस रावण और उसके बंधु व पुत्रों से ऋषियों, मनुष्यों व देवताओं की रक्षा के लिए यही प्रभु अपने शंख, चक्र व शेष आदि चिन्हों सहित—लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के साथ रामचन्द्र के रूप में अवतरित हुए और भगवान शंकर के आराध्य बने।'

'जब द्वापर युग में दैत्यों और क्षत्रियों का अनाचार पृथ्वी पर बढ़ेगा तो हे नारद! यही प्रभु अपने अंश शेष सहित श्रीकृष्ण व बलराम के रूप में अवतरित होंगे और अपनी महिमा को प्रकट करने वाले इतने अद्भुत चरित्र करेगें कि मनुष्य उनकी लीलाओं का रहस्य तनिक भी समझ न पाएंगे। पूतना वध, बकासुर वध, कालिया मर्दन, इंद्र गर्व हरण, धेनुकासुर वध, प्रलम्बासुर वध, केशीवध, अरिष्टासुर वध, कंस वध, कालयवन वध, भौमासुर वध, शम्बरासुर वध आदि तथा पाण्डवों के साथ मिलकर विभिन्न अन्यायी क्षत्रियों का वध व अनेक लीलाएं करेंगे तथा गीता उपदेश देंगे। ये कृष्ण सोलह हजार एक सौ आठ रानियों के होते हुए भी योगेश्वर होंगे और कर्मयोग का उपदेश करेंगे।' (यह प्रसंग क्योंकि ब्रह्मा जी द्वारा पहले नारद को कहा गया है। बाद में शुकदेव जी परीक्षित को और सूत जी शौनक ऋषि को कह रहे हैं। अतः कृष्णावतार को भविष्य में होना कहा है। स्पष्ट है कि नारद और ब्रह्मा जी का यह संवाद द्वापर से पहले और त्रेतायुग के बाद का है)।

Very Imp.

'समय के प्रभाव से मनुष्यों की बुद्धि, स्मृति व क्षमता का ह्रास होने लगेगा। अतः यही भगवान पराशर ऋषि के द्वारा सत्यवती के गर्भ से व्यास के रूप में अवतरित होकर वेदों को विभिन्न उपशाखाओं में विभाजित करेंगे। ऐसा वे प्रत्येक कल्प में करते हैं। इस युग के व्यास जी कृष्ण द्वैपायन होंगे। बाद में कलियुग में ये भगवान बुद्ध के रूप में अवतरित होकर उपधर्मों का उपदेश करेंगे तथा कलियुग के अन्त में जब

समस्त मर्यादाएं व व्यवस्थाएं छिन्न-भिन्न होकर अधर्म ही सर्वत्र व्याप्त होगा तब वे सज्जनों की रक्षार्थ कल्कि अवतार लेंगे।'

'संसार की रचना के समय मुझ ब्रह्मा, नौ प्रजापतियों तथा मरीचि आदि ऋषियों के रूप में, सृष्टि की रक्षा के समय विष्णु, धर्म, मनु एवं प्रतापी राजाओं के रूप में तथा जगत के विनाश के समय रूद्र, अधर्म, क्रोधवश सर्प एवं दैत्यों के रूप में उन्हीं भगवान की माया विभूतियां प्रकट होती हैं। इस प्रकार हे नारद! भगवान ने मुझे जो उपदेश दिया यही वह भागवत है जो मैंने संक्षेप में कही। अब तुम श्रीहरि के प्रति लोगों की भक्ति उत्पन्न करने के लिए इसका विस्तार से वर्णन करो।"

तब राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से नारद जी द्वारा विस्तृत की हुई भागवत कथा सुनाने का अनुरोध किया। साथ ही यह भी पूछा कि—"महाकल्प और उनके अन्तर्गत अवान्तर कल्प कितने हैं? काल का अनुमान कैसे करते हैं? विभिन्न कर्मों से जीवों की गतियां कितनी होती हैं? सृष्टि में रहने वाले जीवों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है? धर्म क्या है? तत्वों का लक्षण व स्वरूप क्या है और वे कुल कितने हैं? आध्यात्म योग व आराधना की विधि क्या है? उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय किस प्रकार होती है? मोक्ष का स्वरूप क्या है? कर्मबन्धन क्या है? आदि सब मुझसे कहिए।"

तब शुकदेव जी प्रसन्नता से बोले—"हे राजन! आत्मतत्व ज्ञान के लिए श्रीहरि ने ब्रह्मा जी को जो परमसत्य परमार्थ उपदेश दिया, वही मैं तुमसे कहता हूं। तुम ध्यानपूर्वक सुनो। तुम्हारे समस्त प्रश्नों का उत्तर तुम्हें अवश्य ही प्राप्त हो जाएगा—

"हे राजन! ब्रह्मा जी जब कमलासन पर बैठ कर प्रारम्भ में—सृष्टि रचना का विचार कर रहे थे, तब प्रलय सागर में उन्होंने व्यंजनों के सोलहवें व इक्कीसवें अक्षर—'त' और 'प' को—'तप-तप' इस प्रकार दो बार सुना। इस प्रकार आदेश प्राप्त हुआ जान वे तप करने के लिए बैठ गए, क्योंकि हे परीक्षित! तप द्वारा कुछ भी दुलर्भ नहीं है। त्यागियों का यही धन है। महातपस्वी ब्रह्मा जी ने एक हजार दिव्य वर्षों तक तप किया, जिससे वे समस्त लोकों को प्रकाशित करने में समर्थ हो गए। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर जगदीश्वर ने उन्हें अपना लोक दिखाया, जिससे परे कोई लोक नहीं है। जहां काल और माया दोनों ही की दाल नहीं गलती, फिर भला—भय, क्षोभ, वृद्धावस्था, रोग व दुःख आदि वहां कैसे रह सकते हैं।'

'श्री भगवान ने दर्शन देकर ब्रह्मा जी से इस प्रकार कहा—"हे ब्रह्मा! तुम्हारे हृदय में तो समस्त वेदों का ज्ञान है। तप द्वारा तुमने मुझे संतुष्ट कर दिया है। मुझे देखे बिना मात्र मेरी वाणी सुनकर ही तुमने इतना घोर तप किया है। तुम तपस्वियों में सबसे बड़े तपस्वी हो। तपस्या मेरा हृदय है और मैं तपस्या की आत्मा हूं। तपस्या से ही मैं सृष्टि, पालन व विलय करता हूं। तपस्या मेरी एक दुलंध्य शक्ति है।"

ब्रह्मा जी ने कहा—"प्रभो! आपके सगुण व निर्गुण दोनों रूपों को जान पाऊं ऐसी मुझे सामर्थ्य दीजिए। आपकी आज्ञानुसार मैं सृष्टि कर सकूं और कर्तायन के अभिमान से न बंध पाऊं ऐसा मुझे आशीर्वाद दीजिए।"

भगवान ने कहा—"ऐसा ही होगा। प्रेमाभक्ति, अनुभव व साधनों युक्त अपने अत्यन्त गोपनीय स्वरूप का ज्ञान तुम्हें देता हूं, उसे ग्रहण करो। मेरा विस्तार, लक्षण, गुण और लीलाओं को, रूप को तुम इसके द्वारा तत्वतः जान पाओगे। अतः कभी भ्रम या विकार से युक्त नहीं होओगे। सृष्टि से पूर्व जब कुछ भी नहीं था तब केवल मैं था। जहां यह सृष्टि नहीं है, वहीं मैं हूं। इस सृष्टि में भी जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह सब मैं हूं। जो अनुभूति व समझ से बाहर है, वह भी मैं हूं। जब यह सृष्टि नहीं रहेगी, तब ज़ो शेष रह जाएगा, वह भी मैं ही हूंगा। जो कुछ भी पहले था, अब है, भविष्य में होगा, यह सब मेरा ही विलास और विस्तार है। मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है, तुम भी वास्तव में मैं ही हूं। जहां मेरी प्रतीति न हो रही हो या मुझसे भिन्न किसी अन्य सत्य की प्रतीति हो रही हो- वहां मेरी माया को समझना, क्योंकि यह माया का ही प्रभाव है, किन्तु मेरी माया भी मैं ही हूं। मुझसे भिन्न न कोई था, न है और न कभी होगा।'

तब ब्रह्मा जी को तत्व ज्ञान प्राप्त हुआ। अपने प्रियपुत्र नारद द्वारा प्रश्न करने पर भगवान श्रीहरि द्वारा संक्षिप्त चतुःश्लोक भागवत का ज्ञान ब्रह्मा जी ने नारद को दिया। नारद जी ने इसी दस लक्षणों वाले भागवत पुराण को मेरे तेजस्वी पिता को सुनाया। अब तुम्हारे पूछने पर हे राजन! वहीं भागवत पुराण मैं तुमसे कह रहा हूं जिसमें तुम्हारे सभी प्रश्नों का उत्तर भी है।" श्री शुकदेव जी ने परीक्षित से कहा—"इस भागवत में—सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इन दस विषयों का वर्णन है, अतः इसे दशलक्षणी कहा गया है।

'ईश्वरीय प्रेरणा से गुणों में क्षोभ होकर पंचमहाभूतों से महतत्व तक की उत्पत्ति 'सर्ग' कहलाती है। विराट पुरुष से उत्पन्न ब्रह्मा द्वारा जो अन्य सृष्टियों का निर्माण होता है वह 'विसर्ग' कही जाती है। प्रतिपल नाश की ओर बढ़ने वाली सृष्टि के एक मर्यादा में स्थिर रहने से जो भगवान की श्रेष्ठता सिद्ध होती है, उसे 'स्थिती', तथा अपने द्वारा रक्षित सृष्टि में भगवान अपने भक्तों पर जो कृपा करते हैं, उसे 'पोषण' कहते हैं। उनके विभिन्न अवतारों व लीलाओं की कथा 'ईशकथा' तथा भगवान की योगनिद्रा के समय जीवों को अपनी उपाधियां सहित उसमें लीन हो जाना 'निरोध' कहा जाता है। विभिन्न मन्वन्तरों के अधिपति जो प्रजापालन हेतु शुद्ध धर्म का अनुष्ठान करते हैं वह 'मन्वन्तर', जीवों की जो वासनाएं कर्मों द्वारा उन्हें बन्धन में डालती हैं वह 'ऊति' कही जाती है। बन्धन मुक्त हो परमात्मा में लीन होना ही 'मुक्ति'

तथा यह चराचर जगत की उत्पत्ति व प्रलय, जिस तत्व से प्रकाशित होते हैं, वह परम ब्रह्म ही 'आश्रय' है, इसी को शास्त्र परमात्मा कहते हैं।'

'हे राजन! पूर्वोक्त विराट पुरुष ब्रह्माण्ड को फोड़ कर निकला और अपने रहने के स्थान के लिए जल की सृष्टि की। उस विराट पुरुष 'नर' से उत्पन्न होने से जल का नाम 'नार' पड़ा। अपने उस उत्पन्न किए जल में एक हजार वर्षों तक उस पुरुष ने विश्राम किया। अतः उसे 'नारायण' कहा गया। योगनिद्रा से जागकर 'नारायण ने जब अनेक होने की इच्छा की तब अपने स्वर्णिम वीर्य को उन्होंने अधिदैव, अध्यात्म तथा अधिभूत—इन तीन भागों में बांटा। एक ही वीर्य तीन भागों में कैसे विभक्त हुआ, सो सुनो—

'विराट पुरुष नारायण के हिलने-डूलने पर शरीरस्थ आकाश से इन्द्री बल, मनोबल व शरीर बल उत्पन्न हुआ, जिससे इन सब का राजा प्राण उत्पन्न हुआ। प्राण के आवागमन व शरीर में विचरण से नारायण को खाने-पीने की इच्छा हुई। अतः सर्वप्रथम उसके शरीर में मुख उत्पन्न हुआ। मुख से तालु, तालु से रसना और रसना से अनेक प्रकार के रसों की उत्पत्ति हुई। बोलने की इच्छा होने पर—वाणी, उसके अधिष्ठाता देव अग्नि तथा बोलना (ध्वनि/आवाज/शब्द) उत्पन्न हुआ। इस प्रकार जैसी-जैसी इच्छा होती गई वैसी-वैसी रचनाएं उस परमपुरुष के शरीर में होती चली गई।'

'इस प्रकार तुम्हें भगवान के स्थूल रूप का वर्णन बताया, जिसमें समस्त चराचर सृष्टि, जीव, अस्तित्व, सत्ता व पदार्थ कल्पित हों यह स्थूल रूप (भगवान का विश्व रूप अर्थात ब्रह्मांड ही) बाहर से पंचमहाभूत, अहंकार, प्रकृति व महतत्व इन आठ आवरणों से घिरा हुआ हो इससे परे भगवान का सूक्ष्म रूप है, जो अव्यक्त, आदि, मध्य व अंत से रहित, नित्य, निर्विशेष है। अतः मन व वाणी की पहुंच से परे है किन्तु यह स्थूल व सूक्ष्म दोनों ही शरीर तो मायारचित है, वास्तव में भगवान तो देह, नाम, रूप आदि सीमाओं से परे हैं और संसार के समस्त रूप उन्हीं के होने के कारण वह निराकार व अरूप होते हुए भी साकार व सर्वरूप हैं। सब कुछ करते हुए भी वे निष्क्रिय हैं और कर्ता भाव से स्वच्छन्द हैं। समस्त कल्पों में सृष्टि निर्माण का यही क्रम है। काल का परिमाण, कल्प व मन्वन्तरों आदि का वर्णन आगे करेंगे।"

शौनक जी ने कहा—"हे महाज्ञानी सूत जी! आपने बीच में कहा था कि महात्मा विदुर जी की भी तीर्थयात्राओं के समय मैत्रेय ऋषि से अध्यात्मविषयक चर्चा हुई थी। हे प्रभो! कृपा कर हमें यह प्रसंग तथा विदुर जी का चरित्र भी सुनाइए।"

सूत जी ने कहा—"राजा परीक्षित ने भी विदुर तथा मैत्रेय का अध्यात्मविषयक संवाद सविस्तार जानना चाहा था। उत्तर में जो शुकदेव ने उन्हें सुनाया, वही तुमको सुनाता हूं। एकाग्रचित हो कर सुनो।"

□□

तृतीय स्कन्ध

सूत जी ने कहा—सर्वज्ञ शुकदेव जी ने परीक्षित से कहा—"जब लाक्षागृह, द्रोपदी चीर हरण और अन्यायपूर्वक जुए में राज्य छीन वनबास को निष्कासित करने के बाद वापस लौटने पर भी दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को राज्य न लौटाए जाने पर भी धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों को अधर्म से नहीं रोका। भीष्मादि बुजुर्गों के उपदेशों पर भी कान न धरा, तब विदुर जी ने प्रधान आमात्य होने के नाते धृतराष्ट्र को सद्‌बुद्धि देने के लिए वह सम्मति दी, जिसे नीतिशास्त्र के ज्ञाता 'विदुर नीति' कहते हैं।"

'विदुर जी बोले—'महाराज! यदि कुल की रक्षा और कीर्ति चाहते हैं, तो पाण्डवों को राज्य लौटा दें और दुर्योधन की महत्त्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाएं। शकुनी की कुटिल संगति से दुर्योधन आदि कुमारों को दूर रखें। पाण्डव धर्म के पक्ष में हैं। अतः श्रीकृष्ण उन्हीं के पक्ष में हैं। जिस पक्ष में धर्म होता है उसी पक्ष में कृष्ण होते हैं तथा जहां कृष्ण होते हैं, उसी की जय होती है। समस्त प्रजा का स्नेह व समर्थन योग्यताओं के कारण युधिष्ठिर को प्राप्त है, ऐसे में उन्हें राज्य न देना द्रोह को जन्म देगा। पाण्डवों की सहनशीलता को इतना अधिक न आजमाएं कि वे फट पड़ें। हे राजन! मोह, लोभ, क्रोध, काम और महत्त्वाकांक्षाओं को वश में न रखने वाला राजा शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। यदि आप अपने भविष्य के लिए चितिंत हैं तो भी आप युधिष्ठिर को राज्य सौंप दें। वह राजा बनकर भी आदर करने के कारण आपका सदा सम्मान करेगा। दुर्योधन को राजा बनाकर तो आप अपना और दुर्योधन का ही नहीं समस्त कौरवों का और हस्तिनापुर का भी भविष्य संकट में डाल देंगे। हे राजन! मित्र, शुभचिंतक, आमात्य, वैद्य और वकील की बात न मानने वाला मनुष्य नष्ट हो जाता है। शेष आप के ऊपर है। मैंने आपको कल्याणकारी परामर्श देकर अपने कर्तव्य को पूरा किया है। आपको राजा होने के कारण अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। राजा का सबसे बड़ा कर्तव्य न्याय, धर्म, व्यवस्था का पालन करते हुए राज्य और प्रजा की रक्षा करना है।'

तब दुर्योधन व शकुनी आदि ने विदुर जी की सम्मति का तिरस्कार करते हुए धृतराष्ट्र को उकसाया और धृतराष्ट्र ने विदुर जी की बात न मानी। अपने ही कुल में बान्धवों से अपमानित होने के बाद वे हस्तिनापुर व अपने बांधवों का विनाश देखने के लिए नहीं रुके और ईश्वर की इच्छा मान वे हस्तिनापुर त्याग कर तीर्थ यात्रा पर निकल गए। इस प्रकार जब तक वे विभिन्न तीर्थों का भ्रमण करते हुए प्रभास क्षेत्र तक पहुंचे, तब तक श्रीकृष्ण की सहायता से युधिष्ठिर पृथ्वी पर एक छत्र अखंड राज्य करने लगे थे। महाभारत का युद्ध सम्पन्न हो चुका था। वहीं विदुर जी ने अपने कौरव बन्धुओं के विनाश का समाचार सुना। वहां से चल कर जब वे यमुना तट पर पहुंचे तो बृहस्पति के शिष्य और श्रीकृष्ण के प्रख्यात सेवक उद्धव जी से उनकी भेंट हुई और विदुर जी ने उनसे कृष्ण-बलराम व यदुवंशियों की कुशलक्षेम पूछी।

'तब उद्धव जी ने कहा—'विदुर जी! अब मैं उनकी कुशल क्या सुनाऊं? श्रीकृष्ण रूपी सूर्य के छिप जाने के बाद हमारे घरों को कालरूपी अजगर ने खा डाला है। समस्त यादव वंश ही ऋषिशाप से ग्रस्त होकर आपस में लड़कर नष्ट हो गया है। श्रीकृष्ण ने अपने लोक पधारने से पूर्व मुझसे कहा था कि मैं पूर्व जन्म में वसु था और यह मेरा पृथ्वी पर अंतिम जन्म है। तब उन्होंने मुझे आत्मतत्व का उपदेश दिया। अब मैं उनके प्रिय क्षेत्र बद्रिकाश्रम को जा रहा हूं।'

'तब विदुर जी ने बहुत शोक करने के बाद कहा—'उद्धव जी! योगेश्वर कृष्ण ने जो गूढ़ रहस्य प्रकट करने वाला परमज्ञान आप से कहा था। वह कृपा करके मुझसे भी कहिए, क्योंकि प्रभु भक्त तो अपने सेवकों का हित सदैव ही विचारा करते हैं। यह सुनकर उद्धव जी बोले—'विदुर जी! जिस समय मुझको श्रीकृष्ण ने आत्म ज्ञान का उपदेश दिया था उस समय मैत्रेय जी भी वहीं उपस्थित थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें आपको वह उपदेश देने का आदेश दिया था। अतः श्रीकृष्ण के परम अनुरागी मैत्रेयऋषि की सेवा में आपको वह उपदेश सुनने के लिए उपस्थित होना पड़ेगा। ऐसा ही प्रभु का आदेश है।''

शुकदेव जी ने आगे कहा—''हे राजन! तब विदुर जी यमुना तट से चलकर गंगा जी के किनारे मैत्रेय जी के पास पहुंचे।''

परीक्षित बोले—''प्रभो! समस्त यदुवंश के नष्ट हो जाने पर भी उद्धव जी किस प्रकार जीवित रह सके? तब शुकदेव जी ने कहा—''वे आत्मजयी और इन्द्रियजीत थे। अतः श्रीकृष्ण ने ही प्रजा को ज्ञान शिक्षा देने के निमित्त उन्हें बद्रिकाश्रम में रहने की आज्ञा दी थी।''

शुकदेव जी ने आगे कहा—''हरिद्वार क्षेत्र में परम ज्ञानी मैत्रेय जी की सेवा में उपस्थित होकर भगवान की अवतार लीलाएं तथा श्रीकृष्ण जी द्वारा दिए गए

आत्मज्ञान उपदेश को जानने की विदुर जी ने इच्छा प्रकट की तब मैत्रेय जी ने इस प्रकार कहा—

'विदुर जी! आप भगवान कृष्ण और उनके भक्तों को सर्वदा प्रिय हैं, अतः निजधाम पधारते समय भगवान मुझे आपको ज्ञानोपदेश करने की आज्ञा दे गए थे। अतः मै जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, जय तथा प्रभु लीलाओं का आपसे वर्णन करता हूं।'

'कृष्टा और दृश्य का अनुसंधान करने वाली शक्ति ही कार्यकारण रूपा माया है। माया द्वारा ही भगवान सृष्टि करते हैं। काल शक्ति से त्रिगुणमयी माया में क्षोभ होने से तथा परमात्मा द्वारा चिदाभास रूप बीज स्थापित करने से महतत्व प्रकट हुआ। प्रभु इच्छा से महतत्व के विकृत होने से अहंकार उत्पन्न हुआ। कार्य, करण व कर्ता रूप होने से यह अहंकार ही भूत, इन्द्रिय और मन का कारण है। यह अहंकार त्रिगुण (सत, रज, तम) के आधार पर क्रमशः वैकारिक, तेजस व तामस तीन प्रकार का है। इनमें विकार होने से वैकारिक से मन व इन्द्रियों के अधिष्ठता देव हुए, तेजस से दसों इन्द्रियां तथा तामस से सूक्ष्म भूतों का कारण शब्द-तन्मात्र उत्पन्न हुआ, जिससे आत्मा का बोध कराने वाला आकाश हुआ। आकाश में विकृति से वायु तथा इस प्रकार क्रमशः विकृतियों से तेज, जल व पृथ्वी उत्पन्न हुए, किन्तु पृथक होने के कारण वे विश्व रचना में असफल हुए। तब उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की—कि वे ब्रह्माण्ड रचना के लिए उन्हें क्रिया शक्ति व ज्ञान शक्ति प्रदान करें।'

'तब उनकी प्रार्थना स्वीकार करके वे एक साथ ही—अहंकार, महतत्व, पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रायें, दसों इंन्द्रियों और एक मन—इन 23 तत्वों के समुदाय में प्रविष्ट हो गए। ज़ीवों में सोए हुए अदृष्ट को जाग्रत करके तत्वसमूह को क्रियाशक्ति से परस्पर मिला दिया। इस सम्मिलन और संगठन से विराट पुरुष की उत्पत्ति हुई, जिस पर समग्र ब्रह्माण्ड आश्रित है। अण्डरूप में जल में एक हजार वर्षों तक विश्राम करके, उस तत्वों के गर्भकाल में ज्ञान, क्रिया व इच्छा शक्ति से उन्होंने अपने 14 विभाग किए (एक-हृदय, दस प्राण तथा आध्यात्मिक, आधि दैविक व आधिभौतिक)—यही विराट पुरुष नारायण के रूप से जाना जाने वाला, भगवान का आदि अवतार हुआ। (प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनन्जय—ये दस प्राण हैं।)' फिर विराट पुरुष के मुख, वायु, जिह्वा व नथुने आदि सभी अंग-प्रत्यंग इच्छा के साथ क्रमशः उत्पन्न होते गए। फिर उन अंग-प्रत्यंगों से विभिन्न योनियों, पदार्थों व सत्ताओं की सृष्टि हुई। जैसे-नेत्रों से सूर्य, कानों से दिशाएं, रोमों से औषधियां, नथुनों से अश्विनी कुमार, लिंग से प्रजापति, गुदा से मित्र, हाथ से इन्द्र, बुद्धि से ब्रह्मा, हृदय से चन्द्रमा, अभिमान से रूद्र आदि।

'वेद और ब्राह्मण मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जांघों से तथा शूद्र चरणों

से, नाभि से अंतरिक्ष, तलवों से पाताल, सिर से स्वर्गलोक, सत-रज-तम से देवता, मनुष्य तथा प्रेत आदि प्रकट हुए। इस प्रकार समस्त लोक, आकाश, पृथ्वी, अंतरिक्ष, ग्रह, नक्षत्र, तारे, पर्वत, सागर, वन, नदी, वनस्पति, धातु, ऋषि, दैत्य, राक्षस, पशु-पक्षी, सरिसर्प, किन्नर, गंधर्व, यक्ष आदि समस्त चर-अचर सृष्टि इन्हीं विराटपुरुष नारायण से प्रकट हुई है। उनके स्वरूप का पूरा वर्णन करने का कौन साहस कर सकता है? जैसे मेरी बुद्धि है और जैसा मैंने गुरु के श्रीमुख से सुना सो तुम से संक्षेप में कह दिया है। जहां न पहुंच कर वाणी व मन लौट आते हैं। ब्रह्मा भी एक सहस्र वर्षों (दिव्य वर्षों) के तप द्वारा जिनकी महिमा का पार न पा सके। अहंकार के अभिमानी देवता रूद्र भी जिन्हें अपना स्वामी समझ उपासना करते हैं, अन्य देवता तो चमत्कृत होने के अलावा उन प्रभु के विषय में कुछ सोच भी नहीं पाते, फिर हम मनुष्य उनके स्वरूपों, गुणों तथा महिमा का क्या वर्णन कर सकते हैं? उन श्रीहरि को मात्र प्रणाम करते हैं।"

मैत्रेय जी से ऐसा सुनकर विदुर जी बोले—"प्रभो! शुद्ध निर्विकार, निर्गुण और बोध स्वरूप भगवान का लीला से भी गुण और क्रियाओं का सम्बन्ध किस प्रकार सम्भव है? भगवान तो निष्क्रिय हैं। पूर्णकाम और असंग हैं। फिर उन्हें लीला की इच्छा क्यों होती है? और लीला के हेतु संकल्प किस प्रकार करते हैं? इस लीला के पीछे उनका उद्देश्य क्या है? मेरे इस अज्ञान संकट का भी निवारण कीजिए।"

तत्व जिज्ञासु विदुर जी के प्रश्न सुनकर निरअहंकारी मैत्रेय जी ने मुस्करा कर कहा—"विदुर जी! सर्व समर्थ, सर्वशक्तिशाली, सर्वेश, सर्वथामुक्त और स्वच्छंद, सनातन भगवान—दीनता और बन्धन को प्राप्त हों—यह युक्ति विरुद्ध तो है, किन्तु यही तो भगवान की माया है। जैसे स्वप्न में दिखे दृश्य सत्य न होते हुए भी सत्य लगते हैं, जैसे जल की लहरों के आंदोलन से उसमें पड़ने वाला चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब भी कम्पित होता है (इस प्रकार चन्द्रमा स्थिर होने के बाद भी आंदोलित अवस्था में आसित होता है।) इसी प्रकार देहाभिमानी जीव को देह में मिथ्या धर्मों की प्रतीति होती है। इसी से राग, मोह, द्वेष, घृणा, क्रोध, काम, मद लोभ, मात्सर्य और अहंकार आदि की उत्पत्ति होती है। यही अविद्या है, यही माया है। श्रीकृष्ण की कृपा होने पर ही इस माया का निवारण होता है, जब अविद्या की समाप्ति होती है, तब साधक या रोगी को अपनी आत्मा का साक्षात्कार होता है। भजन, कीर्तन, उपासना, पाठ, जप, तप, योग, सेवा, प्रेम आदि सब ईशकृपा की प्राप्ति के मार्ग हैं।"

'आपने ठीक कहा मैत्रेय जी! आपके वचनों की तलवार से मेरा संदेह छिन्न भिन्न हो गया है। संसार में दो ही प्रकार के लोग सुखी हैं—वे जो अत्यंत विमूढ़ हैं (क्योंकि उन्हें जगतगति व्यापती ही नहीं) अथवा वे जो श्रीहरि की कृपा और उस

कृपा से ज्ञान दृष्टि पा चुके हैं (क्योंकि वे जगत के मिथ्या होने के रहस्य को जान जाने से माया में लिप्त नहीं होते)। शेष सब तो दुःख ही भोगते हैं। (बुद्धि ही दुःखदायी है—क्योंकि वह तर्क तथा संशय उत्पन्न करती है किन्तु श्रद्धायुक्त हो जाने से बुद्धि ही कल्याणकारी हो जाती है, क्योंकि वह ज्ञान व सत्य को प्राप्त करने का माध्यम बन जाती है। विदुर जी ने नतमस्तक होकर कहा—''अब कृपया मुझे विराट पुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति से आगे की कथा सुनाइए। कर्मों का स्वरूप, उनकी गति, उनके फल, कालचक्र में विभिन्न ग्रहों आदि की स्थिति, काल की गति, मनुष्यों द्वारा आगे सृष्टि रचनाक्रम, चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति के साधन, योगमार्ग, ज्ञानमार्ग, तन्त्रशास्त्र, नारदपंचरात्र, धर्म, प्रलय का कारण आदि समस्त ज्ञान मुझ अज्ञ को देने की कृपा कीजिए। दीन वत्सल गुरु तो अपने शिष्यों के पूछे बिना भी उनके हित की बात बता दिया करते हैं।''

शुकदेव जी बोले—''राजन्! विदुर जी द्वारा इस प्रकार पुराण विषयक प्रश्न करके भगवत्चर्चा के लिए प्रेरित किए जाने से तत्वदर्शी मैत्रेयऋषि बहुत प्रसन्न हुए और विदुर जी से इस प्रकार कहने लगे—'विदुर जी! आप तो भगवान के भक्तों में प्रधान धर्मराज ही हैं। अब मैं आपके पूछने पर—शुद्ध विषय सुख की कामना से महान दुःख व बन्धनों को आमंत्रित करने वाले पुरुषों के कष्ट निवारण हेतु श्रीमद्भागवत पुराण विस्तार से कहता हूं। इसे स्वयं पहले श्री संकर्षण भगवान ने सनकादि ऋषियों को सुनाया था। सनत्कुमार जी ने इसे सांख्यायन मुनि को और सांख्यायन जी ने मेरे गुरु बृहस्पति व पाराशर जी को सुनाया था। पुलस्त्य ऋषि के कहने पर पाराशर जी ने मुझको कृपापूर्वक यह सुनाया। तुमको अनुगत, श्रद्धालु एवं सुपात्र पाकर वही आदि पुराण मैं अब तुम से कहता हूं—

'सृष्टि से पूर्व जब सभी कुछ जलमग्न था और एकमात्र श्रीनारायण देव ही शेष शैय्या पर विश्राम कर रहे थे, तब एक सहस्र चतुर्युग तक शयन के बाद उन्हीं के द्वारा नियुक्त कालशक्ति ने उन्हें सृष्टि को प्रेरित किया तब श्रीनारायण की दृष्टि पड़ने से उनके शरीर में स्थित सूक्ष्म तत्व के रजोगुण से क्षुभित होने पर उनकी नाभि से वह सूक्ष्मतत्व कमल के रूप में ऊपर उग आया। उस सर्वलोकमय कमल में विष्णु भगवान ही अन्तर्यामी के रूप में प्रविष्ट हो गए, जिससे बिना पढ़ाए ही सम्पूर्ण वेदों को जानने वाले स्वयम्भु ब्रह्मा उस कमल में प्रकट हुए। चारों ओर देखने पर भी उन्हें जब कुछ दिखाई न दिया तो—मैं कौन हूं? यह कमल कहां से उत्पन्न हो गया? इसका आधार कहां है?—आदि प्रश्नों का हल ढूंढने के लिए वे उस कमल नाल में चलने लगे।'

'उस अपार तम में बहुत काल तक खोजने के बाद भी वे कमल नाल का आधार

नहीं पा सके। हे विदुर! यह काल ही भगवान का चक्र है, जो प्राणियों को भयभीत करता रहता है। अपनी खोज में सफल न हो पाने पर वे वापस कमल कर्णिका पर लौटे। तब जल में से 'तप-तप' ऐसा सुनकर वे अपने निर्माता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए समाधिस्थ हो गए। दिव्य सौ वर्षों के बाद योगाभ्यास से प्राप्त हुए ज्ञान के कारण अपने जिस अधिष्ठता को वे कमल नाल में बहुत काल तक चलने के बाद भी खोज नहीं पाये थे—उसे अपने अंतःकरण में प्रकाशित देखा। विश्व रचना की इच्छा रखने वाले ब्रह्मा ने—कमल, जल, आकाश, वायु और अपना शरीर इन पांच के अलावा किसी पदार्थ को चारों ओर न देखा। सृष्टि के कारण रूप केवल पांच ही पदार्थ देखकर विचारमग्न हो गए। आखिर श्रीहरि में चित्त एकाग्र कर उन्होंने उन्हीं की स्तुति की और लोकरचना के विषय में मार्गदर्शन मांगा।'

तब भगवान ने कहा—'हे वेदगर्भ! तुम विषाद न करो। सृष्टि निर्माण में जो तुम मुझसे चाहते हो, वह मैं पहले ही कर चुका हूं। पुनः तप करो और भागवत ज्ञान का अनुष्ठान करो। तब तुम समस्त लोकों को और मुझको स्वयं अपने अंतस में देखोगे और स्वयं व समस्त लोकों को मुझमें स्थित देखोगे। तुम प्रथम मंत्रदृष्टा (ऋषि) हो। प्रजा उत्पन्न करने पर भी तुम्हारा मन मुझ ही में लगा रहेगा। अतः तुम रजोगुणी अहंकार या विकार को प्राप्त नहीं होओगे। हे ब्रह्मा! तुमने जो मेरी स्तुति की है, उससे मैं प्रसन्न हूं। तुम्हारा कल्याण हो। जो पुरुष नित्य प्रति तुम्हारे स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा, उससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न हो जाऊंगा। तप, ज्ञान, भक्ति, दान, उपासना, भजन, समाधि आदि साधनों से प्राप्त होने वाला कल्याणकारी फल मेरी प्रसन्नता ही है।' इस प्रकार ब्रह्मा जी को जगत की अभिव्यक्ति करवाकर भगवान अपने उस नारायण रूप से अदृश्य हो गए।'

मैत्रेय जी ने आगे कहा—'जैसा कि भगवान ने कहा था, ब्रह्मा जी ने पुनः तप किया। सौ दिव्य वर्षों के बाद तप व आत्मज्ञान से उनका विज्ञान बल बढ़ गया। तब उन्होंने जल के साथ वायु को पी लिया। जिस आकाशव्यापी कमल पर वे आसीन थे उसी के—भूः, भुवः और स्वः तीन विभाग किए। यद्यपि वह कमल इतना बड़ा था कि उसके चौदह भुवन या इससे अधिक लोकों के विभाग भी हो सकते थे। जीवों के भोग रूप यह तीन लोक ब्रह्मा जी ने बनाए।' इतना सुनकर विदुर जी बोले—'भगवन् आपने श्रीहरि की जिस कालशक्ति की बात कही थी, उसे कृपया विस्तार से कहिए।'

मैत्रेय जी बोले—'विषयों का रूपांतरण ही काल का आकार है। स्वयं तो वह अनादि, अनन्त और निर्विशेष है। अव्यक्त मूर्तिकाल के द्वारा ही हर प्रलय के बाद भगवान पुनः सृष्टि को प्रकट करते हैं। सृष्टि नौ प्रकार की है, किन्तु प्राकृत-वैकृत

भेद से उसका दसवां प्रकार भी है। इसका प्रलय काल, गुणों व द्रव्य द्वारा तीन प्रकार का होता है।'

'नौ सृष्टियों में पहली—महतत्व की सृष्टि है दूसरी अंहकार की, तीसरी भूतसर्ग है, चौथी इन्द्रियों की, पांचवीं मन व इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवों की, छठीं अविद्या की—जिसमें तामिस्र, अंधतामिस्र, तम, मोह और महामोह जीवों की बुद्धि का विक्षेप करने वाली यह पांच गांठें हैं। यह पहली छह सृष्टियां प्राकृत कहलाती हैं। सातवीं प्रधान वैकृत सृष्टि—वनस्पति, औषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम—इन छह प्रकार के स्थावर वृक्षों की है। आठवीं सृष्टि तिर्यगयोनियों अथवा पशु-पक्षियों की है। इन्हें काल का ज्ञान नहीं होता। यह 28 प्रकार की है। नवीं सृष्टि मनुष्यों की है—जो एक ही प्रकार की है—यह सब वैकृत कहलाती हैं। इसके अलावा सनत्कुमार आदि ऋषियों का जो कौमारसर्ग है वह प्राकृत-वैकृत दोनों प्रकार का है। देवता, पितर, गंधर्व, असुर, अप्सरा, यक्ष, भूत, प्रेत, किन्नर आदि सब देव सृष्टि में आते हैं। यह देव सर्ग आठ प्रकार का है और वैकृत सृष्टि में ही आता है। इस तरह यह दस सृष्टियां हैं। अब तुमसे वंश व मन्वन्तर आदि का वर्णन करूंगा।'

मैत्रेय जी आगे बोले—'विदुर जी! सृष्टि का जो सूक्ष्मतम अंश है—जो कार्यरूप को प्राप्त नहीं हुआ है और आगे विभाजित भी नहीं हो सकता है, उसे परमाणु कहते हैं। अनेक परमाणुओं के संगठन से समुदाय रूप किसी पदार्थ या अवयव का भ्रम होता है। काल परमाणु में भी व्याप्त रहता है। इस जगत प्रपंच के बड़े से बड़े अस्तित्व व परमाणु दोनों ही में काल उपस्थित है। सृष्टि से प्रलय तक ही वह सभी अवस्थाओं को भोग करता है। दो परमाणु मिल कर एक अणु और तीन अणुओं के मिलने से (इलैक्ट्रान, प्रोटॉन व न्यूट्रॉन) एक 'त्रसरेणु बनता है। यह 'त्रसरेणु' खिड़की से आने वाले प्रकाश की पंक्तियों में धूलकण की भांति दिखाई पड़ता है, ऐसे तीन त्रसरेणुओं को पार करने में प्रकाश को जो समय लगता है उसे 'त्रुटि' कहते हैं। त्रुटि का सौगुना 'वेध' तथा वेध का तीन गुना 'लव' कहा जाता है। तीन लव का एक 'निमेष', तीन निमेष का एक 'क्षण', पांच क्षणों की एक 'काष्ठा', पन्द्रह 'काष्ठा' का एक 'लघुं', 'पंद्रह लघु की एक 'नाड़िका' या 'दण्ड' और दो नाड़िकाओं का एक 'मुहूर्त' होता है। दिन व रात की दोनों संधियों के दो मुहूर्त छोड़कर (दिन व रात के घटने-बढ़ने के अनुसार), छहः या सात नाड़िकाओं या तीन से साढ़े तीन मुहूर्त का एक 'प्रहर' या 'याम' होता है। यह मनुष्य के दिन या रात का चौथा भाग होता है। यानी—एक दिन-रात में 'कुल आठ' प्रहर या 'याम' होते हैं। पंद्रह दिन-रात का एक 'पक्ष' और दो पक्षों का एक 'मास' होता है। चन्द्रमा की कला के अनुसार कृष्ण व शुक्ल पक्ष कहे गए हैं। मनष्यों का यह एक मास-पितरों का एक दिन-रात होता है।'

'दो मास की एक 'ऋतु' तथा छह मासों का एक 'अयन' होता है। सूर्य गति के अनुसार उत्तरायन और दक्षिणायन दो प्रकार का अयन है। इन दो अयनों को मिलाकर एक 'वर्ष' बनता है, जिसमें छह ऋतुएं होती हैं। यह मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन-रात होता है। ऐसे सौ वर्षों की मनुष्य की परम आयु कही जाती है। समस्त ग्रह, नक्षत्र व तारे आदि व तारामण्डल के अधिष्ठाता कालस्वरूप भगवान सूर्य भी परमाणु से लेकर संवत्सर तक काल में बारह राशि रूप समग्र भुवन कोश की परिक्रमा करते रहते हैं। सूर्य, बृहस्पति, सदन, चन्द्रमा व नक्षत्र सम्बन्धी मास भेद से इस वर्ष को ही—संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर तथा वत्सर कहा जाता है—इन पांच प्रकार के वर्षों की प्रवृत्ति करने वाले सूर्यदेव अपने तेज व कालशक्ति से सभी का कार्योन्मुख करते हैं। अतः सब की ऊर्जा का एक मात्र स्रोत हैं। इस प्रकार तुमसे यह काल की महत्ता, गति व परिमाण कहे।'

'प्रभो! आपने मनुष्यों की परम आयु कहीं, देवताओं व पितरों के दिन-रात कहे, किन्तु उनकी पूर्णायु तथा काल की त्रिलोकी से बाहर की गति भी कहिए क्योंकि सृष्टि तो वर्षों तक नहीं युगों और कल्पों तक है, विदुर जी ने और जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा।'

तब मैत्रेय जी बोले—'हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विदुर! देवताओं के रात-दिन तुमसे कहे। देवताओं के वर्ष को 'दिव्यवर्ष' कहते हैं। देवताओं का दिव्यवर्ष मनुष्यों के 360 वर्षों के बराबर है। चार हजार दिव्य वर्षों का सतयुग, तीन हजार का त्रेता, दो हजार का द्वापर और एक हजार का कलियुग होता है। हर युग से पूर्व एक संध्या और हर युग के बाद एक संध्यांश होता है—जिन्हें 'युग सन्धि' भी कहते हैं। जितने ही हजार वर्षों का एक युग हो उतने ही सौ वर्षों की दुगुनी संध्या व संध्यांश होती है। इस प्रकार एक चतुर्युग का अपनी संध्या व संध्यांश सहित जो काल होता है। (बारह हजार दिव्य वर्ष)—वह देवताओं की आयु कहा जाता है।

'त्रिलोकी से बाहर जो महर्लोक, ब्रह्मलोक आदि दिव्यलोक हैं। वहां यहां के एक हजार चतुर्युगों का एक दिन व इतनी ही बड़ी रात होती है, जिसे 'ब्रह्म दिन' व 'ब्रह्म रात्रि' कहते हैं। रात्रि में ब्रह्मा शयन करते हैं। दिन का आरम्भ होने पर इस लोक का कल्प आरम्भ होता है। जो ब्रह्मा की रात होने तक (एक हजार चतुर्युगों तक) चलता है। एक कल्प में 14 मनु होते हैं। एक मनु इकहत्तर चतुर्युगों से कुछ अधिक काल तक चलता है। यह ब्रह्मा जी की प्रतिदिन की सृष्टि है। दिन समाप्त होने पर चन्द्र व सूर्यहीन ब्रह्मरात्रि आती है, जिसे प्रलय रात्रि भी कहते हैं। तब तीनों लोक ब्रह्मा के शरीर में जा छिपते हैं। शेषनाग के मुख से निकली अग्नि त्रिलोकी को दग्ध करती है, जिससे मुनि व योगी आदि महर्लोक व जनलोक को चले जाते हैं। सातों

समुद्र प्रलयकालीन पवन के प्रचण्ड वेग से त्रिलोक को जलमग्न कर देते हैं, तब भगवान उस जल में शेष शैय्या पर योगनिद्रा से शयन करते हैं। उस समय जनलोक में स्थित मुनिगण उनकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार के दिन रातों के सौ वर्ष बीतने पर ब्रह्मा जी की आयु पूर्ण होती है। ब्रह्मा जी की आयु के आधे भाग को परार्ध कहते हैं। इस समय पहला परार्ध बीत चुका है, दूसरा चल रहा है।'

'पूर्व परार्ध के आरम्भ में ब्रह्मकल्प हुआ था, उसमें ब्रह्मा उत्पन्न हुए—जिन्हें शब्द ब्रह्म कहते हैं। उसी परार्ध के अन्त में जो कल्प हुआ उसे पाद्मकल्प कहते हैं, क्योंकि इस कल्प में नारायण भगवान के नाभि सरोवर से कमल प्रकट हुआ था। इस समय चल रहा कल्प 'वाराहकल्प' कहा जाता है, क्योंकि इस कल्प में प्रभु ने शूकर रूप धारण किया था। दो परार्धों का काल श्रीहरि का एक निमेष है। सर्वसमर्थ काल भी देहाभिमानी जीवों पर ही शासन करता है श्रीहरि के सम्मुख हाथ बांधे रहता है। हे विदुर! प्रकृति, महतत्व, अहंकार और पांच तन्मात्र, दस इंद्रियों, मन तथा पंचमहाभूत इन सोलह विकारों के सम्मिलन से निर्मित यह ब्रह्मांड कोश भीतर से 50 करोड़ योजन विस्तार वाला है। इसके चारों ओर एक दूसरे से 10-10 गुने बड़े सात आवरण हैं। यह सब श्रीहरि नारायण के भीतर दसवें से भी कम भाग में स्थित हैं। इन आवरणों में हमारे ब्रह्मांड जैसे करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं हमारा ब्रह्माण्ड यहां परमाणु की तरह है।'

'विदुर जी विस्फारित नेत्रों से सब सुन रहे थे। मैत्रेय जी ने जरा मुस्करा कर आगे कहा—'यह तो प्रभु की कालरूप महिमा हुई। अब ब्रह्मा जी द्वारा जिस प्रकार सृष्टि का विस्तार हुआ, वह सुनिए-

'ब्रह्मा जी ने सर्वप्रथम—तम, मोह, महामोह, तामिस्र तथा अंधतामिस्र (क्रमशः अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश) अज्ञान की यह पांच वृत्तियां बनाईं मगर इससे उन्हें प्रसन्नता न हुई। तब उन्होंने मन को प्रभु में एकाग्र कर दूसरी सृष्टि की—जिसमें सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार ये चार ऊर्ध्वरेता मुनियों को उत्पन्न किया। ब्रह्मा द्वारा 'पुत्रों! सृष्टि करो।' ऐसा आदेश मिलने पर भी वे जन्म से ही निवृत्ति मार्ग में तत्पर रहने वाले मुनि ईश्वर चिंतन में ही तत्पर रहे। अपनी आज्ञा न मानी जाती देख ब्रह्मा जी तिरस्कार जनित क्रोध से भर गए। बहुत रोकने पर भी असह्य हुआ क्रोध उनकी भवों के बीच से एक नीललोहित बालक के रूप में रोते हुए प्रकट हो गया । यह भगवान भव देवताओं के पूर्वज 'रूद्र' हुए। (रोने के कारण नाम रूद्र पड़ा) रूद्र ने रोते हुए अपने रहने का स्थान व नाम जानना चाहा। ब्रह्मा जी ने उन्हें रूद्र नाम दिया तथा—हृदय, प्राण, इन्द्रिय, पंचमहाभूत, सूर्य, चंद्र और तप—ये ग्यारह स्थान रहने को दिए। ग्यारह स्थानों पर रहने से इनका नाम—मन्यु, मनु, महिनस,

महान, शिव, ऋतुध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत हुआ। ब्रह्मा जी ने रूद्र के इन ग्यारह रूपों को—धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा व दीक्षा—यह ग्यारह रूद्राणियां पत्नियों के रूप में दीं और प्रजा उत्पत्ति करने को कहा। इस प्रकार रूद्रों की संख्या उनके विभिन्न नाम व स्थान के रूपों के कारण ग्यारह हुई।'

'ब्रह्मा जी की आज्ञा मान वे रूद्र अपने ही समान सृष्टि की रचना करने लगे। रूद्र देव द्वारा उत्पन्न रूद्रों को यूथों की संख्या में सारे संसार का भक्षण करते देख ब्रह्मा जी संशय में पड़ गए। वे रूद्रदेव से बोले—"तुम आदि देव, महादेव हो। तुम्हारी प्रजा तो अपनी भयंकर दृष्टि से मुझे और समस्त दिशाओं को भस्म कर डालना चाहती हैं। अतः ऐसी प्रजा उत्पन्न मत करो। तुम तप करो, फिर सृष्टि करना। तप के प्रभाव से ही तुम उत्कृष्ट प्रजा उत्पन्न कर सकोगे।"

'हे विदर! ब्रह्मा जी का परामर्श मान कर रूद्र तप करने लगे। रूद्र के तपलीन हो जाने पर ब्रह्मा जी ने सृष्टि क्रम आगे बढ़ाया और मरीचि, अत्रि, अंगिए, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद—यह दस मानस पुत्र उत्पन्न किए। इनमें नारद को अपनी गोद से, दक्ष को अंगूठे से, वशिष्ठ को प्राण से, भृगु को त्वचा से, क्रतु को हाथ से, पुलह को नाभि से, पुलस्त्य को कानों से, अंगिरा को मुख से, अत्रि को नेत्रों से तथा मरीचि को मन से उत्पन्न किया। फिर ब्रह्मा के दांए स्तन से धर्म व पीठ से अधर्म उत्पन्न हुए। धर्म से स्वयं नारायण अवतरित हुए और अधर्म से मृत्यु उत्पन्न हुआ। फिर ब्रह्मा ने हृदय से काम, भृकुटियों से क्रोध, नीचे के अधर से लोभ, मुख से वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती, लिंग से समुद्र, गुदा से पाप का निवास स्थान (राक्षसाधिपति) निऋृति को उत्पन्न किया। अपनी छाया से कर्दम को उत्पन्न किया, जो बाद में देवहूति के पति हुए। पहले दस मानस पुत्रों से बहुत लोकवृद्धि हुई। इस तरह सारा जगत ब्रह्मा जी से उत्पन्न हुआ।'

मैत्रेय जी ने क्षण भर रुक कर कहा—'सरस्वती देवी के सौंदर्य पर ब्रह्मा जी काममोहित हो गए (क्योंकि काम को उत्पन्न करके कुछ तो कमाल करना ही था)। तब मरीचि आदि पुत्रों द्वारा धिक्कारे जाने पर वे लज्जित हुए और प्रायश्चित स्वरूप उन्होंने अपने शरीर को त्याग दिया, जिसे दिशाओं ने ले लिया—वही, कुहरा या अंधकार बना। नया शरीर धारण कर ब्रह्मा सुव्यवस्थित सृष्टि को रचने का विचार करने लगे? तब उनके पूर्व मुख से ऋक, दक्षिण मुख से यजु, पश्चिम मुख से साम तथा उत्तर मुख से—अथर्व—यह चारों वेद प्रकट हुए तथा चार उपवेद भी पहले बताए क्रम से प्रकट हुए। (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और स्थापत्य वेद) इनके अतिरिक्त न्यायशास्त्र भी हुआ। होता, उद्‌गाता, अध्वर्यु, और ब्रह्मा इन चार ऋत्विजों के कर्म,

यज्ञों का विस्तार, धर्म के चार चरण, चारों आश्रम व उनकी वृत्तियां यह सब भी ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए। चारों मुखों से इतिहास, पुराण आदि पांचवां वेद ब्रह्मा ने बनाया। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति यह चार विद्याएं भी ब्रह्मा जी के मुख से उत्पन्न हुईं। सातों धातुओं से सातों छन्द, हृदयाकाश से ॐकार, क्रीड़ा से सात स्वर तथा इसी प्रकार वर्ण-स्वर (कवर्ग, अकारादि) आदि उत्पन्न हुए।'

'हे नीति कुशल विदुर! तब ब्रह्मा जी ने विचारा कि उनके पुत्रों द्वारा होने वाली प्रजा की उत्पत्ति संतोषजनक नहीं है। तब वे देव का विचार कर रहे थे कि उनका शरीर अकस्मात् दो भागों में विभक्त हो गया। 'क' ब्रह्मा का नाम है, अतः उन्हीं से विभक्त होने के कारण शरीर का काय (अपभ्रंश में काया) भी कहते हैं। उन दोनों भागों से स्त्री-पुरुष (बाएं व दाएं भाग से क्रमशः) का जोड़ा प्रकट हुआ। पुरुष मनु व स्त्री सतरूपा नाम से जानी गईं। तब से मैथुनिक सृष्टि प्रारंभ हुई। मनु व सतरूपा से पांच संतानें उत्पन्न हुईं। जिनमें प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति व प्रसूति ये तीन कन्यायें थीं। आकूति का रुचि प्रजापति, देवहूति का कर्दम जी तथा प्रसूति का विवाह दक्ष से हुआ और उनकी संतति से संसार भर गया।'

विदुर जी द्वारा आगे सुनने के आग्रह पर मैत्रेय जी बोले—'मनु व सतरूपा ने ब्रह्मा जी द्वारा प्रजा उत्पन्न करने का आदेश प्राप्त किया। तब मनु ने कहा कि उनकी प्रजा के रहने योग्य स्थान पृथ्वी तो अभी जलमग्न है। अतः उसके उद्धार का प्रबन्ध होना चाहिए। तब जल में डूबी होने से रसातल को चली गई पृथ्वी के उद्धार के लिए ब्रह्मा के स्मरण से उनकी नासिका छिद्र से अंगूठे के बराबर एक वाराह शिशु निकला और क्षण भर में ही हाथी के बराबर हो गया और फिर पर्वताकार होकर गरजने लगा। तब तप, जप तथा महर्लोक के मुनीजन उनकी मंत्रों से स्तुति करने लगे। वे श्री हरि थे—जो सूकर रूप में अवतरित हुए थे। वे जल में जाकर पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर लेकर ऊपर आए। उस समय बाधा डालने के लिए महा पराक्रमी हिरण्याक्ष ने उन पर गदा प्रहार किया, किन्तु भगवान ने उस वाराह अवतार में सिंह द्वारा हाथी को मार डालने के समान उसे मार डाला। जब वे बाहर आए तो ऋषियों ने उनको यज्ञरूप मान उनकी स्तुति की। तब वाराह भगवान ने अपने खुरों से जल को स्तम्भित कर वहां पृथ्वी को स्थापित किया और अन्तर्ध्यान हो गए। इस प्रकार वाराह अवतार लेकर मनुष्यों के रहने के लिए भगवान ने पृथ्वी का उद्धार किया।''

श्री शुकदेव जी ने कहा—''विदुर जी को वाराह अवतार की कथा सुनकर तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने पूछा—भगवन् हिरण्याक्ष कौन था और उसने वाराह भगवान से संघर्ष क्यों किया? तब मैत्रेय जी बोले—

'पूर्वकाल में देवताओं ने भी वाराह अवतार के बाद यही प्रश्न ब्रह्मा जी से

वाराहवतार में भगवान श्री विष्णु हिरण्याक्ष से पृथ्वी की रक्षा करते हुए

किया था। तब ब्रह्मा जी ने उन्हें इतिहास सुनाया था, उसे परम्परा से मैंने भी सुना है, वही तुमसे कहता हूं—हे विदुर! दक्षपुत्री दिति एक बार सायंकाल को कामातुर होकर अपने पति मरीचि पुत्र कश्यप जी से पुत्र प्राप्ति हेतु मैथुन का निवेदन करने लगी। (दक्ष की तेरह पुत्रियों का विवाह कश्यप से हुआ था, दिति उनमें से एक थी) तब कश्यप जी ने समझाया कि कुछ समय ठहर कर उसकी इच्छा पूर्ण करेंगे, क्योंकि वह समय राक्षसों आदि जीवों के जन्म का है और इस समय मैथुन निषेध है। परन्तु दिति ने कामवेग में अंधी हो वेश्या की भांति लज्जा त्याग दी। सो कश्यप जी ने ईश्वरेच्छा मानकर दिति की इच्छा पूर्ण की।'

'बाद में दिति को पछतावा हुआ। कश्यप ने बताया कि निषिद्धकाल में सम्भोग किए जाने से उसके दो राक्षस पुत्र जन्म लेंगे जो अत्याचारी और निर्दयी होंगे। जिन्हें स्वयं भगवान चक्रपाणी अवतरति होकर मारेंगे—तब दिति ने कहा कि 'भगवान द्वारा मारा जाना ठीक है, किन्तु उसके पुत्र ब्राह्मण या ऋषियों के शाप से न मारे जाएं, क्योंकि ब्रह्म शाप से दग्ध प्राणी किसी भी योनि में जाकर सुख नहीं पाता। फिर भी मैं अपने असंयम के लिए आप से क्षमा मांगती हूं।'

'दिति द्वारा प्रायश्चित करने और शीघ्र ही उचित अनुचित का ज्ञान कर लेने से कश्यप जी प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि—'तुम्हारे पुत्र के चार पुत्रों में से एक प्रभु को अपनी भक्ति से संतुष्ट करेगा, वह समस्त संसार में वंदनीय और श्रीहरि का कृपा पात्र होगा। अन्ततः उसे प्रभु दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा। वह अपने कुल के सभी कलंक धो डालेगा। यह सुनकर दिति बहुत प्रसन्न हुई।'

'हे महामते विदुर! दिति के अपने पुत्रों द्वारा देवताओं को कष्ट पहुंचाने की आंशका थी। अतः उसने कश्यप जी के तेजस्वी वीर्य को सौ वर्षों तक गर्भ ही में धारण किए रखा। तब उस गर्भस्थ तेज से ही सूर्य का प्रकाश क्षीण होने लगा और देवता तेजहीन होने लगे। तब सभी लोकपाल व देवता ब्रह्मा जी की शरण में आए। ब्रह्मा जी ने बताया कि 'श्रीहरि के द्वारपालों जय और विजय ने एक बार सनकादि मुनियों को बालक समझ कर वैकुण्ठ जाने और भगवान के दर्शन करने से रोक दिया था। तब सनकादि मुनियों ने उन्हें अधम योनि में जाने का शाप दिया था। ब्राह्मणों का सम्मान करने के कारण श्रीहरि भी उसका समर्थन किए, किन्तु जय-विजय ने जो कुछ किया अज्ञानवश व स्वामी के सुख के लिए किया था, अतः भगवान ने सनकादि से निवेदन किया कि उन दोनों को शीघ्र ही शाप मुक्त कर वैकुण्ठ वापस भेज दें। इस प्रकार श्रीहरि की इच्छा से घटी यह घटना दिति के गर्भ में स्थित कश्यप जी के उग्रतेज का कारण है। दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो अति प्रतापी असुरों के रूप में जय-विजय जन्म लेंगे। दिति के पुत्र होने से वे

दैत्य कहे जाएंगे। इस प्रकार देवताओं को समझाकर ब्रह्मा जी ने वापस लौटा दिया और वही हुआ, दिति ने जुड़वां पुत्र उत्पन्न किए।'

'उन दैत्यों के जन्म से ही समस्त दिशाएं भयभीत हो गईं। पृथ्वी, पर्वत कांपने लगे, उल्कापात होने लगे, बिजलियां कौंधी और अरिष्टसूचक उपद्रव होने लगे। वे दोनों आदि दैत्य शीघ्र ही बढ़कर पर्वताकार हो गए। दिति के गर्भ में जो पहले स्थापित हुआ वह हिरण्यकशिपु तथा जो उसके उदर से पहले निकला वह हिरण्याक्ष हुआ। यही हिरण्यकशिपु कालांतर में ब्रह्मा जी से वर पाकर मृत्यु भय से मुक्त हो गया और उच्छृंखल व उपद्रवी हो गया। अपने भुजबल से उसने लोकपालों सहित त्रिलोकी को वश में कर लिया। वह हिरण्याक्ष से बहुत प्रेम करता था। हिरण्याक्ष युद्धोन्मत्त हो एक बार अपनी लोहमयी गदा के साथ स्वर्ग पहुंचा, मगर उसे देखकर देवतागण गरुड़ को देखकर भयभीत हो जाने वाले सर्पों के समान छिप गए। वहां से वापस लौट कर जलक्रीड़ा के लिए वह समुद्र में जा घुसा और अनेक वर्षों तक जल में उत्पात करता रहा। समस्त जलचर भयभीत होकर छिप गए। अपने युद्धेच्छा पूर्ण नहीं होने के कारण वह जल की लहरों को ही अपनी गदा से पीटता रहा। फिर जलों के स्वामी वरुण से उसने युद्धभिक्षा मांगी। वरुण ने कहा कि 'पुराणपुरुष भगवान के सिवाय तुम्हारे उपयुक्त अन्य कोई योद्धा नहीं है। अतः तुम श्रीहरि विष्णु के पास जाओ, वे तुम्हारा गर्व चूर कर देंगे।'

मैत्रेय जी ने आगे कहा—'तब अधीर होकर वह तुरन्त ही नारद जी से श्रीहरि का पता लगाकर रसातल में जा पहुंचा। वहीं श्रीहरि विष्णु वाराह का रूप धारण कर पृथ्वी को अपनी दाढ़ों से उठाकर ऊपर आ रहे थे। तब दुर्वचन कहकर उपहास उड़ाते हुए उसने वाराह भगवान पर अपनी विकराल लौह गदा का आघात किया। पृथ्वी के भयभीत होने के कारण भगवान ने उस आघात को सहकर भी युद्ध नहीं किया और पृथ्वी को जल की सतह पर लाकर, जल को अपने खुरों से स्तम्भित किया तथा पृथ्वी में अपनी आधार शक्ति का संचार कर उसे जल की सतह पर स्थापित किया। तब तक उनका पीछा करता हुआ हिरण्याक्ष भी वहां आ पहुंचा। ब्रह्मा जी ने हिरण्याक्ष के सम्मुख ही वाराह भगवान की स्तुति की तथा देवताओं ने फूल बरसाए। तब वाराह भगवान गदा धारण कर हिरण्याक्ष से भिड़ गए। उनमें दो उन्मत्त सांड़ों की भांति भयंकर युद्ध हुआ। तब ब्रह्मा जी बोले कि उनके द्वारा वरदान पाकर ही वह ऐसा निर्भय और निरंकुश हो गया है, अतः संध्या होने से पूर्व ही भगवान उसे मार डालें क्योंकि संध्याकाल में राक्षसों का बल बढ़ जाने के कारण फिर उसका वध कठिन हो जाएगा और युद्ध विजय दिलाने वाले अभिजित मुहूर्त भी निकट ही है। तब वाराह भगवान ने ब्रह्मा की प्रार्थना स्वीकार की और हिरण्याक्ष की ठोड़ी पर गदा मारी, किन्तु उसकी गर्दन से टकरा कर गदा भूमि पर गिर पड़ी। तब वाराह भगवान ने अपने

पांव की ठोकर से हिरण्याक्ष की गदा गिरा दी। हिरण्याक्ष ने उन पर प्रलयाग्नि की भांति लपलपाता त्रिशूल फेंका और विभिन्न मायाएं की मगर भगवान ने सब मायाओं सहित त्रिशूल को सुदर्शन चक्र से काट डाला और एक जोर का थप्पड़ उसकी कनपटी पर मारकर भूमि पर गिरा दिया, तब दिति के स्तनों से रक्त बहने लगा और भगवान ने अपने चरण प्रहारों से उस महाबली दैत्य को मार डाला।''

सूत जी ने कहा—''मैत्रेय जी से यह सुनकर विदुर बहुत प्रसन्न हुए। शौनक जी! श्रीहरि द्वारा हिरण्याक्ष वध के इस प्रसंग को पढ़ने वाला ब्रह्म हत्या जैसे घोर पाप से भी छूट जाता है। यह चरित्र-धन, यश, आयु व शक्ति को बढ़ाने वाला परम पवित्र तथा कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। इसे सुनने वाले अन्त में भगवान का आश्रय पाते हैं।''

शौनक जी ने गद्‌गद कण्ठ से कहा—''मनु जी ने अपनी संतति को उत्पन्न करने के लिए क्या-क्या किया? विदुर जी ने श्री मैत्रेय जी से और क्या-क्या प्रश्न किया? उन दोनों के वार्तालाप से गंगा के समान पवित्रकारक और कौन-कौन-सी कथाएं प्रकट हुईं? वह सब कहिए। श्रीहरि की लीलामृत के पान से भला कौन रसिक विमुख होगा और कौन उनकी लीला का सुधापान करते-करते तृप्त होगा।''

तब सूत जी बोले—''हे मुने! मैं तुमसे मैत्रेय व विदुर जी का यह संवाद आगे कहता हूं—यह निश्चय ही पापों का नाश करने वाला तथा आनन्द और ज्ञान को उदय करने वाला है, तुम सावधानीपूर्वक सुनो। मैत्रेय जी ने विदुर जी से आगे इस प्रकार कहा—

'हे विदुर! जब ब्रह्मा जी ने पहले अपनी छाया से तम, तामिस्र, अंधतामिस्र, मोह और महामोह—इन पांच अविद्याओं की तामसिक सृष्टि की थी और बाद में अपना तमोमय शरीर त्याग दिया था, तब भूख-प्यास की उत्पत्ति करने वाले रात्रिरूप उस शरीर को उसी से उत्पन्न हुए यक्ष व राक्षस खाने को दौड़े और कहने लगे 'इसे खा जाओ! इसकी रक्षा मत करो।' क्योंकि वे भूख-प्यास से व्याकुल थे। जिन्होंने कहा 'इसे खा जाओ' वे यक्ष थे तथा जिन्होंने कहा 'इसकी रक्षा मत करो' वे राक्षस कहे गए। यही छाया स्वरूप त्यागा गया तमोगुणी शरीर (जो सरस्वती पर कामदृष्टि डालने पर प्रायश्चित स्वरूप त्यागा था) संध्या, कुहरा व तम बना था। तब ब्रह्मा ने दिनरूप प्रकाशमयी दूसरा शरीर धारण किया और मुख्य-मुख्य देवताओं की सृष्टि की। ब्रह्मा जी ने जघन प्रदेश से उत्पन्न काम आसक्त असुर संध्या देवी (ब्रह्मा का त्यागा हुआ कामकलुषित शरीर) पर मोहित हो गए और उन्होंने संध्या को ग्रहण कर लिया।

'अपने नए ज्योतिर्मय शरीर से ब्रह्मा ने अप्सराओं तथा गंधर्वों को उत्पन्न किया। फिर उस कान्तिमय शरीर को भी त्याग दिया, जिसे विश्वाकक्षु आदि गन्धर्वों ने ग्रहण

कर लिया। ब्रह्मा जी ने तब अपनी तन्द्रा से भूत-पिशाच आदि उत्पन्न किए। ब्रह्मा के त्यागे हुए उस जम्भाई रूप शरीर को भूत-पिशाचों ने ग्रहण किया। इसे निद्रा भी कहते हैं। झूठे मुंह सोने वाले मनुष्य पर भूत-पिशाच आक्रमण करते हैं, उसे उन्माद कहते हैं। अपने अदृश्य रूप से ब्रह्मा ने सिद्ध तथा पितर उत्पन्न किए। अतः उस अदृश्य शरीर को पितरों ने ले लिया। अपनी तिरोधान शक्ति से ब्रह्मा ने विद्याधरों की उत्पत्ति की और अपना अन्तर्धान नामक शरीर उनको दे दिया। अपने प्रतिबिम्ब से किन्नर व किम्पुरुष ब्रह्मा ने बनाए और वह प्रतिबिम्ब शरीर उनको दिया। सृष्टि की बहुत वृद्धि न हुए देख चिन्ता व क्रोधमुक्त होकर ब्रह्मा ने अपना वह भोगमय शरीर भी त्याग दिया। उस समय उनके झड़े बालों से नाग व सर्प आदि उत्पन्न हुए, जिन्होंने वह भोगमय शरीर ले लिया। तदनन्तर अपने नए शरीर से मन द्वारा मनुओं की उत्पत्ति की जो प्रजा को बढ़ाने वाले हुए। उनके लिए उन्होंने अपना नया पुरुषाकार शरीर दे दिया। फिर ब्रह्मा जो आदि ऋषि हैं—ने संयम, तप, विद्या, योग तथा समाधि से सम्पन्न होकर अपनी प्रिय सन्तान ऋषियों को रचा और उन्हें अपना समाधि, योग, तप, विद्या तथा वैराग्यमय शरीर का अंश दिया।

विदुर जी बोले—'मेरे कहने पर आपने यह आगे की सृष्टि का विस्तार बताया। स्वयम्भु व मनु का वंश इनमें आदरणीय माना गया है क्योंकि मैथुन धर्म द्वारा सृजन आरम्भ हुआ। अतः मुझे मनुवंश के विषय में बताइए। मनु पुत्रों व पुत्रियों ने आगे किस-किस को उत्पन्न किया? वह सब सुनाइए।

तब मैत्रेय जी बोले—'मनु की देवहूति नामक पुत्री का विवाह कर्दम प्रजापति से हुआ था। आकूति नामक पुत्री का रुचि प्रजापति से तथा प्रसूति नामक पुत्री का दक्ष प्रजापति से, प्रियव्रत व उत्तानपाद नामक दो पुत्र भी मनु के हुए जिन्होंने धर्मपूर्वक इस सात द्वीपों वाली पृथ्वी का पालन किया। उनके द्वारा उत्पन्न हुई, संतति के विषय में सुनो।'

'कर्दम प्रजापति ने ब्रह्माजी द्वारा प्रजा उत्पत्ति का आदेश पाकर दस हजार वर्षों तक सरस्वती नदी के तट पर तप किया। तब श्रीहरि के दर्शन देने पर उनसे अपने योग्य पत्नी मांगी तब भगवान ने कहा कि मनुपुत्री देवहूति उनके योग्य है और भगवान स्वयं उनके पुत्र रूप में प्रकट होकर सांख्यदर्शन की रचना करेंगे—और ऐसा ही हुआ। कर्दम जी ने सुन्दर विमान रचकर उसमें अपने नौ रूप बनाकर देवहूति से कई वर्षों तक विहार किया, जिससे देवहूति के सर्वांग सुंदरी व लाल कमल-सी गंध वाली नौ कन्याएं हुईं। कर्दम जी की प्रतिज्ञा थी कि गर्भाधान होने तक वे पत्नी के साथ रहेंगे, फिर संन्यास ले लेंगे। अतः उनको अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए संन्यासाश्रम को जाते देख देवहूति ने कहा—'आपने तो अपना धर्म भी पूर्ण किया और प्रतिज्ञा भी

निभा दी लेकिन कन्याओं के लिए वर ढूंढने वाला तथा मेरे जन्ममरण रूप शोक को दूर करने वाला भी तो होना चाहिए। मैं किसके सहारे रहूं?' तब कर्दम जी ने उनसे कहा कि वे संयम व तप पूर्वक रहें। समय आने तक स्वयं श्रीहरि उनके गर्भ से अवतीर्ण होंगे और उनका मोह व अज्ञान दूर करेंगे।'

'हे विदुर! कर्दम जी की पत्नी ने वैसा ही किया। कालान्तर में कर्दम जी के वीर्य का आश्रय लेकर देवहूति के गर्भ से श्रीहरि 'कपिल' नाम से उत्पन्न हुए। ब्रह्मा जी के अनुसार वे ज्ञान-विज्ञान द्वारा कर्मों की वासनाओं का मूलोच्छेदन करने के लिए प्रकट हुए थे। ब्रह्मा जी की आज्ञानुसार कर्दम ने अपनी नौ पुत्रियों में से—कला नामक कन्या मरीचि को, अनुसूइया अत्रि को, श्रद्धा अंगिरा को, हविर्भू पुलस्त्य को, गति पुलह को, क्रिया क्रतु को, ख्याति भृगु को, अरुन्धती वशिष्ठ को तथा शान्ति अथर्वा को सौंप दी। तब सब ऋणों से मुक्त हो अपने पुत्र रूप भगवान कपिल को उन्होंने प्रणाम किया और स्तुति की। तब कपिल भगवान ने उन्हें मोक्ष का वरदान दिया और कहा कि वे अपनी माता को भी आत्मज्ञान देंगे, जिससे वह सब कर्म बन्धनों से छूट कर भवसागर से पार हो जाएंगी।'

'विदुर जी द्वारा आगे जानने की जिज्ञासा प्रकट करने पर मैत्रेय जी फिर बोले—'एक दिन इन्द्रियों के विषय विलास से ऊब कर देवहूति ने कपिल भगवान से अपने महा मोह को दूर करने का निवेदन किया, तब भगवान कपिल ने कहा—''अध्यात्म योग ही मनुष्य कल्याण का मुख्य साधन है। बन्धन व मोक्ष का कारण मन है। विषयों में आसक्त मन बन्धन उत्पन्न करता है। परमात्मा में अनुरक्त मन मोक्षदायी बनता है। ईश्वर में समर्पित मन सम हो जाता है। उसे सुख, दुःख, क्रोध, काम आदि माया नहीं व्यापती। ईश्वर में मन का समर्पण भक्ति से होता है। अतः श्रीहरि की भक्ति ही सबसे मंगलकारी है। हे माता! विषयों के त्याग से, वैराग्य युक्त ज्ञान से, योग से और प्रभु के प्रति सुदृढ़ भक्ति से मनुष्य प्रभु को अपनी अन्तरात्मा में ही प्राप्त कर लेता है।'' तब देवहूति ने कपिल भगवान से भक्ति का स्वरूप तथा योग के अंग जानने चाहे और यह भी पूछा कि उन जैसी अबला स्त्री को किस प्रकार की भक्ति फलप्रद है?'

तब कपिल भगवान बोले—'माता! भगवान मात्र में ही चित्त रमना तथा इन्द्रियों की श्रीहरि के प्रति जो स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वह अहैतु की भक्ति है। यह कर्म बन्धनों व कर्म संस्कारों को भस्म कर देती है। ऐसी भक्ति जो भी करता है, प्रभु की प्रसन्नता के लिए करता है, उसमें मुक्ति पाने तक की इच्छा नहीं होती। ऐसी भक्ति न चाहने पर भी भक्तों को परमपद की प्राप्ति कराती है। जबकि किसी फल की इच्छा से की गई भक्ति—सकाम या हैतु की भक्ति है—यह फल प्राप्ति तक ही सिद्ध होती है, किन्तु

कर्म बन्धन व संस्कारों को जलाती नहीं है। यह भक्ति के दो मुख्यरूप हैं। अब आपको तत्वों के अलग-अलग लक्षण कहता हूं—

'आत्मदर्शन रूप ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। मनुष्य का अहंकार या उसका 'कर्ताबोध' ही उसे कर्म जंजाल में फंसाता है। ईश्वर से पृथक सृष्टि में अन्य कोई सत्ता नहीं है। जो कुछ भी है—वह ईश्वर है और जो कुछ भी नहीं भी है—वह भी ईश्वर ही है। प्रकृति व पुरुष का संयोग ही माया का उत्पादक है। जो अव्यक्त, त्रिगुणात्मक, नित्य और कार्यकारण रूप है, निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्मों का आश्रय है—उस प्रधान नामक तत्व को प्रकृति कहते हैं। पंचमहाभूत, पंचतन्मात्र, चार अन्तःकरण और दस इन्द्रिय—इन 24 तत्वों के समूह को प्रकृति का कार्य मानते हैं। काल पच्चीसवां तत्व है, जिसकी प्रेरणा से गुणों की साम्यावस्था रूप निर्विशेष प्रकृति में गति उत्पन्न होती है—वह काल है। सत्वगुणमय, स्वच्छ, शान्त चित्त ही महतत्व है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण आदि में जीवन देने वाला जो चित्त का अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञ (आत्मा) है—जो भगवान की चेतन शक्ति का अंश है—वही पुरुष है।'

'हे माता! जैसे जल में स्थित सूर्य आदि के प्रतिबिम्ब का जल की शीतलता, चंचलता आदि गुणों से, जल में रहते हुए भी कुछ सम्बन्ध नहीं होता, वैसे ही प्रकृति के कार्य शरीर में स्थित रहने पर भी आत्मा/पुरुष का शरीर के धर्मों, कार्यों व अनुभूतियों से कुछ सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि वह स्वभावतः निर्विकार, निर्गुण व अकर्ता है, किन्तु अविद्या, अज्ञान तथा अहं के कारण मनुष्य अपने उस आत्मा को ही शरीर के कर्मों के प्रति उत्तरदायी मान लेता है, किन्तु तत्वदर्शी या ज्ञानी अथवा समर्पित योगी या भक्त के भीतर स्थित पुरुष उस प्रकृति/माया से सभी क़र्म व भोग करता हुआ उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जैसे लकड़ियों में लगी आग साथ-साथ रहते हुए भी अन्ततः लकड़ियों को भस्म कर देती है। यदि योगी का चित्त साधना द्वारा बढ़ी हुई सिद्धियों से मोहित नहीं होता तो अन्ततः मेरा अविनाशी परम पद प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संशय नहीं है।''

सूत जी ने आगे कहा—''हे शौनक! इस प्रकार कपिल भगवान ने भक्ति, तत्व तथा योग के विषय में देवहूति को समझाया, तब देवहूति के जिज्ञासा प्रकट करने पर कपिल भगवान ने योग के लक्षण व विधि भी कही। सो मैं तुमसे कहता हूं, अत्यंत सावधान होकर सुनो—

कपिल भगवान बोले—'माता! योग के आठ अंग हैं। सर्वप्रथम यम नियमों के पालन से मन व शरीर को शुद्ध व संयमित करना चाहिए। (स्नान, शौच, स्वाध्याय आदि तथा सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय व अहिंसा आदि नियम व यम हैं) तब आसन को सिद्ध करना चाहिए। (एक स्थिति में दीर्घ समय तक संयमित व स्थिर

बैठना आसन है) फिर प्राणायाम द्वारा श्वास को जीतकर मन को विषयों से हटा कर एकाग्र करना तथा ईश्वर में समाहित करना चाहिए। इस प्रकार, प्रत्याहार, आसन, ध्यान, धारणा, प्राणायाम, समाधि तथा यम और नियम, यह योग के अष्टांग हैं। इन्हें क्रम से—यम, नियम, प्रत्याहार, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि इस प्रकार कहना चाहिए। यह संक्षेप में योग विधि कही।'

तब देवहूति ने भक्ति मार्ग का विस्तृत ज्ञान व विभिन्न कर्मों की गतियां भी जाननी चाही। इस प्रकार भगवान कपिल ने कहा—'साधकों के भाव के अनुसार भक्तियोग का अनेक प्रकार से प्रकाश होता है। इनमें तामस, राजस और सात्विक भक्त आते हैं तथा निज भावों के अनुसार सखा रूप से, माता रूप से, पुत्र रूप से, दास रूप से, गुरु रूप से, पति या प्रेमी रूप से, विभिन्न भावों से भक्ति करते हैं लेकिन निष्काम भक्ति सर्वोत्तम है। निष्काम भक्ति तो मेरी कृपा से अन्ततः इस परम शक्तिशाली काल को भी जीत लेता है जो अनादि होते हुए भी दूसरों का आदिकर्ता तथा अनन्त होते हुए भी दूसरों का अन्तकर्ता है और सदैव मेरा अनुगत व सहयोगी है। भक्त का समदर्शी व निष्काम होना इसलिए सर्वश्रेष्ठ है।

कपिल भगवान ने आगे कहा—'काल की प्रेरणा से जीव विभिन्न योनियों में भ्रमण करता है तथा कर्मानुसार भोग भोगता है। दुष्कर्म करने वाले प्राणी कर्मानुसार विभिन्न नरकों को भोगते हैं और सद्कर्म करने वाले स्वर्ग को, फिर भी भोगना दोनों को ही पड़ता है, क्योंकि कर्म भोग के लिए बाध्य करता है। कर्म बन्धनकारी है। केवल प्रभु की समर्पण के भाव से (निष्काम भाव) किया गया कर्म बन्धनकारी नहीं होता और केवल योगाग्नि ही पूर्व संचित कर्मों को भस्म कर सकती है। अतः इन कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। नारकीय भोगों के लिए यमदूत जीव को यातनादेह में डाल कर निन्यानवें हजार योजन दूर यमलोक ले जाते हैं, जहां उसे विभिन्न दारुण यातनाएं भोगनी होती हैं। बहुत से दुष्कर्मों का फल इसी संसार में मिल जाता है। नरकों में जो सर्वाधिक कष्टदायी है, वह अन्धतामिस्र नरक है। केवल पाप की ही कमाई से परिवार का पालन करने वाला इसी नरक में जाता है। इस प्रकार नरकों तथा सूअर-कुत्ते आदि की योनियों को क्रमपूर्वक भोगकर शुद्ध होने के बाद ही जीव को पुनः मनुष्य जन्म मिलता है और इसी जन्म में यह अवसर होता है कि मनुष्य जन्म-मरण के इस चक्र से निकल सके, क्योंकि मानव से ऊंची देव आदि समस्त योनियां तथा मानस से नीची पशु आदि सब योनियां केवल भोग योनियां हैं। इनमें जीव कर्म के लिए स्वतन्त्र नहीं होता, किन्तु मनुष्य योनि भोग व कर्म दोनों की मिश्रित योनि है। अतः मनुष्य को सद्कर्म ही करने चाहिए अथवा निष्काम कर्म करने चाहिए। यह कर्मों की गति संक्षेप में कही। अब मनुष्य योनि को प्राप्त हुए जीव की गति का

वर्णन भी सुनिए—

'मनुष्य योनि में जाने वाला जीव ईश्वर की प्रेरणा से पुरुष वीर्यकण द्वारा स्त्री के उदर में प्रविष्ट होता है तथा एक रात में रज से मिलकर एक रूप कलल बन जाता है। पांच रात्रियों में वह बुदबुद रूप होता है तथा दस दिन में बेर के समान कठोर हो जाता है। फिर मांसपेशी या अंडे के समान हो जाता है। एक माह में सिर से युक्त होता है। दो मास में हाथ-पैर आदि अंगों का विभाज्य होकर तीन मास में नख, रोम, अस्थि, चर्म तथा लिंग निर्धारण होकर सब छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं। चौथे मास में सब धातुएं उत्पन्न हो जाती हैं। पांचवें मास में भूख-प्यास लगने लगती है। छठे मास में झिल्ली में लिपटकर वह दाहिनी कोख में घूमने लगता है। सातवें महीने में ईश प्रेरणा से स्मरण शक्ति व ज्ञानशक्ति का उन्मेष होता है। आठवें व नवें महीनों में वह पुष्टि को प्राप्त होता है तथा दसवें महीने में बहुत कष्ट से माता के गर्भ से बाहर आता है। इस प्रकार नौ महीने तो वह गर्भ में एक प्रकार का नरक ही भोगता है। बाहर आते ही उसकी श्वासगति रुकने से स्मृति (पूर्व-जन्मस्मृति) लुप्त हो जाती है तथा गर्भ का समस्त ज्ञान नष्ट हो जाता है, तब विपरीत गति को प्राप्त हुआ वह रोता है।'

'फिर जो उसका अभिप्राय नहीं समझ सकते, ऐसे लोग उसका पोषण करते हैं। ऐसी अवस्था में प्राप्त होने वाली प्रतिकूलता का वह निषेध भी नहीं कर पाता और सिवाय रोने के अपने दुःख भोग की कुछ प्रतिक्रिया प्रकट नहीं कर पाता। इस प्रकार कौमार अवस्था में भी वह कष्ट ही भोगता है। फिर बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक नाना प्रकार के भोगों को भोगता है और अन्त में देह त्यागते समय भी दारुण कष्ट भोगता है। अतः इस योनि में बुद्धिमान को अपने कर्मों की ओर से सावधान रहना चाहिए, जिससे पुनः वह ऐसा या इससे अधिक कष्ट न भोगे और कर्मबन्धन में न फंसा रहे। हे माता! इस उपदेश को—दुष्ट, दुराचारी, दुर्विनीत, घमंडी, पाखंडी तथा दम्भी व्यक्ति को नहीं सुनाना चाहिए। विषय लोलुप, गृहासक्त और प्रभु भक्तों से द्वेष रखने वालों को भी यह उपदेश न देना चाहिए। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक मेरे इस उपदेश का एक बार भी स्मरण करता है—वह परम पद को प्राप्त होता है। अतः सुपात्र, श्रद्धालु, भक्त, अनासक्त, गुरुसेवक, पवित्र, व्यक्ति को यह उपदेश अवश्य सुनाना चाहिए।'

मैत्रेय जी ने इतना प्रसंग सुनाकर कहा—'इस प्रकार श्री कपिल भगवान के उपदेश से देवहूति को तत्वज्ञान की प्राप्ति हुई और मोक्ष प्राप्त हुआ। हे राजन! कपिल भगवान द्वारा कहा यह उपदेश अत्यंत पवित्र, कल्याणकारी व मोक्षदायक है।

ब्रह्मा द्वारा की गई श्री विष्णु की मूल स्तुति

ज्ञातोऽसिमेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरिव्यवद्यम्।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि।।
रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम्।।
नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानन्दमात्रमविकल्पमविद्ध वर्चः।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन् भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि।।
तद्वां इदं भुवनमंगल मंगलाय ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम्।
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसंगै।।
येतु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम्।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयाम्बुरूहात्स्वपुंसाम्।।
तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः।।
दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसंगात् सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये।
कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत्।
क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितवरेच राच्च।
कामाग्निनाच्युत रूषा च सुदुर्भरेण सम्पश्यतो मन उरूक्रम सीदते मे।।
यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थ मायाबलं भगवतोजन ईश पश्येत्।
तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था।।
अह्वयवृतार्तकरणा निशि निःशयाना नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः।
दैवाहतार्थ रचना ऋषयोऽपि देव युष्मतप्रसंगविमुखा इह संसरन्ति।।
त्वं भावयोग परिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननुनाथ पुंसाम्।।
यद्यद्धिया त उरूगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय।।
नातिप्रसीदति तथौपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः।
यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको नानाजनेषववहितः सुहृदन्तरात्मा ।।
पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च।
आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्घ्रियते न यत्र।।
शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै।
विश्वोद्भवतिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नम इदं चक्रमेश्वराय।।
यस्य वतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये।।

यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम्।
भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरूप्ररोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय।।
लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै।
यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्य मध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत्।।
तेपे तपो बहुसवोऽवरूरूत्समानस्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम्।।
तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिश्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सवा यः।
रेमे निरस्तरतिरप्यवरूद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय।।
योऽविद्ययानुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः।
अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीभोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन्।।
यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीऽय लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय।।
सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान् भगेन।
तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्ययाहं स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ।
एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः।
तस्मिन् स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम्।
नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्ति रहमासमनन्तशक्तेः।
रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मा रीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः।
सोऽसावदभ्रकरूणो भगवान विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन्।
उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिरापनयतात्पुरूषः पुराणः।।

विशेष : भगवान विष्णु ने स्वयं इस स्तोत्र के विषय में कहा है—

य एतेन पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत्।
तस्याशु सम्प्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः।।

(मैं समस्त कामनाओं व मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ हूं, जो पुरुष नित्यप्रति इस स्तोत्र द्वारा स्तुति करके मेरा भजन करेगा, उस पर मैं शीघ्र ही प्रसन्न हो जाऊंगा।)

□□

चतुर्थ स्कन्ध

मैत्रेय जी ने आगे कहा—'अपनी पुत्री आकूति के भाई होते हुए भी महारानी सतरूपा ने आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से 'पुत्रिकाधर्म के अनुसार किया था। (इस धर्म से किए विवाह में कन्या के पहले पुत्र को कन्या के पिता ले लेते हैं।) रुचि भगवान के अनन्य चिन्तन के कारण ब्रह्मतेज से सम्पन्न थे। उन्होंने आकूति के गर्भ से पुरुष व स्त्री का एक जोड़ा उत्पन्न किया। पुरुष तो स्वयं यज्ञ रूप में भगवान विष्णु थे और स्त्री लक्ष्मी का अंश 'दक्षिणा' थी। इस प्रकार आकूति का पुत्र 'यज्ञ' मनु का हुआ और पुत्री दक्षिणा आकूति के पास ही रही। कालांतर में यज्ञ व दक्षिणा का विवाह हुआ, जिससे उनके बारह पुत्र—तोष, प्रतोष, सन्तोष, भद्र, शान्ती, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव तथा रोचन हुए। स्वायम्भुव मन्वन्तर में यही 'तुषित' नाम के देवतागण हुए। उस मन्वन्तर में 'यज्ञ' भगवान ही इन्द्र थे। मरीचि आदि सप्तर्षि तथा प्रियव्रत एवं उत्तानपाद मनुपुत्र थे। उन्हीं के वंश से पूरा मन्वन्तर छा गया था।'

'देवहूति के विषय में कह आया हूं। अब दक्ष प्रजापति से ब्याही गई मनु की तीसरी कन्या प्रसूति की विशाल वंश परम्परा कहूंगा, जो त्रिलोकी में फैली हुई है। कला नामक पुत्री से कश्यप व पूर्णिमा नामक दो पुत्र हुए, जिन्होंने अपने वंश की बहुत वृद्धि की। पूर्णिमा के विरज तथा विश्वग नामक दो पुत्र हुए तथा देवकुल्या नामक कन्या। यही कन्या अगले जन्म में श्री हरि के चरणों के धोवन से देवनदी गंगा के रूप में प्रकट हुई। अनुसूया जो अत्रि से विवाहित थीं—दत्तात्रेय दुर्वासा और चन्द्रमा, नामक तीन यशस्वी पुत्रों की माता हुईं। यह तीनों—भगवान विष्णु, शिव और ब्रह्मा के अंश थे।'

यह सुनकर विदुर जी ने पूछा—'प्रभो इन तीनों सर्वश्रेष्ठ देवों को अत्रि जी के यहां उत्पन्न होने (अवतरित होने) की क्यों इच्छा हुई?'

'हे महात्मे विदुर!' मैत्रेय जी बोले—'ब्रह्मा जी ने जब अत्रि जी को प्रजा उत्पन्न

करने की आज्ञा दी तो ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ मुनि अत्रि सौ वर्षों तक एक ही पैर पर खड़े होकर और केवल वायु पीते हुए त्रिदेवों की (ब्रह्मा, विष्णु, महादेव) स्तुति करने लगे। तब उन्होंने यही इच्छा की कि ईश्वर अपने ही समान सन्तान उनको प्रदान करें। तब उन त्रिदेवों ने प्रत्यक्ष होकर अत्रि द्वारा स्तुति किए जाने पर उनके यहां पुत्र रूप से उत्पन्न होने का वरदान दिया, सो उन्होंने पूरा किया।'

'अब अंगिरा ऋषि का वृत्तांत सुनो। अपनी पत्नी श्रद्धा के गर्भ से उन्होनें 'सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामक चार कन्याएं पैदा कीं। उतथ्य और बृहस्पति नामक दो पुत्र भी उत्पन्न किए। पुलस्त्य ऋषि ने भी अपनी पत्नी हविर्भू से महर्षि अगस्त्य तथा महातपस्वी विश्रवा—इन दो पुत्रों को जन्मा। विश्रवा ने इडविडा नामक पत्नी द्वारा यक्षराज कुबेर को तथा दूसरी पत्नी केशिनी (बाल्मीकी रामायाण में केशिनी के स्थान पर केकसी नाम मिलता है) से रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण नामक राक्षस पुत्रों तथा सूपर्णखा नामक पुत्री को उत्पन्न किया। अगस्त्य ऋषि अगले जन्म में जठराग्नि हुए। पुलह ऋषि ने गति नामक पत्नी से कर्मश्रेष्ठ, वरीयान व सहिष्णु नामक तीन पुत्रों को और क्रतु की पत्नी क्रिया ने वाल्खिल्यादि साठ हजार ऋषियों को जन्म दिया। वशिष्ठ की पत्नी उर्जा (अरुन्धती) द्वारा चित्रकेतु आदि सात ऋषि उत्पन्न हुए। (चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान और द्युमान) उनकी दूसरी पत्नी शक्ति से भी कई पुत्र हुए। अथर्वा मुनि की पत्नी चित्ति से दधीचि नामक एक तपस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे अश्वशिरा भी कहते हैं (इन्हीं की अस्थियों से इन्द्र का 'वज्र' बना)।'

'भृगुऋषि ने ख्याति नामक पत्नी से—धाता और विधाता नामक पुत्र तथा श्री नामक कन्या उत्पन्न की। धाता और विधाता का विवाह मेरुऋषि की आयति व नियति नामक कन्याओं से हुआ जिससे उन्हें मृर्कण्ड व प्राण नामक पुत्र हुए। मृकण्ड द्वारा मार्कण्डेय तथा प्राण द्वारा वेदशिरा का जन्म हुआ। भृगु जी के यहां कवि नामक एक पुत्र और हुआ था, जिसने उशना (शुक्राचार्य) को जन्म दिया। कालान्तर में इन सभी मुनियों ने प्रजा उत्पन्न कर सृष्टि विस्तृत की। इस प्रकार यह देवहूति व कर्दम के दौहित्रों की सन्तानों का पाप नाशक वर्णन सुनाया। अब दक्ष प्रजापति की पत्नी प्रसूति की सन्तानों का वृत्तांत कहता हूं। मैत्रेय ऋषि ने आगे कहा—

'प्रसूति की 16 पुत्रियां हुईं। दक्ष ने उनमें से एक भगवान शिव को, एक अग्नि को, एक समस्त पितृगण को और तेरह धर्म को दीं। धर्म की तेरह पत्नियों—श्रद्धा,, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्रीं और मूर्ती की सन्तानों के नाम सुनो। श्रद्धा से शुभ, मैत्री से प्रसाद, दया से अभय, शान्ती से सुख, तृष्टि से मोद, पुष्टि से अहंकार, क्रिया से योग, उन्नति से दर्प, बुद्धि से अर्थ,

मेधा से स्मृति, तितिक्षा से क्षेम और ह्रीं (लज्जा) से प्रश्रय (विनय) नामक पुत्र हुए। मूर्ती से नर-नारायण का जन्म हुआ।' (पुराणों में इस प्रकार के विवरण वास्तव में कूट भाषा में कहा गया दर्शन है। स्पष्ट है कि धर्म के साथ शान्ती, तुष्टि आदि तेरह गुण—जो पत्नियां कहे गए हैं, भी रहते हैं, जिनसे उपरोक्त अभय, सुख, विनय आदि तेरह फल या प्रभाव—जो पुत्र कहे गए हैं, स्वतः ही उत्पन्न होते हैं। यानी जहां धर्म होता है, वहां यह सब भी शनैः-शनैः आ जुड़ते हैं, क्योंकि इनमें पत्नी व पुत्र जैसा निश्चित सम्बन्ध धर्म के साथ है। इसी प्रकार पाठक ध्यान देने पर यज्ञ व दक्षिणा आदि अन्य विवरणों में भी पाएंगे। यद्यपि यह मेरी अपनी धारणाा और विश्लेषण है, जो अल्पज्ञान के कारण गलत भी हो सकती है तो भी इससे पाठकों को सोचने की एक नई दिशा की प्रेरणा मिलेगी, इसलिए पुराण में अपनी ओर से कुछ कह देने की धृष्टता कर गया हूं। प्रबुद्ध पाठक इसे क्षमा करेंगे।)

'इन नर-नारायण के जन्म पर सम्पूर्ण विश्व आनन्दित हो उठा। देवताओं ने पुष्प वर्षा की, मुनियों ने स्तुति और अप्सराओं ने नृत्य किया, क्योंकि ये भगवान श्रीहरि के अंश थे, जो बाद में कृष्ण व अर्जुन के रूप में अवतरित हुए। दक्ष की स्वाहा नामक पुत्री, जो अग्नि से विवाहित थी पावक, पवमान और शुचि नामक पुत्रों की माता बनीं। ये तीनों ही अग्नि के समान हवन किए पदार्थों को भक्षण करने वाले हुए। इन तीनों से 45 प्रकार के अग्नि और हुए और सब उनचास अग्नि कहलाए। इसी प्रकार दक्ष की एक अन्य पुत्री स्वधा पितृगणों (अग्निस्वात्त, बर्हिषद्, सोमप, आज्यप आदि साग्निक व निरग्निक पितर) से ब्याही गई थी। उसने ज्ञान विज्ञान में पारंगत—धारिणी तथा बयुना नामक दो पुत्रियों को उत्पन्न किया। दक्ष की पुत्री सती जो महादेव शिव से विवाहित थीं—उसे कोई संतान नहीं हुई, क्योंकि शिव के प्रतिकूल आचरण करने वाले अपने पिता दक्ष के यज्ञकुण्ड में क्रोधवश युवावस्था में ही उन्होंने शरीर का त्याग कर दिया था।' यह सुनकर विदुर जी बोले—'हे प्रभु! सब देवों में श्रेष्ठ महादेव शिव के प्रतिकूल आचरण दक्ष प्रजापति ने क्यों किया? मुझसे वह प्रसंग भी कृपापूर्वक कहिए।'

मैत्रेय जी बोले—'पहले एक बार प्रजापतियों के यज्ञ में ब्रह्मा, शिव आदि समस्त देवता, ऋषि व मुनि एकत्रित हुए थे। उस सभा में दक्ष के प्रवेश करने पर ब्रह्मा व शिव के अतिरिक्त सभी सम्मानपूर्वक उठ खड़े हुए थे। ब्रह्मा तो स्वयं दक्ष के पिता थे, किन्तु शिव को अपने प्रति सम्मान प्रकट न करते देख दक्ष कुपित हो गए। वे शिव के श्वसुर थे और शिव से सम्मान की आशा करते थे। सो उन्होंने शिव को काफी बुरा भला कहा। प्रति उत्तर में शिव के मौन रहने से अत्यंत क्रोधित हो कर शाप देने को उद्धत हो गए और बोले—'प्रेतों के साथ श्मशान में नंगधड़ंग घूमने

पवाले इस औघड़ व अमंगल वेषधारी को अब से यज्ञों का भाग न मिले। यह सुनकर सभी ने दक्ष को समझाया मगर दक्ष शाप देकर सभा छोड़कर चले गए।'

'हे विदुर! शिव तो शाप स्वीकार करके भी शांत ही रहे, किन्तु उनके अनुयायी सेवकों में अग्रणीय नन्दी ने दक्ष और उसके वचनों का अनुमोदन करने वाले ब्राह्मणों को भयंकर शाप दिया। उन्होंने कहा—शंकर से द्वेष रखने वाला दक्ष तत्व ज्ञान से विमुख ही रहे। बकरे के समान मैं-मैं करने वाला अहंकारी दक्ष बकरे के समान मुख वाला हो जाए। शंकर द्रोही ये ब्राह्मण कर्मों के जाल में ही फंसे रहें। पेट पालने के लिए ही विद्या, तप और व्रतादि का आश्रय लें और भिक्षा मांगते फिरें तथा कर्मकाण्ड में ही लगे रहें।'—इस प्रकार समस्त ब्राह्मण कुल के लिए शाप सुनकर भृगु ऋषि भी क्रोधित हो गए और बदले में उन्होंने शाप दिया कि—'जो शिव भक्त व उनके अनुयायी हैं, वे शास्त्रों के विरुद्ध आचरण करने वाले वाममार्गी हों। शौचाचार विहीन, हड्डी, राख, जटा आदि धारण करने वाले हों, सुरा व आसव का सेवन करें। उनके ईष्ट होने के कारण महादेव शिव भी वामदेव कहे जाएं।'

'इस प्रकार विवाद बढ़ जाने पर शिव भगवान अपने अनुयायियों के साथ वहां से लौट गए और दक्ष सदा के लिए शिवद्रोही हो गए। तदनन्तर दक्ष प्रजापतियों के अधिपति बन जाने से और भी गर्वोमत्त हो गए। उन्होंने भगवान शंकर आदि ब्रह्मनिष्ठों को यज्ञ भाग न देकर तिरस्कार करते हुए पहले वाजपेय यज्ञ किया और फिर बृहस्पतिसव नामक महायज्ञ किया। शंकर पत्नी सती को जब उस महायज्ञ के विषय में ज्ञात हुआ तो उन्होंने शिव से उस यज्ञ में चलने का निवेदन किया। उनका तर्क था कि अपने सुहृद व रिश्तेदारों के यहां बिना आमंत्रण के भी जाया जाता है, क्योंकि घर के लोगों को आमंत्रित नहीं किया जाता है। शिव द्वारा बहुत समझाए जाने पर भी वे हठ करती रहीं और शिव द्वारा अपमानित हो जाने की चेतावनी देने के बाद भी वे अकेली ही चल पड़ीं। यह देख नन्दी आदि शिव के पार्षद भी उनके साथ चल पड़े।'

'जैसा कि भगवान शिव ने कहा था कि पिता की लाड़ली तथा शिव की पत्नी होने के कारण सती को अकेले जाने पर भी अपमानित होना पड़ेगा—वैसा ही हुआ। सती दक्ष द्वारा अपना व अपने पति का अपमान सहन न कर सकीं और तिरस्कार की ग्लानि तथा पति का आदेश न मानने के कारण प्रायश्चित करने के लिए स्वयं योगाग्नि में भस्म हो गईं। तब तो वहां हा-हा कार मच गया। सती के साथ आए शिव के पार्षदों ने क्रुद्ध होकर आक्रमण कर दिया और यज्ञ को ध्वंस करने को बढ़े। तब भृगु ने यज्ञ में विघ्न डालने वालों के लिए दक्षिणाग्नि में आहुति दी, जिससे 'ऋभु' नामक हजारों देवता यज्ञकुण्ड से प्रकट हुए और शिव के पार्षदों से भिड़ गए। संख्या
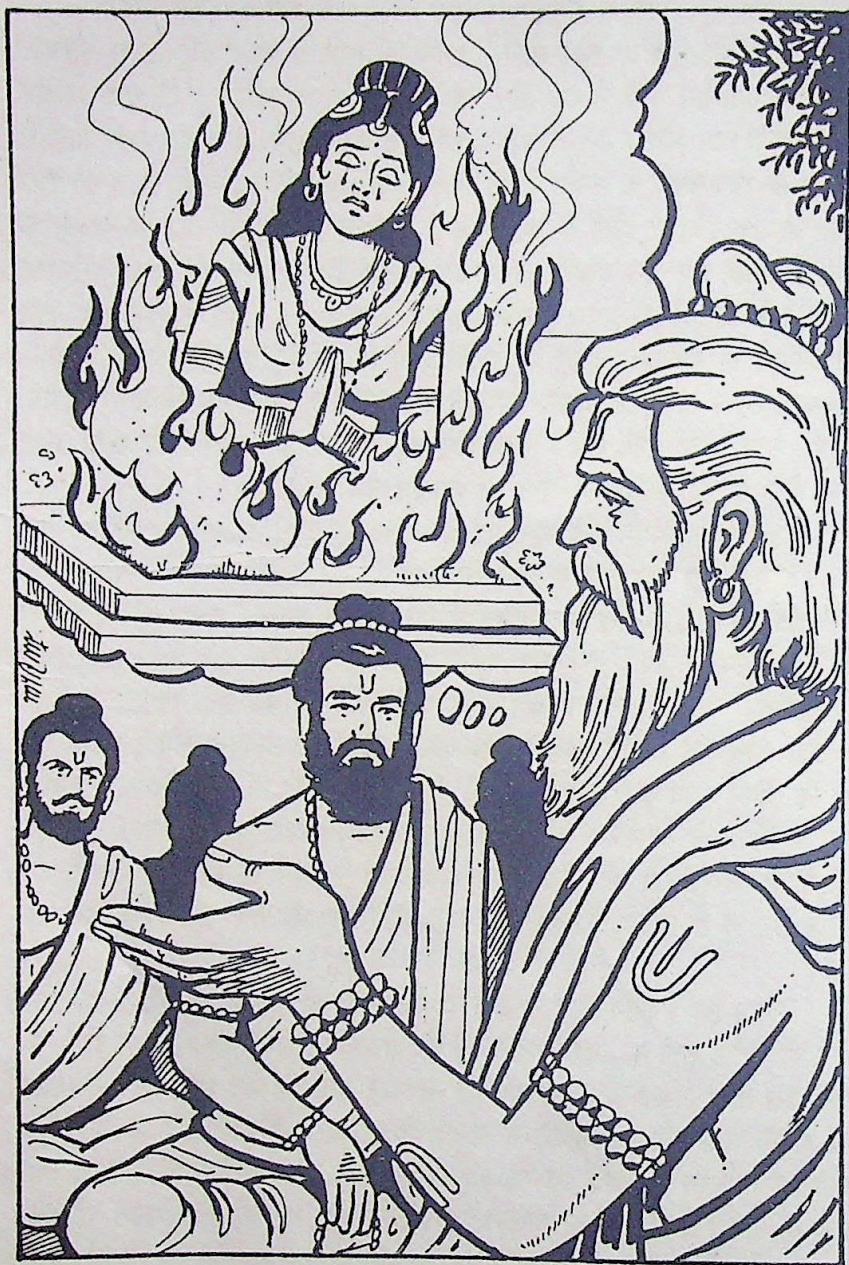
अपमानवश अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञकुण्ड में कूदतीं भगवान शिव की पत्नी सती

में थोड़े होने के कारण शिव के उन पार्षदों को पराजित होकर भागना पड़ा।'

'हे विदुर! यह समाचार पाने पर शिव ने अत्यंत क्रुद्ध होकर अपनी एक जटा उखाड़ कर पृथ्वी पर दे मारी जिससे—विकराल, भयंकर, अतिशक्तिशाली, दुर्जेय और सहस्र हाथों वाला वीररूद्र (कई पुराणों में इन्हें वीरभद्र कहा गया) प्रकट हुआ। शिव का वह अंश शिवाज्ञा से दक्ष व उसके यज्ञ का विध्वंश करने यज्ञशाला में जा पहुंचा। उसके साथ ही शिव के पार्षद, प्रमथगण आदि भी वहां जा पहुंचे। उन सबने वहां भारी विनाश, विध्वंश व उपद्रव किया। मणिभान ने भृगुऋषि को बांध लिया, वीरभद्र ने दक्ष को बन्दी बना लिया, चण्डीश ने पूषा को और नन्दी ने भगदेवता को पकड़ लिया और भृगु की दाढ़ी नोंच ली, पूषा के दांत तोड़ दिए, भगदेवता की आंखें निकाल लीं और दक्ष का सिर काट कर यज्ञकुण्ड में डाल दिया। इस प्रकार भारी हिंसा व उत्पात करके, पूरे यज्ञ का विध्वंस कर और वहां उपस्थित लोगों को पर्याप्त दण्ड देकर वीरभद्र अपने अनुचरों सहित वापस कैलाश लौट आया।'

'भगवान विष्णु इन सब घटनाक्रमों को पहले से ही जानते थे, अतः वे दक्ष के यज्ञ में गए ही नहीं थे। देवताओं के मुख से सारी बात सुन कर भगवान विष्णु बोले—परम तेजस्वी व समर्थ व्यक्ति से कुछ दोष हो भी जाए तो भी उसका प्रतिकार करने वाले का कल्याण नहीं हो सकता, अतः यज्ञ में भगवान शंकर का प्राप्य भाग न देकर तुमने भारी अपराध किया है, अतः तुम्हें शुद्ध हृदय से उनके चरण पकड़ कर क्षमा मांगनी चाहिए। वे शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले तथा भोले हैं, अतः तुमको क्षमा कर देंगे। दक्ष के दुर्वचनों से आहत होकर वे अपनी प्रिया सती के वियोग से दग्ध हो रहे हैं—ऐसे में वे कुपित हो गए तो तीनों लोकों को कोई बचा नहीं सकता। भगवान शंकर परम स्वतन्त्र हैं। उनका तत्व व सामर्थ्य तो स्वयं मैं भी ठीक-ठीक नहीं जानता, फिर दूसरों की तो बात ही क्या। अतः क्षमा मांग कर ही उनको शांत कर लेना उचित है।' तब देवताओं एवं ऋषियों ने ऐसा ही किया, वे ब्रह्मा व अन्य प्रजापतियों सहित कैलाश गए और शिव की स्तुति करते हुए क्षमा याचना की। फिर ब्रह्मा जी ने निवेदन किया—

'हे महादेव! विश्व की योनि शक्ति (प्रकृति) तथा बीजशक्ति (पुरुष)—दोनों ही से परे आप एकरस परब्रह्म हैं। वेदों की रक्षा के लिए आप ही ने यज्ञ को प्रकट किया है। आप ही सम्पूर्ण यज्ञों को पूर्ण करने वाले हैं, अतः इस अपूर्ण यज्ञ का भी उद्धार कीजिए। यजमान दक्ष को भी कृपापूर्वक जीवन दान दीजिए। भृगु, पूषा, भग आदि जो ऋषि व देवता घायल हो गए हैं। वे भी आप की कृपा से स्वस्थ हो जाएं। हे महादेव, इन दुर्मतियों को क्षमा कीजिए, क्योंकि छोटों के उत्पातों को बड़े सदैव क्षमा कर दिया करते हैं।'

'भगवान शंकर तब हंसकर बोले—'प्रजापते! ईश्वरीय माया से मोहित हुए दक्ष जैसे अज्ञानियों के अपराध की न मैं चर्चा करता हूं, न ही स्मरण, किन्तु सावधान करने के लिए थोड़ा दण्ड दिया जाना आवश्यक था। मर्यादाओं की रक्षा व स्थापना के लिए नियमों का बंधन तथा दण्ड़भय व कठोरता आवश्यक होती है। अतः अपराधियों को कुछ दण्ड देना ही होता है। दक्ष प्रजापति का सिर यज्ञ कुण्ड में जल चुका है तो भी बकरे का सिर लगा कर मैं उनको जीवित कर दूंगा। (नन्दी के शाप की मर्यादा के लिए बकरे का सिर चुना) भगदेवता अपने नेत्र खो चुके हैं—उनको मित्र देवता के नेत्रों द्वारा देख पाने की सामर्थ्य प्राप्त हो जाएगी। पूषा देव पिसा हुआ अन्न यजमान के दांतों से ग्रहण करेंगे। अध्वर्यु आदियों में अपनी भुजा गवां चुके याज्ञिक अश्वनीकुमारों की भुजाओं से कार्य कर पाएंगे। अन्य देवताओं के अंग-प्रत्यंग भी स्वस्थ हो जाएंगे। भृगु ऋषि की दाढ़ी-मूंछें बकरे के समान हुई उन्हें प्राप्त होंगी। आप लोगों का कल्याण हो, इस यज्ञ को सम्पूर्णता प्राप्त होगी।'

'हे महामते विदुर जी! शिवेच्छा से वैसा ही हुआ। दक्ष ने पुनर्जीवित हो शुद्ध हृदय से शिव की स्तुति की और अन्य घायल देवताओं ने भी स्वस्थ होकर शिव से क्षमा मांगकर फिर धन्यवाद दिया। तब यज्ञ पुनः आरम्भ किया गया और श्रीहरि ने सबको दर्शन दिए। तब दक्ष, ऋत्विजों, भृगु, रूद्र, इन्द्र, ब्रह्मा, याज्ञिकों, ऋषियों, सिद्धों, लोकपालों, ब्राह्मणों, गंधर्वों, देवताओं योगियों और विद्याधरों ने उनकी स्तुति की और यज्ञ सम्पन्न हुआ। इधर सती जी ने हिमालय की पत्नी मैना के गर्भ से जन्म लिया और शिव को वरण किया। यह दक्षयज्ञ का प्रसंग मैंने बृहस्पति शिष्य उद्धव जी से सुना था, जो तुमको सुनाया। महादेव जी का ये चरित्र पापनाशक, यश व आयु वर्धक तथा पवित्र एवं बड़ा कल्याणकारी है।' मैत्रेय जी ने विदुर जी से कहा।

'मैत्रेय जी ने फिर ब्रह्मा जी की अन्य सन्तानों का वर्णन करते हुए कहा—'सनकादि, नारद, हंस, अरुणि, ऋभु व यति इन ब्रह्म पुत्रों ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गृहरूप आश्रम का सेवन ही नहीं किया, अतः उनकी सन्तानें नहीं हुईं, किन्तु अधर्म भी ब्रह्मा का पुत्र था। उसका विवाह मृषा से हुआ। उनके पुत्र का नाम दम्भ तथा पुत्री का नाम माया हुआ। उन दोनों को निऋृति ने ले लिया, क्योंकि उनकी कोई संतान नहीं थी। दम्भ और माया से लोभ और निकृति (शठता) का, उनसे क्रोध और हिंसा का तथा क्रोध व हिंसा से कलि (कलह) और दुरुक्ति (गाली) का जन्म हुआ। फिर कलि ने दुरुक्ति से मृत्यु तथा भय को उत्पन्न किया। भय व मृत्यु के समागम से यातना और निरय (नरक) का युग्ल उत्पन्न हुआ। यह तुमको प्रलय के कारण अधर्म का वंश सुनाया। इस वृत्तांत का श्रवण तीन बार करने से मन की मलिनता दूर हो जाती है, क्योंकि अधर्म को त्याग कर यह पुण्यसम्पादन

में हेतु बनता है। अब मनु के पुत्रों उत्तानपाद व प्रियव्रत की संतानों का वृत्तांत कहता हूं, उसे भी सुनो—

'उत्तानपाद की सुरुचि व सुनीति नामक दो पत्नियां थी। सुरुचि का उत्तम तथा सुनीति का ध्रुव नामक पुत्र था। उत्तानपाद को सुरुचि अधिक प्रिय थी। एक दिन जब उत्तम राजा उत्तानपाद की गोदी में बैठा था, ध्रुव ने भी बाल-स्पर्द्धा की भावना से राजा की गोदी में चढ़ने की इच्छा प्रकट की मगर राजा ने उसका स्वागत नहीं किया। तब घमंड के साथ सुरुचि बोली—'अरे! तू राजा का पुत्र होकर भी सिहांसन की इच्छा क्यों करता है? दुलर्भ इच्छा करने के लिए तुझे मेरे गर्भ से जन्म लेना चाहिए था। तू तप कर, जिससे अगले जन्म में मेरे गर्भ से उत्पन्न हो सके।' सौतेली माता के ऐसे वचन सुनकर ध्रुव रोता हुआ अपनी माता के पास गया और शिकायत की। तब सुनीति ने ठंडी सांस लेकर कहा—'तेरी विमाता ठीक ही कहती है। मैं पत्नी होते हुए भी दासी ही हूं, क्योंकि तेरे पिता मुझसे उतना प्रेम नहीं करते। वे तेरी विमाता को प्रेम करते हैं। अतः वह रानी है। तूने मुझ मन्दभागिनी के गर्भ से जन्म लिया है अतः सिंहासन पर तेरा अधिकार नहीं, उत्तम की अपेक्षा पिता की गोद पर भी उतना अधिकार नहीं। अतः तू भगवान नारायण का तप कर, वही एक मात्र इच्छित फलों के देने वाले हैं।'

'तब ध्रुव घर छोड़ कर चला गया। नारद जी सब जान कर ध्रुव के पास पहुंचे और ध्रुव की दृढ़ता देखकर उसको श्रीहरि के ध्यान हेतु यमुनातट पर स्थित पवित्र मधुबन को भेज दिया और कहा—'यमुना में तीनों समय स्नान करके नित्यकर्मों से निवृत्त हो स्थिर भाव से आसन पर बैठकर रेचक, पूरक, कुम्भक तीन तरह के प्राणायाम करके श्वास, मन, प्राण व इन्द्रियों को संयम कर व उन्हें निर्दोष कर धैर्यपूर्वक भगवान वसुदेव का ध्यान करना और द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवतेवासुदेवाय) का जप करना। प्रभु अवश्य ही प्रसन्न होकर तुम्हें इच्छित वर देंगे।' तब ध्रुव ने नारद की आज्ञा शिरोधार्य कर वैसा ही किया। नारद जी तब उत्तानपाद के पास पहुंचे। उत्तानपाद धुव्र के गृहत्याग के कारण दुःखी तथा स्वयं पर शर्मिंदा थे। तब नारद जी ने उन्हें सांत्वना दी और बताया कि ध्रुव अत्यंत यश प्राप्त करेगा और अद्‌भुत कार्य कर दिखाएगा।'

'हे विदुर! धुव्र की कठोर व सच्ची तपस्या से सब लोकों में खलबली मच गई। पृथ्वी ध्रुव के उस पैर के अंगूठें के बोझ से एक ओर झुक गई, जिस पैर पर ध्रुव खड़े होकर तप कर रहे थे। सब देवताओं ने तब घबराकर श्रीविष्णु की शरण ली। तब विष्णु जी ने उन्हें सांत्वना देकर वापस भेजा और ध्रुव को तप से निवृत्त करने के लिए उसे दर्शन दिए। तब ध्रुव ने उनकी स्तुति की और कहा—'प्रभो! मुझे सिंहासन
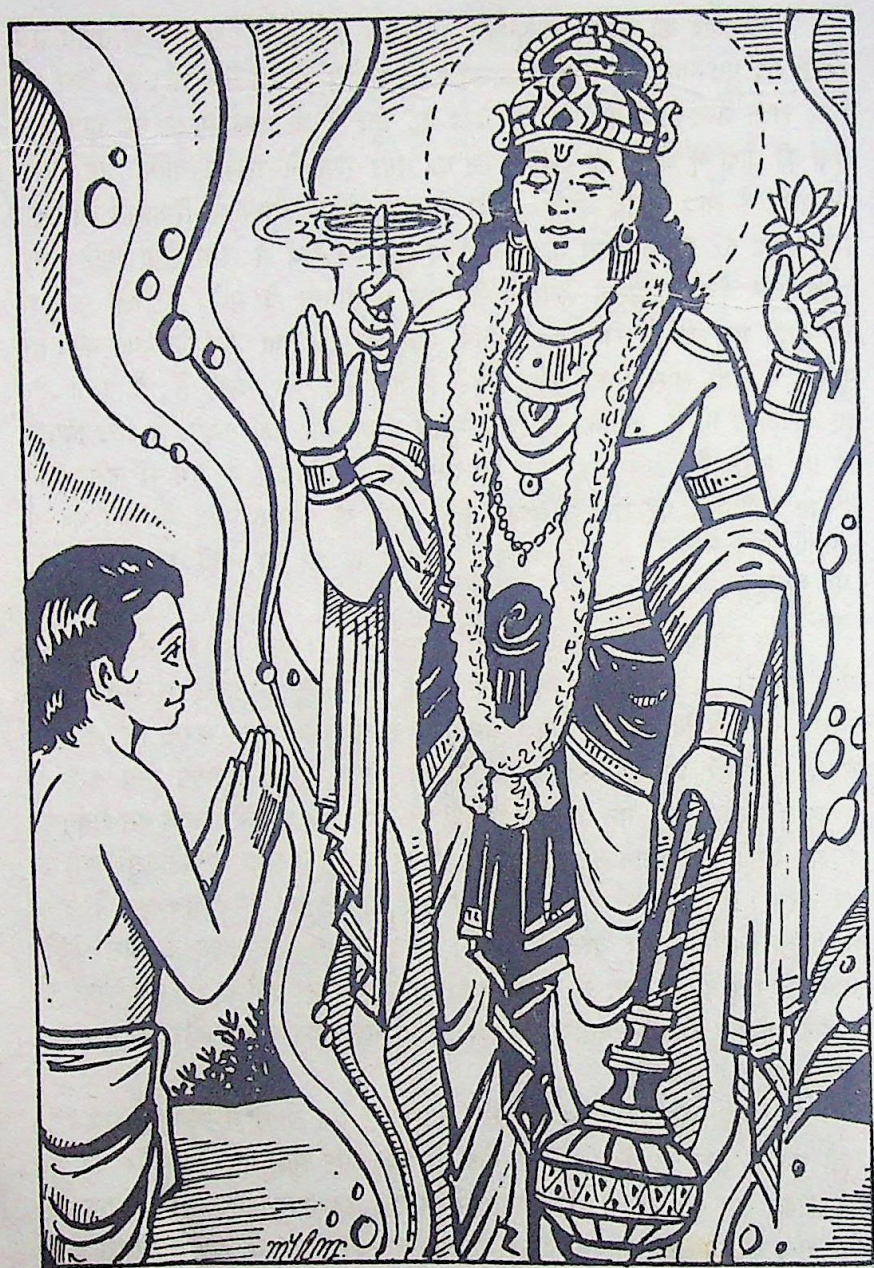
चतुर्भुज रूप में बालक ध्रुव को दर्शन देते भगवान विष्णु

पर बैठे अपने पिता की गोद में स्थान प्राप्त करने के लिए अपनी विमाता से अपमानित होना पड़ा था। अतः मैं अपनी विमाता सहित सभी को आश्चर्य में डालने के लिए ऐसा उच्च और शाश्वत स्थान प्राप्त करना चाहता हूं, जो किसी के लिए भी सम्भव न हो। हे प्रभो! मुझे ऐसा पद दीजिए, जो बड़े-बड़े सम्राटों को भी न मिले।'

तब भगवान बोले—'समस्त ग्रह, नक्षत्र, तारागण तथा सप्तऋषि मंडल भी, जिसकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं, वह किसी के भी द्वारा अप्राप्य, तेजोमय, अविनाशी ध्रुवलोक मैं तुझे देता हूं। तू सदा वहां स्थिर पद पर रहेगा। उत्तम शिकार खेलते हुए कालांतर में मृत्यु को प्राप्त होगा और सुरुचि दुःख में पागल हो वन में दावानल में प्रवेश कर जाएगी। तू 36 हजार वर्ष तक धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करेगा तथा अनेक महान यज्ञ करेगा। समस्त सुख भोगकर अन्त में सप्तऋषियों से भी ऊपर मेरे निजधाम को प्राप्त करेगा।' इस प्रकार वर पाकर ध्रुव वापस लौटे। तब भगवान के दर्शन व वरदान प्राप्त ध्रुव्र का स्पर्श करने से राजा उत्तानपाद, सुरुचि व सुनीति के भी सब पाप धुल गए और उनकी भी ध्रुव के प्रभाव से मुक्ति हुई।'

मैत्रेय जी ने आगे कहा—'ध्रुव्र ने प्रजापति शिशुमार की पुत्री भ्रमि से विवाह किया और वत्सर तथा कल्प नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। दूसरी पत्नी वायुपुत्री इला से भी उनके एक पुत्र व पुत्री हुए। उत्तम अविवाहित ही शिकार खेलते समय हिमालय पर यक्षों द्वारा मार डाला गया और सुरुचि भी उसके बाद परलोक सिधार गई। ध्रुव को जब समाचार मिला तो उसने यक्षों पर आक्रमण किया। यक्षों की तेरह अयुत (1,30,000) सेना से ध्रुव ने युद्ध किया। महान धनुर्धर ध्रुव ने उन्हें पराजित कर भगा दिया। वे अलकापुरी में प्रवेश करना ही चाहते थे कि यक्षों ने अपनी माया फैलाकर सबको आतंकित कर दिया। तब ध्रुव्र ने नारायणास्त्र का संधान किया और माया को काट दिया। जब उनके पितामह मनु ने देखा कि ध्रुव ने अनेक निरपराध यक्षों को मार डाला है तो उन्होंने उसे समझाया कि उसका भाई विधि के विधान द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ है, यक्ष तो केवल माध्यम बने थे। अतः सामान्य मनुष्यों की भांति प्रतिशोध न लें। यक्षों का वध कर ध्रुव्र उनके स्वामी कुबेर का अपराधी है और कुबेर शिव के कृपापात्र हैं अतः विनय के द्वारा उनको प्रसन्न कर लेना ठीक है।'

'तब ध्रुव अपने पितामह की बात मान कर कुबेर के सम्मुख पहुंचे और यक्ष, चारणों व किन्नरों से स्तुत्य कुबेर के सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। इस पर कुबेर ने प्रसन्न होकर उन्हें वर मांगने को कहा। ध्रुव ने यही वर मांगा कि उन्हें श्रीहरि की स्मृति सदा बनी रहे। इस प्रकार कई यज्ञादि करने के बाद छत्तीस हजार वर्ष के शासन के बाद वे अपने पुत्र उत्कल को राज्य सौंप कर बद्रिकाश्रम चले गए। वहां तप करते हुए वे भगवान विष्णु के पार्षदों नन्द व सुनन्द द्वारा विमान में वैकुण्ठ धाम ले जाए गए। उनकी इच्छा पर उनकी माता सुनीति को भी वैकुण्ठ प्राप्त हुआ। फिर

वे ध्रुव लोक पहुंचकर ध्रुव तारे के रूप में प्रतिष्ठित हो गए।'

तब विदुर जी ने पूछा—'हे महामुने! मुझसे प्रचेताओं के विषय में भी कहिए। जिस समय प्रचेतागण भगवान यज्ञेश्वर की पूजा कर रहे थे उसी समय नारद जी ने ध्रुव का गुणगान किया था। तब भगवान की जिन लीला कथाओं का वर्णन हुआ था मुझसे वह भी कहिए।'

मैत्रेय जी बोले—'इला पुत्र उत्कल समदर्शी था। अपनी ही आत्मा को ब्रह्म का स्वरूप समझ कर वह पूरे जगत को अपनी आत्मा से भिन्न नहीं देखता था। अतः सदा अपनी ही धुन में खोया रहता था। सो उसने ध्रुव द्वारा सौंपे गए राज्य को अस्वीकार कर दिया। तब उसे मूर्ख व पागल जान, मंत्रियों व बुजुर्गों ने भ्रमिपुत्र वत्सर को राजा बना दिया—जो उत्कल का सौतेला छोटा भाई था। वत्सर की पत्नी स्वर्वीथी से छह पुत्र—पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय उत्पन्न हुए थे। पुष्पार्ण के प्रभा नामक पत्नी से प्रातः, मध्यन्दिन और सायं—तीन पुत्र तथा दोषा नामक पत्नी से भी—प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट—यह तीन पुत्र हुए। व्युष्ट ने पुष्करिणी के गर्भ से सर्वतेजा और सर्वतेजा ने आकूति के गर्भ से चक्षुः को उत्पन्न किया जो चाक्षुष मन्वन्तर का मनु हुआ। चक्षु की पत्नी नड्वला—पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान, व्रत, ऋत, अतिरात्र, शिबि, अग्निष्टोम, प्रद्युम्न तथा उल्मुक—नामक बारह पुत्रों को उत्पन्न करने वाली हुईं। उल्मुक के पुष्करिणी नामक पत्नी द्वारा अंग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय नामक छह पुत्र हुए। अंग ने सुनीथा के गर्भ से वेन को जन्म दिया, जो अत्यंत क्रूर था। वेन की दुष्टता से अप्रसन्न मुनियों के शाप से वह निःसंतान ही मर गया। राजा के न होने से राज्य की व्यवस्था व सुरक्षा तथा सुख-शांति संकट में पड़ गई, अतः ऋषियों ने वेन के शव की दाहिनी भुजा का मंत्र शक्ति से मंथन किया, जिससे भगवान विष्णु के अंशावतार आदि सम्राट महाराजा पृथु का प्राकट्य हुआ।'

विदुर जी बोले—'हे महामुने! अंग जैसे साधुस्वभाव के पुत्र और ध्रुव जैसे अनन्य भक्त के कुल में—वेन अतिक्रूर और निर्दयी क्यों हो गए, जो ऋषियों को उन्हें शाप देना पड़ा?'

तब मैत्रेय जी बोले—'राजा अंग पूर्व जन्म के एक अपराध के कारण निःसंतान थे। अतः पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा प्राप्त खीर को खाकर उनकी पत्नी सुनीथा गर्भवती हुई। सुनीथा मृत्यु की पुत्री थी, जो अधर्म वंश में उत्पन्न हुए थे। अतः बालक वेन का स्वभाव बाल्यकाल से ही अपने नाना के गुण स्वभाव पर गया। वेन के अति दुष्ट होने से महाराज अंग विरक्त होकर वन को चले गए। तब राजा के न रहने पर वेन को राजा बनाया गया। वेन को अधर्म व अत्याचार करते देख ऋषियों ने उसे समझाया मगर वेन ने उनका भी तिरस्कार किया और भगवान के स्थान पर स्वयं वेन की ही पूजा करने को कहा। तब ईश्वर की निन्दा से पहले ही मरे हुए राजा

वेन को ऋषियों ने अपनी हुंकार मात्र से समाप्त कर दिया। शोकाकुल होकर मोह के कारण सुनीथा मंत्रबल व अन्य युक्तियों से वेन के शव की रक्षा करती रही।'

'बाद में राजा विहीन राज्य में अराजकता फैल जाने से और कई प्रतापी राजा उत्पन्न करने वाले उस वंश को आगे बढ़ाने के लिए ऋषियों ने सर्वसम्मति से वेन के शव की दाईं जांघ का मंथन किया। तब एक कुरूप-सा काला बौना उत्पन्न हुआ। उसने उत्पन्न होते ही पूछा—'मै क्या करूं?' तब ऋषियों ने उसे 'निषिद' (बैठ जा) कहा। अतः वह निषाद कहलाया। उसने जन्म लेते ही वेन के पापों को अपने ऊपर ले लिया था। अतः उसके वंशज नैषाद भी हिंसा, लूटपाट आदि पाप करते हैं तथा पर्वतों में निवास करते हैं। फिर ऋषियों ने वेन की दाईं भुजा को मथा—जिससे एक स्त्री-पुरुष का जोड़ा उत्पन्न हुआ। यह भगवान श्रीहरि के अंशावतार 'पृथु' तथा लक्ष्मी की अवतार 'अर्चि' थे। बाद में अर्चि ने पृथु का वरण कर लिया था।'

'राजा पृथु की समस्त गंधर्वों, मुनियों आदि ने स्तुति की और देवताओं ने उन्हें विभिन्न उपहार दिए। वन्दीजनों ने भी उनकी स्तुति की। पृथु 'आजगवा' नामक धनुष को चलाने वाले महान योद्धा और धनुर्धर थे। वे चक्रवर्ती सम्राट बने। पृथ्वी के अन्नहीन हो जाने से उत्पन्न प्रजा के संकट को दूर करने के लिए उन्होंने पृथ्वी के गर्भ से औषधियां आदि खोज निकालने के लिए अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। तब पृथ्वी गौ का रूप धारण करके भागने लगी। दिशा, विदिशा, पाताल, स्वर्ग, अंतरिक्ष जहां भी पृथ्वी भागकर गईं वहीं धनुष चढ़ाए पृथु को पाया, तब पृथ्वी उनसे दया की भीख मांगती हुई बोली—'मुझ निरपराध को स्त्री होते हुए भी आप क्यों मारना चाहते हैं? मैं तो जगत का आधार हूं। मेरा विनाश करके आप प्रजा को जल पर किस प्रकार रखेंगे?'

पृथु बोले—'तूने पूर्वकाल में ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किए अन्नादि के बीज अपने अन्दर छिपा लिए हैं। यज्ञों में देवतारूप भाग ले लेने के बाद भी अन्न को बदले में नहीं देती। अतः मैं अपने बाण द्वारा तुझे छिन्न-भिन्न करके तेरे मेदे से अपनी प्रजा की भूख शांत करूंगा। दुष्ट भले ही स्त्री हो या पुरुष अथवा नपुसंक ही क्यों न हो, राजा को उसे दण्ड देना ही चाहिए। माया द्वारा गौ का धरा रूप भी तुझे बचा नहीं सकता।'

तब पृथ्वी बोली—'हे महाराज! आप मेरा वध न करें। मैं आपकी प्रजा का कष्ट दूर करूंगी। आप एक दूध दुहने वाले,एक दोहन पात्र और एक मेरे योग्य बछड़े का प्रबन्ध कीजिए। मैं उस बछड़े के स्नेह में पिन्हा कर दुग्ध रूप में आपको औषधि, अन्न आदि समस्त अभीष्ट वस्तुएं दे दूंगी, किन्तु आपको मुझे समतल करना होगा, ताकि वर्षा ऋतु व्यतीत हो जाने पर भी इन्द्र द्वारा बरसाया गया जल मुझ पर सर्वत्र बना रहे और मेरे भीतर की आद्रता सूखें नहीं—इससे मैं आपकी प्रजा को भविष्य में भी सब पदार्थ दे सकूंगी और सबका मंगल होगा।'

'हे विदुर! पृथ्वी के ऐसा कहने पर राजा पृथु ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बना कर अपने हाथों में ही, स्वयं पृथ्वी के समस्त धान्यों को दुह लिया। पृथु के समान अन्य विज्ञपुरुष भी सब स्थानों से सार ग्रहण करने लगे। पृथु द्वारा वश में की गई वसुन्धरा से उन्होंने अपनी अभीष्ट वस्तुएं दुह लीं। ऋषियों ने बृहस्पति जी को बछड़ा बना कर इन्द्रिय रूपी पात्र में वेदं रूपी दूध दुहा। देवताओं ने इन्द्र को बछड़ा बना कर 'स्वर्णपात्र में अमृत, ओज, वीर्य व बल का दोहन किया। दैत्यों ने प्रह्लाद को बछड़ा बना कर लौहपात्र में—मदिरा व आसव रूपी दूध को दुहा। गन्धर्वों व अप्सराओं ने विश्वावसु को बछड़ा बनाकर कमलपात्र में—संगीत माधुर्य/रस तथा सौंदर्यरूप रूपी दूध दुह लिया। पितरों ने अर्यमा को बछड़ा बनाकर मिट्टी के कच्चे पात्र में कव्य रूप दूध दुह लिया। सिद्धों ने कपिल जी को बछड़ा बनाकर आकाशरूपी पात्र में अणिमा, गरिमा आदि अष्टसिद्धियों को दुहा। विद्याधरों ने इसी प्रकार आकाशगमन आदि विद्याओं को, किम्पुरुष आदि ने विभिन्न मायाओं को, नागों ने विषों को, पशुओं ने तृण को, पक्षियों ने फलों को, मांसाहारियों ने कच्चे मांस को, पर्वतों ने धातुओं व खनिज़ों आदि को दुग्ध रूप में दुह लिया। यक्षों-राक्षसों व भूत-प्रेत आदि ने भी भूतनाथ रूद्र को बछड़ा बना कर कपाल रूपी पात्र में रुधिर व आसव आदि को दुह लिया और स्वयं पृथु ने मनुष्यों के लिए अन्न व औषधि आदि का दोहन किया।'

'इस प्रकार के दोहन से पृथु महाराज पृथ्वी से इतने खुश हुए कि उसे अपनी कन्या के रूप में स्वीकार किया। (तभी से पृथु के नाम पर भूमि का नाम पृथ्वी हुआ।) अपने धनुष की नोक से पर्वतों को फोड़कर उन्होंने प्रायः पृथ्वी को समतल कर दिया और प्रजा के निवास के लिए यथा योग्य विभाजन किया। तभी से ग्राम, पुर, नगर, कस्बा, बस्ती आदि की व्यवस्था का सूत्रपात हुआ।'

मैत्रेय जी नें आगे बताया—'राजा पृथु द्वारा सौवां अश्वमेध यज्ञ किए जाने पर इन्द्र का सिंहासन डोलने लगा। पृथु तप, यज्ञ व परोपकार द्वारा अर्जित पुण्यों से कहीं इन्द्र से आगे न हो जाएं? इस दुर्भावना से उसने अधर्म में धर्म का भ्रम पैदा करने वाला वेष धारण कर यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया। पृथु पुत्र ने इन्द्र को ऐसा करते देख उसका पीछा किया और आकाश मार्ग में ही चेतावनी देकर जा पकड़ा। सिर पर जटा जूट और शरीर पर मली भस्म को देखकर पृथुपुत्र ने इन्द्र को धर्मावलम्बी समझकर उसका वध नहीं किया और वापस लौट आया। तब महर्षि अत्रि द्वारा आज्ञा पाने पर पृथुपुत्र पुनः इन्द्र का वध करने उसके पीछे दौड़ा, क्योंकि अत्रि ने इन्द्र का कपट वेष पहचान लिया था। भय के कारण इन्द्र घोड़े को वहीं छोड़कर अन्तर्धान हो गया। पृथुपुत्र घोड़ा यज्ञशाला में वापस ले आया। तब उसके अद्भुत पराक्रम के कारण उसका नाम महर्षियों ने 'विजिताश्व' (घोड़े को जीत लाने वाला) रख दिया।'

'हे विदुर! इन्द्र ने कई प्रकार के कपटवेष धारण करके यज्ञ का घोड़ा चुराने

का प्रयास किया, लेकिन अत्रिमुनी और विजिताश्व के कारण सफल न हो पाया, मगर इन्द्र द्वारा त्यागे गए वे निन्दित वेष पाप के खण्ड होने के कारण पाखण्ड कहलाए और प्रजा ने वैसा वेष धारण करने वालों का आदर व विश्वास करना छोड़ दिया। इनमें 'नग्न', 'कापालिक', 'रक्ताम्बर' आदि वेष प्रमखु हैं। बाद में इन वेषों को नास्तिक मत वाले मन्दबुद्धियों तथा तर्क द्वारा ही धर्म की स्थापना करने वाले (गाल बजाने वालों) तथा उपधर्मों को ही भ्रमवश धर्म समझने वालों ने ले लिया।'

राजा पृथु यह सारा वृत्तांत जानकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और इन्द्र का वध करने के लिए उन्होंने धनुष उठा लिया। तब ऋत्विजों ने समझाया कि 'यज्ञ दीक्षा लेने के बाद शास्त्र में कहे यज्ञ पशु को छोड़ कर अन्य किसी का भी वध करना उचित नहीं है। अतः धूर्त इन्द्र को हम अमोध-आवाहन मन्त्रों द्वारा यहीं उपस्थित करके बलात् अग्नि में हवन कर देते हैं। तब महाराज पृथु की सहमति पाकर ऋत्विजों ने ऐसा ही किया, किन्तु वे सुवा द्वारा जब आहुति डालने ही वाले थे, तब ब्रह्मा जी ने वहां उपस्थित होकर कहा—'याजकों! आप इन्द्रवध न करें। यज्ञसंज्ञक इन्द्र तो प्रभु की ही मूर्ति हैं। पृथु स्वयं भी प्रभु अवतार हैं। अतः इन्द्र को नहीं, इन्द्र द्वारा उत्पन्न किए गए पाखण्ड का अन्त करिए और यह यज्ञ अपूर्ण रह गया—इसकी चिन्ता न करें, क्योंकि महाराज पृथु को और यज्ञ करने की कोई आवश्यकता नहीं, उनके निन्यानवे यज्ञ ही वहुत हैं।' ब्रह्मा जी के इस प्रकार समझाए जाने पर राजा पृथु ने इन्द्र को क्षमा कर दिया और अन्य यज्ञों का आग्रह छोड़ दिया। भगवान ने उनके निन्यानवे यज्ञों से ही संतुष्ट होकर उन्हें दर्शन तथा आशीर्वाद दिया। 'वर मांगने' की बात पर महाराज पृथु ने उनसे केवल उनकी अनन्य भक्ति ही मांगी।'

'बाद में अनन्तकाल तक जीवित रहते हुए महाराज पृथु ने यश, कीर्ति, पुण्य आदि बहुलता से संचित किए और सनकादि ऋषियों द्वारा आत्मतत्व का उपदेश सुनकर, अन्ततः अपने पुत्रों को राज्य सौंपकर उन्होंने संन्यास लिया और प्रभु स्मरण करते हुए अपनी पत्नी अर्चि के साथ भगवान के परमधाम को प्राप्त हुए। हे विदुर! राजा पृथु का यह चरित्र परम पावन है। इसे नियमित श्रद्धापूर्वक एकाग्रता के साथ पढ़ने वाला या सुनने वाला परमधाम को प्राप्त करता है। सकाम भाव से पढ़ने पर सम्पूर्ण मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। सन्तानहीन को सन्तान, धनहीन को धन तथा ज्ञानहीन को ज्ञान आदि प्राप्त होता है। यश, आयु आदि की वृद्धि तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। आदरपूर्वक तीन बार सुनने या पढ़ने वाले का भी कल्याण होता है।'

मैत्रेय जी ने आगे कहा—'प्रचेताओं के विषय में जो तुम सुनना चाहते थे, उसके लिए तुम्हें आगे पृथुवंश को सुनना होगा। महाराज पृथु के बाद उनका पुत्र विजिताश्व राजा हुआ। अपने छोटे भाइयों से बहुत स्नेह करने के कारण, अलग-अलग दिशाओं

का अधिकार उसने उनको सौंप दिया। (हर्यक्ष को पूर्व, धूम्रकर्श को दक्षिण, वृक को पश्चिम तथा द्रविण को उत्तर)। विजिताश्व को 'अन्तर्धान' भी कहते हैं, क्योंकि इन्द्र से उन्होंने अन्तर्धान होने की शक्ति प्राप्त की थी। शिखण्डिनी नामक पत्नी से उन्होंने तीन पुत्रों—पावक, पवमान और शुचि को जन्म दिया—जो वास्तव में इन्हीं नाम वाले अग्नि थे, वशिष्ठ जी के शाप से उनको इस रूप में जन्म लेना पड़ा था। कालान्तर में वे योगमार्ग से पुनः अग्निरूप हो गए थे। दूसरी नभस्वती नामक पत्नी से विजिताश्व ने हविर्धान नामक पुत्र को उत्पन्न किया था और दयालु होने के कारण, जनता से कर लेना, जुर्माना करना तथा कठोर दण्ड देना आदि कार्य उन्होंने त्याग दिए थे।'

'हर्विधान ने हर्विधानी नामक पत्नी से बर्हिषद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य तथा जितव्रत नामक छह पुत्र उत्पन्न किए। बर्हिषद कर्मकांड व योगाभ्यास में कुशल था। उसने विभिन्न स्थानों पर अगणित यज्ञ किए। इसी कारण इन्हें 'प्राचीन बर्हि' भी कहा गया। इन्होंने समुद्रपुत्री, शतद्रुति से विवाह किया, जिस पर विवाह मण्डप में स्वयं अग्निदेव भी मोहित हो गए थे। कालान्तर में अपने सौंदर्य व यौवन से समस्त दिशाओं को रिझाने वाली शतद्रुति ने अत्यंत धार्मिक और एक समान आचरण करने वाले दस पुत्रों को उत्पन्न किया, जो प्रचेतागण कहलाए (एक-सा आचरण होने से सबका नाम भी एक ही रहा)। उन्होंने समुद्र में ही रह कर दस हजार वर्षों तक विष्णु जी की आराधना की। जैसा कि मार्ग में उन्हें शिवजी ने उपदेश दिया था।'

'विदुर जी द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर मैत्रेय जी ने शिवजी द्वारा प्रचेतागण को उपदेश देने का प्रसंग भी सुनाते हुए कहा—'भगवान वासुदेव की शरण लेने वाला मुझे सदा ही प्रिय है। अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले भी अगले जन्म में ब्रह्मा को प्राप्त होते हैं। इससे अधिक पुण्य वाला मुझको और भगवान का अनन्य भक्त अंततः विष्णु भगवान के परमपद को प्राप्त होते हैं। अतः मैं तुमको एक अत्यंत पवित्र और कल्याण कारक स्तोत्र सुनाता हूं, तुम इसी का जाप करना। तुम भगवत् प्रिय होने से मुझे अति प्रिय हो।'

'योगादेश-स्तोत्र (रुद्रगीत)'

भगवान शिव द्वारा प्रचेताओं को बताया जाने वाला विष्णु जी का मूल स्तोत्र—

जितं त आत्मविद्धुर्यस्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे।
भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः।।
नमः पंकजानाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने।
वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे।।
संकर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च।

नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्यम्नायान्तरात्मने।।
नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने।
नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने।।
स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः।
नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे।।
नमः ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे।
तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने।।
सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे।
नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलाय च।।
अर्थलिंगाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने।
नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे।।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे।
नमोऽधर्मविपाकाय मृत्युवे दुःखदाय च।।
नमस्त आशिषामीश मनवे कारणात्मने।
नमो धर्माय बृहते कृष्णाया कुण्ठमेधसे।।
पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च।।
शक्तित्रसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने।
चेताकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये।।
दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम्।
रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणान्जनम्।।
स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसंग्रहम्।
चार्वायतचतुर्बाहुं सुजाप्तरुचिराननम्।।
पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रु सुनासिकम्।
सुद्विजं सुकपोलस्यं समकर्णविभूषणम्।।
प्रीतिंप्रहसितापाङ्गमलकैरूपशोभितम्।
लसत्पंकज किञ्जल्कयुकूलं मृष्टकुण्डलम्।।
स्फुरत्किरीटवल यहारनुपूर मेखलम्।
शंख चक्र गदा पद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत्।।
सिंहस्कन्धत्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम्।
श्रियानपायिन्या क्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत्।।
पूररेचक संविग्नवलिवल्गुदलीम्भ्।
प्रति संक्राभयद्विश्वं नाभ्याऽऽवर्त गंभीरतया।।
श्यामश्रोण्यधि रोचिष्णु दूकूलस्वर्णमेखलम्।

समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरूनिम्नजानुसुदर्शनम् ।।
पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरंघ विधुन्वता।
प्रदर्थय स्वीयमयास्तसाध्वसं पदं गुरो मार्ग गुरुस्त मोजुषाम्।
एतद्रूप मनुध्येयमात्म शुद्धिमभीप्सताम् ।
यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ।।
भवान् भक्तिमता लभ्यो दुलर्भः सर्वदेहिनाम्।
स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ।।
तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया।
एकान्तभक्तया को वान्छेत्पादमूलं विना बहिः ।।
यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते।
विश्वं विध्वंसयन् वीर्यशौर्य विस्फूर्जितभ्रुवा ।।
क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्ग नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ।।
अथानघाङ्घ्रेस्तय कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिः स्नानविधूतपाप्मनाम्।
भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्सङ्गमोऽनुग्रह एष नस्तव ।।
न यस्य चित्तं बहिरर्थ विभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत्।
यद्भक्ति योगानुगृहीत मञ्जसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ।।
यत्रेदंव्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत्।
तत त्वं ब्रह्म परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ।।
यो मायदेहं पुरुरुपयासृजद् बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः।
यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदु : स्थया तमात्मतन्त्रं भगवन् प्रतीमहि ।।
क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये।
भूतेन्द्रियान्तः करणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ।।
त्वमेक आद्यः पुरुष : सुप्तशक्तिस्तया रजः सत्त्वतमो विभिद्यते।
महानहं रवं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगुणा इदं यतः ।।
सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चुतुर्विधं पुरमात्मांशकेन।
अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमंतर्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ।।
स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ।।
भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ।।
प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम्।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ।।
कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमानव्ययमान केतनः।
विशंकयास्मद्गुरुर्श्चति स्मयद् विनोपयत्तिं मनवश्चतुर्दश ।।

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन परमात्मन् विपश्चिताम्।
विश्वं रूद्रभयध्वजस्तमकुतश्चिद्भया गतिः।।

शिवजी ने इस स्तोत्र के विषय में स्वयं कहा है—

य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम्।
अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ।

(जो कोई मेरे इस गीत द्वारा श्रद्धापूर्वक भगवान की आराधना करेगा, वह हरि भगवान की आराधना अधिक कठिन होने के बाद भी सुगमता से उनकी प्रसन्नता को प्राप्त कर लेगा।)

और स्वयं भगवान विष्णु कहते हैं—

ये तु मां रूद्रगीतेन सायं प्रातः समांहिताः।
स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम्।।

(जो कोई एकाग्रचित होकर सुबह व शाम रूद्रगीत से मेरी स्तुति करेगा मैं अभीष्ट वर तथा शुद्ध बुद्धि प्रदान करूंगा।)

भगवान शिव ने कहा—'सदा अपने निरतिशय परमानन्द स्वरूप में ही स्थित, अपने उत्कर्ष द्वारा आत्मज्ञानियों का कल्याण करने वाले सर्वात्मक आत्मस्वरूप आपको नमस्कार है। आप ही पद्मनाभ, भूतसूक्ष्म, एकरस, शान्त व स्वयं प्रकाश वसुदेव हैं। सूक्ष्म, अनंत, संकर्षण प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, सूर्य, अग्नि, सोम, वायु, आकाश, सब आप ही है। आप ही कृष्ण, धर्म, ज्ञान, रूद्र, ब्रह्म व इन्द्र है। चारों प्रकार की वाणी आप ही के कारण अभिव्यक्त होती है—आपको प्रणाम है। आपका गदापाणि व चक्र पाणि, शंख व पद्म से युक्त चतुर्भूज रूप वर्षाकालीन मेघ की भांति श्याम, किन्तु समस्त सौंदर्यो का सार सर्वस्व व इन्द्रियों को परम तृप्ति देने वाला है। त्रिवलीयुक्त उदर, सिंह के समान विशाल कन्धे, कमल नयन, सुघड़ नाक, भंवर के समान गहन नाभि, प्रलम्ब बाहु, घुंघराले केश तथा अभयदायक रूप अज्ञान तम को तत्काल हरने वाला है। हे पीताम्बर वस्त्र धारी भगवान विष्णु आप ही समस्त जगत् के गुरु हैं।

'आपकी भक्ति अभय व मुक्तिदायक है। आपके चरण पापहारी हैं, जिनसे निकलने वाली सुरसरिता लोगों के मानसिक व शारीरिक पापों को धो डालती है। जिस साधक का चित्त योग या भक्ति द्वारा शुद्ध व संयमित होकर न तो बाह्य विषयों में भटकता है, न ही अज्ञान गुहा रूप प्रकृति (माया) में लीन होता है, वह अनायास ही आपके दर्शन पा जाता है। समस्त जगत के आश्रय अनन्त, असीम, विभु और परमप्रकाशमय आप ही प्रभु नारायण हैं। आप ही जगतोत्पादक और जगत्संहारक हैं। आप ही जगतपालक व जगत्रक्षक हैं। आप ही की माया से अविद्या का मूल भेद बुद्धि उत्पन्न होती है और आप की ही कृपा से मुक्ति का कारण ज्ञान उत्पन्न होता है। आप परम स्वतन्त्र व इन्द्रिय जीत हैं। ब्रह्मा और चौदह मनु ने बिना विचार

किए ही आप के लिए श्रद्धा की है। रूद्र महादेव भी समस्त देवों सहित आप ही को भजते हैं। अतः हम लोगों के लिए आप ही सर्वथा भयशून्य आश्रय हैं।

'भगवान शिव ने आगे कहा—'राजकुमारों मैंने तुम को यह परममंगलकारी 'योगादेश' नामक स्तोत्र सुनाया है। यही स्तोत्र पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने अपने भृगु आदि पुत्रों को सुनाया था। यह अज्ञान निवारक व मोक्षदायक है। इसके श्रद्धा सहित पाठ से भगवान विष्णु से कुछ भी मनोरथ पूर्ण किया जा सकता है। ऊषाकाल में इसे सुनना, सुनाना या पढ़ना चाहिए। यह अभीष्टफलों की प्राप्ति करने वाला है, तुम लोग श्रीहरि में चित्त को केन्द्रित कर श्रद्धा सहित इसी स्तोत्र का जप करो। तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा और परम कल्याण होगा।'

'मैत्रेय जी ने आगे कहा—'तब प्रचेताओं ने दस हजार वर्षों तक समुद्र में ही रहते हुए इस स्तोत्र के साथ तप किया। इन्हीं दिनों में कर्मकाण्ड में रमे हुए राजा प्राचीनब्रर्ही के कहने पर आत्मविद्या विशारद नारद ने उनको ज्ञान उपदेश दिया और इस विषय में राजा पुरन्जन का प्राचीन व्याख्यान सुनाया जो मैं तुमको भी सुनाता हूं, सावधान होकर सुनो—

'पूर्वकाल में पुरन्जन नामक यशस्वी राजा था, जिसका अविज्ञात नामक मित्र न समझ में आने वाली चेष्टाएं करता था। पुरन्जन को भोगों की तीव्र लालसा थी। सारा संसार घूमने के बाद भोगने के लिए उसे हिमालय के दक्षिण में स्थित भारत वर्ष में एक नौ द्वारों,वाला सुरम्य, आकर्षक व सुन्दर नगर जंचा। उस नगर के अद्भुत वन में घूमते हुए सौ-सौ नायिकाओं के पति दस सेवकों के साथ आते एक अनिंद्य सुंदरी को देखा। पांच फनों वाला सांप उसका द्वारपाल था। राजा ने उससे उसके विषय में पूछा और अधीर होकर प्रणय निवेदन किया। तब उस सुन्दरी ने बताया—'हमें अपने और अपने उत्पन्न करने वाले के विषय में कुछ भी पता नहीं। बस, यही जानते हैं कि हम यहां रहते हैं। यहां रहने को यह पुरी किसने बनाई है? यह भी हमें पता नहीं है। मेरे सो जाने पर यह सर्प इस पुरी की रक्षा करता है। ये दस पुरुष मेरे सखा हैं और ये नायिकाएं मेरी सखियां। मैं अपने योग्य पति की खोज कर रही थी। आप मुझे पसंद हैं। आप सैंकड़ों वर्षों तक यही निवास करिए, मैं आपको पति के रूप में स्वीकार करती हूं।'

'तब उस पुरी में रहकर पुरन्जन ने 100 वर्ष तक आनन्द भोगा। उस पुरी के नौ द्वारों में से सात ऊपर व दो नीचे थे। राजा अपने मित्र के साथ उन द्वारों से विभिन्न स्थानों पर भ्रमणार्थ जाता था। मगर रानी (उस सुन्दरी) के मोह में ऐसा फंस गया था कि जैसे-जैसे वह कहती या करती वैसे-वैसे ही पुरन्जन किया करता था। नेत्रों के होते हुए भी उस नगरी के दो अन्धे नागरिकों निर्वाक् और पेशस्कृत की सहायता से वह सब कार्य करता था। एक दिन राजा अपने ग्यारहवें सेनापति

व पांच घोड़ों के रथ पर शिकार को गया और मनमाना शिकार कर श्रमित होकर वापस लौटा तो पुरी में रानी को न पाया। वह बाद में बिना बिछौने के पृथ्वी पर पड़ी मिली और बहुत नखरे दिखाकर मानी। पुरन्जन ने उससे 1100 पुत्र व सौ पुत्रियां उत्पन्न कीं और आधी उम्र उसके साथ रमण में काट दी। इधर चण्डवर्ग नामक गंधर्व तीन सौ साठ गंधर्वों के साथ पुरी को लूटने आया, उसके साथ कृष्ण व शुक्लवर्ण की उतनी ही गंधर्वियां भी थीं। द्वारपाल सांप ने उनको सौ वर्षों तक बाहर ही रोके रखा, अन्ततः वह क्षीण हो गया, मगर विलास में फंसे—पुरन्जन को यह पता नहीं चला। उधर कालपुत्री 'जरा' जो भाग्यहीनता के कारण 'दुर्भगा' भी कही जाती थी अपने योग्य वर की खोज में भटक रही थी, मगर उसे किसी ने स्वीकार नहीं किया। एक बार पुरु ने अपने पिता को यौवन देने के लिए उसे स्वेच्छा से वरण किया था। बाद में वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी नारद को कामातुर होकर वरण करने लगी, मगर अस्वीकृत होने पर उसने नारद को श्राप दिया कि वह एक ही स्थान पर अधिक समय तक नहीं टिक सकेंगे। तब नारद की प्रेरणा से उसने यवनराज भय को वरण करना चाहा, मगर भय ने कहा—'मैंने तेरे लिए एक योग्य पति देखा हुआ है। सबका अनिष्ट करने वाली होने के कारण तुझे कोई स्वीकारता नहीं। अतः तू मेरी बहन बनकर मेरे भाई प्रज्वार के साथ बलात्कार से भोग, मैं भी अव्यक्त गति से भयंकर सेना सहित तुम्हारे साथ रहूंगा।'

'तब जरा ऐसा ही करने लगी थी। उसने एक दिन दलबल सहित पुरन्जन की पुरी को घेर लिया और विध्वंस करने लगी। पुरन्जन अत्यंत चिंतित हुआ, पर अत्यधिक भोग से वह दीन हो गया था। प्रज्वार ने उस पुरी में आग लगा दी। तब महाबली यवनराज मय पुरन्जन सहित सबको बांधकर ले जाने लगा। फिर भी पुरन्जन ने अविज्ञात को याद नहीं किया। अन्ततः समाप्त होकर वह अगले जन्म में स्त्री हुआ और विधवा होने पर जब सती होने जा रहा था—तब उसका मित्र अविज्ञात ब्राह्मण वेश में आकर बोला—'मैं तेरा मित्र हूं, भोग लालसा में तू मुझे पूर्व जन्म में छोड़ गया था। एक स्त्री की पुरी में जा बसा था। उसके नौ द्वार ही नौ छिद्र, पांच बगीचे ही पांच विषय, तीन परकोटे ही जल, तेज व अन्न थे। पांच कर्मेन्द्रियां ही पांच बाजार थीं, पंचभूत व बुद्धि स्वामिनी थी। वह शरीर था। वहां जाकर तुम स्वयं को भूल गए थे। अब तुम स्त्री हो। पहले पुरुष थे, मगर तुम वास्तव में न स्त्री हो न पुरुष—सब माया है। वास्तव में हम दोनों हंस हैं। मैं ईश्वर हूं, तुम जीव हो। हम दोनों एक हैं, मगर भोग लालसा तुम्हें खींच कर अपने चपेट में ले जाती है और माया के कारण तुम बुद्धि के संग में कर्मजाल में फंस जाते हो। पंच वायु रूपी पांच फन वाला सांप, जब तक पुरी (शरीर) की रक्षा करता है, तभी तक तुम वहां भोग करते हो। अन्ततः जरा, काल व भय सब कुछ लील लेते हैं। बुद्धि या अविद्या ही

जल के अन्दर अपने वाहन गरुड़ पर बैठे भगवान विष्णु प्रचेताओं को दर्शन देते हुए

उस पुरी की स्वामिनी तथा दस सेवक इन्द्रियां हैं। मन ग्यारहवां सेनापति है। हाथ व पांव ही दो अन्धे नागरिक हैं, ज्ञानेन्द्रियां पांच घोड़े व देह रथ हैं। चण्ड वेग गंधर्व संवत्सर हैं। तीन सौ साठ गंधर्व व काली गोरी गंधर्वी दिन-रात हैं, जो आयु को हरते हैं।'

मैत्रेय जी बोले—'इस आख्यान द्वारा नारद जी ने प्राचीन बर्ही को ज्ञान दिया। इस आत्मज्ञान के प्रसंग को सुनने वाला बन्धन मुक्त व पापमुक्त होकर कल्याण मार्ग को अग्रसर होता है।'

निश्चिय ही यह आख्यान सारगर्भित और तत्व ज्ञान का प्रकाश करने वाला है, जो आपने कृपापूर्वक मुझसे कहा। कृपया प्रचेताओं के विषय में भी आगे कहिए, उन्होंने तप द्वारा क्या-क्या सिद्धियां पाई हैं?' विदुर जी ने पूछा।

मैत्रेय जी बोले—'हे विदुर! दस हजार वर्षों तक समुद्र में ही रहते हुए। शिव द्वारा उपदेशित विष्णु के योगादेश स्तोत्र का जप करके प्रचेताओं ने श्रीहरि को प्रसन्न किया और उन्होंने गरुड़ पर आसीन होकर प्रचेताओं को दर्शन दिए और कहा—जो लोग प्रातः व सायं (योगादेश) द्वारा मेरी स्तुति करेंगे, उन्हें मैं अभीष्ट वर शुद्ध बुद्धि प्रदान करूंगा। तुम्हारी कीर्ति समस्त लोकों में फैलेगी और ब्रह्मा के समान तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा। जो अपनी सन्तानों से इस लोक को भर देगा। वृक्षों द्वारा पालित कण्डु ऋषि की प्रम्लोचा अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न पुत्री (विष्णु पुराण में इसका नाम 'मारिषा' बताया है) तुम्हारी पत्नी होगी। दस लाख वर्ष तक पृथ्वी पर सुख भोगने के पश्चात् तुम सभी मेरे परमधाम को प्राप्त होगे।' कालान्तर में ऐसा ही हुआ और ब्रह्मा जी के पुत्र दक्ष ने शिव अवज्ञा के कारण अपना पूर्व शरीर त्याग कर मारिषा के गर्भ से जन्म लिया। कर्मकुशल होने से उनका नाम 'दक्ष' हुआ। अन्त में नारद जी से उपदेशवार्ता के बाद प्रचेताओं ने परमधाम प्राप्त किया।''

श्री शुकदेव बोले—''इस प्रकार मैत्रेय जी से सब सुनकर विदुर जी उन्हें धन्यवाद कर अपने बन्धुओं से मिलने हस्तिनापुर चले गए। हे राजन! यहां तक स्वयम्भुव मनु के पुत्र उत्तानपाद का वंश वर्णन हुआ। अब उनके दूसरे पुत्र प्रियव्रत के वंश का वर्णन भी करूंगा। जो पुरुष भगवान के शरणागत राजाओं का यह पवित्र प्रसंग सुनेगा उसे आयु, धन, यश, क्षेम, ऐश्वर्य तथा सद्गति की प्राप्ति होगी।''

❑❑

पंचम स्कन्ध

राजा परीक्षित बोले—"हे महामुने! महाराज प्रियव्रत तो बहुत भगवद्भक्त और स्वयं ही में मस्त रहने वाले थे। उनकी गृहस्थाश्रम में रुचि किस प्रकार हुई? और पुत्रादि में आसक्त होने के बाद, वे सिद्धि किस प्रकार प्राप्त कर पाए? मुझसे सब कहने की कृपा करें?"

तब शुकदेव जी बोले—"हे राजन्! नारदजी जी की सेवा व प्रभु कथामृत श्रवण से उन्हें परमार्थ तत्व का बोध हो गया था। अतः प्रपन्चों से बचे रहने के लिए उन्होंने पिता द्वारा विवाह की आज्ञा तथा दिए गए राज्य को स्वीकार नही किया था, परन्तु बाद में ब्रह्मा जी द्वारा समझाए जाने पर वे मान गए थे। तब मनु जी ने प्रियव्रत को सारे भूमण्डल की रक्षा का दायित्व सौंपा। प्रियव्रत सदा भगवान विष्णु ही के स्मरण में रत रहते हुए पृथ्वी पर शासन करने लगे और प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से विवाह करके आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेघातिथि, वीतिहोत्र और कवि नामक दस अग्निसंज्ञक पुत्र और एक ऊर्जस्वती नामक पुत्री उत्पन्न की। इनमें कवि, महावीर और सवन यह तीनों नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे और संन्यासी हुए। दूसरी पत्नी द्वारा प्रियव्रत ने तामस, उत्तम तथा रैवत नामक तीन पुत्र उत्पन्न किए जो कालान्तर में अपने नाम वाले मन्वन्तरों के अधिपति हुए। ग्यारह अर्बुद वर्षों तक राजा प्रियव्रत शासन व भोग करते हुए भी उनमें आसक्त नहीं हुए।'

'एक बार प्रियव्रत ने सोचा कि सूर्य जब पृथ्वी को एक ओर से प्रकाशित करते हैं, तब दूसरी ओर अंधकार हो जाता है। अत: रात को भी दिन बनाने के निश्चय से उन्होंने सूर्य को समान वेग वाले, ज्योतिर्मय रथ से पृथ्वी के पिछले भाग की सात परिक्रमाएं कर डालीं। उनके रथ के पहियों से बनी लीकें सात समुद्र हुईं, जिन्होंने पृथ्वी की सात द्वीपों—(जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक व पुष्कर) में बांट दिया। इनमें से प्रत्येक का परिमाण अपने पहले द्वीप से दुगुना है और ये समुद्र के

बाहरी भाग में पृथ्वी के चारों ओर फैले हैं। सातों समुद्र क्रमशः खारे जल, ईखरस, मदिरा, घी, दूध, मट्ठे तथा मीठे जल से भरे हैं। प्रियव्रत ने बर्हिष्मति के पुत्रों में से शेष सात को इन सातों द्वीपों का पृथक-पृथक शासक बनाया और अपनी पुत्री ऊर्जस्वती का विवाह शुक्राचार्य से किया, जिससे देवयानी नामक पुत्री उत्पन्न हुई।'

'फिर वैराग्य का भाव उत्पन्न होने पर उन्होंने अपना राज्य तथा योग्य अपने अनुमत पुत्रों में बांट दिया और नारद जी द्वारा बताए मार्ग का अनुसरण करते हुए भगवत् लीला का ध्यान करते हुए तपलीन हो गए। अब तुमको प्रियव्रत के पुत्रों का चरित्र सुनाता हूं।'

'आग्नीध्र नामक पुत्र जम्बूद्वीप पर शासन कर रहा था। वह सतपुत्र प्राप्ति की कामना से ब्रह्मा जी की आराधना करने मन्दराचल की एक घाटी में गया। उसके तप की परीक्षा के लिए ब्रह्मा जी ने अपनी सभा की एक गायिका पूर्व चित्ति को भेजा। आग्नीध्र पूर्व चित्ति के रूप जाल में फंस गए और उसका अनुचर बनने का निवेदन करने लगे। अन्ततः पूर्वचित्ति के गर्भ से उन्होंने नौ पुत्र—नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्य, कुरु, भद्राश्व व केतुमाल उत्पन्न किए। फिर पूर्वचित्ति ब्रह्मा जी के पास लौट गई। आग्नीध्र ने जम्बूद्वीप के नौ भाग करके अपने पुत्रों को सौंप दिए। उन नौ पुत्रों ने क्रमशः मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा व देववीति से विवाह किया, जो मेरु की पुत्रियां थीं।'

'आग्नीध्र के पुत्र नाभि ने निःसंतान होने के कारण अपनी पत्नी सहित यज्ञ किया। तब यज्ञपुरुष विष्णु, चतुर्भुज रूप में प्रकट हुए। ऋत्विजों द्वारा स्तुति किए जाने पर भगवान बोले—'आप लोगों ने यह बड़ा दुलर्भ वर मांगा कि नाभि के मेरे समान पुत्र हो, तथापि ब्राह्मणों का वचन मिथ्या नहीं किया जा सकता, मेरे समान और कोई नहीं है, अतः मैं ही उनके यहां अवतरित होऊंगा। तदनन्तर ये वरदानानुसार मेरुदेवी के गर्भ से 'ऋषभ' के नाम से अवतरित हुए। एक बार इन्द्र ने ईर्ष्यावश उनके राज्य में वर्षा नहीं की, तब ऋषभ ने अपनी योगमाया के प्रभाव से वर्षा करवाई। प्रजा ऋषभ को चाहने लगी। प्रजा का ऋषभदेव के प्रति अनुराग को देखकर और ऋषभ को भी हर प्रकार से अद्वितीय देख कर नाभि ने ऋषभ को राज्य सौंपकर सपत्नीक संन्यास ले लिया और बंद्रिकाश्रम पर तपलीन होकर मोक्ष प्राप्त किया।'

'राजा ऋषभदेव ने अपने देश अजनाभखण्ड का धर्मपूर्वक पालन करते हुए इन्द्र की दी हुई पुत्री जयन्ती से विवाह किया तथा श्रेष्ठगुण वाले सौ पुत्र उत्पन्न किए, जिनमें सबसे बड़े महायोगी पुत्र भरत के नाम पर अजनाभखण्ड का नाम 'भारत वर्ष' पड़ गया।'

'हे राजन! भरत से छोटे भाइयों में जो नौ बड़े और श्रेष्ठ थे उनके नाम क्रमशः

कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक, विदर्भ तथा कीकट थे। इनसे भी छोटे भाइयों में--कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्लायन, आविहोत्र, द्रुमिल, चमस व करभाजन यह नौ बड़े भगवत् भक्त थे—इनके बारे में अगले स्कन्ध में कहूंगा। शेष इक्यासी पुत्र निरन्तर यज्ञ व पुण्यकर्म आदि करते रहने से शुद्ध होकर ब्राह्मण हो गए। ऋषभदेव ने सभी प्रकार के सौ-सौ यज्ञ किए तथा—धर्म, ज्ञान, मोक्ष आदि के रहस्यों का प्रजा व ब्राह्मणों में बहुत उपदेश किया। बाद में अपने पुत्रों को भी ब्राह्मणों की सेवा का उपदेश देकर स्वयं अवधूतवृति ग्रहण करके दिगम्बर हो गए। उन्होंने मौन धारण कर इन्द्रियों को संयमित किया और ईश्वर में ध्यान लगाकर पृथ्वी पर विचरण करते रहें। उनकी देह सृष्टि व सौंदर्य देखकर स्त्री का मन चंचल हो जाता था। वे बीभत्सवृत्ति धारण कर अजगर की भांति रहने लगे। वे लेटे-लेटे ही खाते-पीते, मल-मूत्र त्यागते और अपने शरीर को लोट लगाकर उसमें सान लेंते। तो भी उनके शरीर से दस योजन तक फैल जाने वाली सुगन्ध ही आती थी।'

'फिर वे गाय के समान खड़े-खड़े ही सब कार्य कलाप करने लगे। इस प्रकार परमहंसों का त्याग व विरक्ति की शिक्षा व समता का आदर्श देने के लिए उन्होंने विभिन्न योग चर्चाओं को धारण किया। तब उनके पास बहुत-सी सिद्धियां अनायास ही चली आईं, जिन्हें ऋषभदेव ने स्वीकार नहीं किया और भेद-बुद्धि को त्यागकर सानन्द रहने लगे।''

राजा परीक्षित ने पूछा—''ऋषभदेव ने सिद्धियों को स्वीकार क्यों नहीं किया प्रभो! उनके जैसे एकरस ज्ञानी के लिए, वे किस प्रकार क्लेश का कारण हो सकती थीं।''

तब शुकदेव हंसकर बोले—''हे राजन्! तुम्हारा तर्क यद्यपि उचित ही है, किन्तु जिस प्रकार चतुर शिकारी अपने पकड़े गए हिरण पर विश्वास नही करते, उसी प्रकार बुद्धिमान लोग भी इस चंचलमन का भरोसा नहीं करते। अतः ऋषभदेव जी ने ठीक ही किया। बाद में उन्होंने योग प्रणाली से देह त्यागा, तब कुटकाचल के वन में प्रबल दावानल ने ऋषभदेव के पार्थिक शरीर को भस्म कर दिया।'

'मनुष्यों के पापों का हरण करने वाला, परम शान्तिदायक, श्रद्धा व एकाग्रता से सुनने पर भक्ति को उत्पन्न करने वाला यह ऋषभदेव का चरित्र अत्यंत श्रेष्ठ है। रजोगुण प्रधान लोगों को मोक्ष मार्ग की शिक्षा देने के लिए ऋषभदेव ने अवतार लिया था, किन्तु कठिन युग में अधर्म की वृद्धि होने पर कोंक, वेंक और कुटक देश के लोग ऋषभ जी के वृत्तांत को सुनकर उसे ग्रहण कर पाखण्ड़ करेंगे और नरक में गिरेंगे। सब प्रकार की तृष्णाओं से मुक्त समरस ऋषभदेव को मेरा प्रणाम है।''

शुकदेव जी ने आगे कहा—''ऋषभ जी के ज्येष्ठ पुत्र भरत ने विश्वरूप की

पुत्री पन्यजनी से विवाह किया और सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण व धूम्रकेतु,—यह पांच पुत्र उत्पन्न किए। भरत ने कर्मों द्वारा शुद्ध अंतःकरण को प्राप्त कर ईश्वर की अनन्य भक्ति प्राप्त की व एक करोड़ वर्ष तक राज्यभोग कर अन्त में उसे पुत्रों में विभाजित करके हरिहर क्षेत्र में गण्डकी नदी के तट पर भगवत आराधना करते हुए निवास करने लगे।'

'हे राजन! एक दिन जब वे नदी किनारे बैठे प्रणव जाप कर रहे थे, तब पानी पीने आई एक गर्भिणी हिरणी ने सिंह की दहाड़ से भय खाकर नदी फ्लांगने का प्रयास किया। अत्यंत भय व उछलने के लिए अकस्मात् बल लगाने से प्रसव हो गया और वह नदी में जा गिरी। हिरणी भी अधिक भय, कष्ट व दुःख से मर गई। भरत दया करके उस हिरणी के बच्चे की रक्षाकर अपने आश्रम पर उसे पालने लगे। शनैः शनैः उनके मन में आसक्ति उत्पन्न हुई। वे मृगशावक के मोह से बंध गए। इस प्रकार सब कुछ त्याग कर तपोनिष्ठ हुए राजा भरत अन्त समय में मृगशावक में आसक्त रह कर प्राण त्यागने के कारण अगले जन्म में हिरण ही हुए, किन्तु किए गए तप तथा प्रभु आराधना के कारण उनकी पूर्व जन्म की स्मृति नष्ट नहीं हुई। अतः वे सावधान होकर आसक्ति रहित होने का प्रयत्न करते रहे। अपनी माता को त्याग कर वे पुलह तथा पुलस्त्य ऋषियों के आश्रम पर चले आए, वहां धर्मचर्चा का श्रवण करते हुए, कम आहार करते हुए तथा मन को ईश्वर में स्थिर रखते हुए उन्होंने अपना जन्म पूर्ण किया तथा गण्डकी नदी में आधा शरीर डुबोकर अन्त में प्राण त्यागे।'

'हे परीक्षित! इस प्रकार ईश्वर ही में ध्यान रहने, इन्द्रियों पर संयम करने, ऋषियों से सत्संग करने तथा गंडकी नदी के अन्त समय में स्पर्श के कारण भरत अगले जन्म में एक ब्राह्मण के पुत्र हो गए और उनको पूर्व दोनों जन्मों की स्मृति बनी रही। स्मृति के कारण वे आसक्ति से बचने का प्रयास करते हुए सदैव ईश्वर ही में ध्यान लगा रहने के कारण मौन व आत्म विस्मृत से रहने लगे, जिससे सब उन्हें पागल व मूर्ख समझने लगे (अतः उनको 'जड़-भरत' भी कहा गया)। पिता-माता के स्वर्गवास के बाद उनके भाई उन्हें जो भी रूखा-सूखा दे देते वे उसे ही खा लेते, न देते तो न खाते, कुछ भी पहन लेते और कैसे भी रह लेते। शृंगार, लोकाचार आदि की उन्होंने कभी परवाह नहीं की। एक बार डाकू उन्हें बलि के लिए पकड़ ले गए। जब वे चण्डिका के मन्दिर में उनकी बली देना चाहते थे, तब मूर्ति फोड़ कर स्वयं भद्रकाली वहां प्रकट हुईं और उन्होंने भरत की रक्षा की।''

शुकदेव जी आगे बोले—''एक बार सिन्धु सौवीर राष्ट्र का राजा रहूगण पालकी में बैठकर कहीं जा रहा था। इक्षुमती नदी के तट पर कहारों को एक व्यक्ति की आवश्यकता पड़ी। तब उनकी नजर जड़ भरत पर पड़ी और उन्होंने बलात् उसे अपने साथ पालकी

एक डाकू से भरत की रक्षा करती हुई मां भद्रकाली

ढोने पर लगा दिया। किसी जीव पर पैर न पड़ जाए इस प्रयास में जड़ भरत की चाल ने और कहारों से मेल न खाया। तब राजा ने क्रुद्ध होकर कहारों को ठीक से चलने की चेतावनी दी। कहारों ने जड़ भरत की शिकायत की तो राजा ने उन्हें डांटते हुए कहा—'अरे! सांड की भांति मजबूत होते हुए भी तुम ठीक से पलकी को क्यों नहीं उठा रहे? अब भी ठीक से न चले तो मैं तुमकों दण्ड दूंगा? किन्तु इसके बाद भी जड़ भरत की चाल में सुधार न हुआ तो राजा अत्यंत क्रुद्ध होकर अनाप-शनाप बोलते हुए उनको दण्ड देने को उद्धत हुआ। तब जड़ भरत इस प्रकार बोले—

'राजन्! तुम ठीक ही कहते हो। भार नाम की कोई वस्तु है—तो वह ढोने वाले के लिए है। मार्ग है तो चलने वाले के लिए है। मोटापा है तो शरीर के लिए है, आत्मा के लिए नहीं। स्थूलता, कृथता, भार, भूख, प्यास, निद्रा, बुढ़ापा, अभिमान, क्रोध, इच्छा आदि सब देह के धर्म हैं। 'देहाभिमानी' लोगों में वे रहते हैं, मगर मुझमें नहीं हैं। तुम राजा हो, मैं प्रजा। ये कहार हैं, ये पालकी—इस प्रकार की भेद बुद्धि व्यवहार के लिए ही है, तत्वतः इसका कोई औचित्य नहीं। कौन सेवक है, कौन स्वामी? सब बातें बेमानी हैं। राजन! यदि मैं सजग व बुद्धिमान हूं, तब तो मुझे दण्ड देने की आवश्यकता ही क्या? अगर जड़ और प्रमादी हूं तो दण्ड देने का लाभ ही क्या? वह गरम तवे पर पानी की बूंदों की तरह प्रभावहीन होगा।'

'यह सुनकर रहूगण का राजमद दूर हो गया और वह पालकी से उतरकर जड़ भरत के चरणों में गिर पड़ा। बोला—'हे प्रभो! अपने ज्ञान व तेज को छिपा कर मूर्खों की तरह घूमने वाले आप कौन हैं? आप दत्तात्रेय हैं या कपिल मुनि हैं? कृपापूवर्क मेरा अपराध क्षमा करते हुए मुझे अपना परिचय दें और मेरी शंका का निवारण करें, क्योंकि मैं व्यावहारिक मार्ग को ही सत्य समझता हूं। देह को अनुभव होने वाले वेग, कष्ट अथवा प्रसन्नताएं आत्मा को भी होती हैं। तवे पर आटे की बरलोई से रोटी बनाते समय, ऊष्मा से बटलोई के भीतर का जल भी तो वाष्प बन जाता है। फिर भला बाहर हुए कार्य का अन्दर प्रभाव क्यों न होगा?'

तब जड़ भरत ने कहा—'इन सब तर्कों का आधार अर्ध ज्ञान है। मन ही के कारण यह सब माया होती है, जिस प्रकार घी व प्रकाश के बीच बत्ती माध्यम होती है। जब तक बत्ती रहती है, तभी तक घी बत्ती के सिरे तक आकर दीपक का कार्य करती है, किन्तु घी से भीगी उस बत्ती के न रहने पर दीपक में घी होते हुए भी प्रकाश नहीं होता। उसी प्रकार मन भी माया और ब्रह्म के बीच पुल का कार्य करता है, किन्तु जो आत्मा है वह तो मात्र साक्षी भाव से मन इन्द्रियों के समस्त व्यवहारों को देखता है, उनको भोगता नहीं है। समस्त भावों का कारण यह मन ही अत्यंत मायावी है। हरि चरणोपासना के अस्त्र ही से इस अति बलवान शत्रु मन को जीता

जा सकता है। देखो—प्रथम तो यह पृथ्वी का विकार है। फिर पृथ्वी पर चलने वाले देह विकार हैं। यहां इन कहारों की देह के एक विशिष्ट भाग कंधों पर रखी पालकी भी एक विकार है। पालकी में बैठा तुम्हारा देह भी विकार है। कहारों को यह सोचना कि वे कहार हैं, तुम राजा और तुम्हारा यह सोचना होगा कि तुम राजा हो ये कहार—ये सब हमारे भीतर स्थित मन का विकार है। वास्तव में तुम और कहार हर दृष्टि से समान हो और देह नष्ट होने पर इस पृथ्वी में मिल जाओगे। पृथ्वी स्वयं एक विकार है, क्योंकि यह तो अपने उपादान कारण परमाणुओं में लीन हो जाती है। हर सत्ता की तीन अवस्थाएं काल की दृष्टि से है—पूर्व, मध्य तथा उत्तर या भूत, वर्तमान और भविष्य। इनमें बीच की ही अवस्था व्यक्त है, शेष दोनों अव्यक्त! इस व्यक्त वर्तमान में भी सभी कुछ जाना नहीं जा सकता। ऐसे में किसी सत्ता के विषय में प्राप्त अधूरे व अपर्याप्त ज्ञान के आधार पर उनके विषय में क्या निर्णय लिया जा सकता है? इस अपूर्ण ज्ञान को ही सम्पूर्ण समझना माया है, जबकि सम्पूर्णता कालातीत होकर प्राप्त हो सकती है।' (जड़ भरत ने यह भवाटवी के उद्धरण से समझाया है। हमने इसे और सरल व संक्षिप्त करके निम्न प्रकार से समझाया है)

'तुम जिसे पालकी कहते हो, वह वास्तव में काष्ठ है। तत्वदर्शी जानता है कि पालकी कुछ वर्ष पहले काष्ठ थी, इस रूप में नहीं थी। कुछ काल बाद भी यह इस रूप में नहीं रहकर मात्र काष्ठ ही रह जाएगी। बीच के कुछ काल में ही यह पालकी के रूप में व्यक्त है। बढ़ई चाहता तो इसे पालकी के स्थान पर पलंग, कुर्सी आदि कुछ अन्य रूप भी दे सकता था। ऐसे में पालकी का रूप मात्र एक छल ही है और पालकी को या अन्य लोगों की पालकी के 'पालकीपन' पर गर्व या अहंकार करना सर्वथा मूर्खता ही है। इसी प्रकार तुम भी अब से पहले 'तुम' नही थे और बाद में भी 'तुम' नहीं रहोगे। कुछ काल के लिए ही तुम रहूगण नाम से व्यक्त हो। उसमें भी कुछ और कम काल के लिए तुम 'राजा' पद से व्यक्त हो—अतः राजा होने का अहं तुमको नहीं करना चाहिए—और भी सुनो—पूर्व जन्म में मैं स्वयं भरत नामक एक राजा था, किन्तु अगले जन्म में आसक्ति व मोह के बंधन के कारण मुझे निरीह मृग बनना पड़ा। उस रूप में ऋषियों का सत्संग करने व इन्द्रियों का निग्रह करने से आज मैं एक ब्राह्मण की योनि में जन्मा हूं। ऐसे में मैं स्वयं को ब्राह्मण कहूं, क्षत्रिय कहूं, रंक कहूं, राजा कहूं, मनुष्य कहूं या पशु कहूं? और क्या होने का गर्व करूं? विरक्ति व सम्भाव द्वारा अपने अज्ञान व मोह के बंधन काटकर अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करूं यही उचित है। यही तुमको भी करना चाहिए।''

शुकदेव आगे बोले—''यह सुनकर रहूगण का अज्ञान नष्ट हो गया और देहात्मक भेद बुद्धि नष्ट हो गई। इस प्रकार अपना अपमान करने वाले राजा का

भी जड़ भरत ने आत्मोपदेश कर उपकार किया। राजा भरत का यह चित्र कल्याणकारी, यश, आयु व धन की वृद्धि करने वाला, सर्वकामनाओं की सिद्धि व मोक्ष को देने वाला है। अब भरत वंश का वर्णन करता हूं।'

'भरत के पुत्र सुमति को वृद्धसेना नामक पत्नी से देवताजित नामक पुत्र हुआ। देवताजित का पुत्र देवद्युम्न, पौत्र परमेष्ठी और प्रपौत्र प्रतीह हुआ। प्रतीह की माता सुवर्चला, मातामही धेनुमती और प्रमाता मही असुरी थी। प्रतीह के प्रतिहर्ता और उद्गाता नामक तीन पुत्र हुए। प्रतिहर्ता ने स्तुति के गर्भ से अज व भूभा नामक पुत्र हुए। भूभा के ऋषिकुल्या से उद्गीथ, उद्गीथ के देवकुल्या से प्रस्ताव, प्रस्ताव के नियुत्सा से विभु, विभु के रति से पृथुषेण, पृथुषेण के आकूति से नक्त तथा नक्त के द्रुति के गर्भ से गय नामक पुत्र हुआ। गय ने निष्काम भाव से धर्म पालन तथा महापुरुषों की चरण सेवा से भक्ति योग प्राप्त किया। श्रद्धा, मैत्री, दया आदि दक्षकन्याओं ने गंगा आदि नदियों सहित प्रसन्नता से धर्मरक्षक महाराज गय का अभिषेक किया था और वसुन्धरा ने उनके गुणों पर रीझ कर प्रजा को रत्न आदि अभीष्ट पदार्थ दिए थे। गय के यज्ञ में स्वयं भगवान विष्णु तक तृप्त हुए थे। अतः उनकी समता कोई कैसे कर सकता है?'

'महाराज गय ने गयन्ती के गर्भ से चित्ररथ, सुगति तथा अवरोधन—ये तीन पुत्र उत्पन्न किए। चित्ररथ की पत्नी ऊर्णा हुई और उनके पुत्र व पुत्रवधुओं के क्रमशः होने वाले क्रम इस प्रकार हैं—सम्राट व उत्कला, मरीचि व बिन्दुमती, बिन्दुमान व सरधा, मधु व सुमना, वीरव्रत और भोजा। भोजा व वीरव्रत के दो पुत्र मन्थु व प्रमन्थु हुए। मन्थु के सत्या के गर्भ से यौवन, यौवन के इषणा द्वारा त्वष्टा, त्वष्टा के विरोचना के गर्भ से विरज, विरज के विषूची के उदर से शतजित् आदि सौ पुत्र व एक कन्या उत्पन्न हुए। विरज ने प्रियव्रत वंश के अन्त में पैदा होकर भी प्रियव्रत वंश के यश में चार चांद लगा दिए थे। इस प्रकार आग्नीध्र, ऋषभदेव, भरत, गय तथा महाराज विरज जैसे अनेकों महान चरित्र प्रियव्रत वंश की शोभा बढ़ाते हैं।"

तब परीक्षित ने कहा—"हे महामुने! आपने कृपापूर्वक भूमण्डल का विस्तार बताया और वंशावली कही। प्रभो मैं भूमण्डल के सातों द्वीपों का परिमाण व लक्षण सहित समस्त विवरण भी सुनना चाहता हूं।"

शुकदेव जी बोले—"हे राजन! प्रभुमाया इतनी विस्तृत है कि अनेक जन्मों में भी इसे समूचा नहीं कहा जा सकता। अतः प्रमुख विशेषताओं का ही विवरण तुम्हें सुनाता हूं। इस भुवनकोश, जिसमें हम स्थित हैं—का सबसे भीतरी कोश यह जम्बू द्वीप है, जो कमलपत्र के समान गोल व एक लाख योजन विस्तार वाला है। इसमें नौ हजार योजन के निजी विस्तार वाले नौ खण्ड/वर्ष हैं, जो आठ पर्वतों से विभाजित

हैं। इसके बीच में दसवां वर्ष इलावृत नाम का है, जिसके मध्य में कुलपर्वतों का राजा मेरुपर्वत है। इस भुवनकोश की भूमंडलीय कमल कर्णिका के समान यह मेरुपर्वत स्वर्णमय है तथा एक लाख योजन ऊंचा है। (16 हजार योजन पृथ्वी के नीचे व 84 हजार योजन ऊपर) शिखर पर 32 तथा तलेटी में 16 हजार योजन इसका विस्तार है। इलावृत वर्ष के उत्तर में—नील, श्वेत व शृंगवान नाम के पर्वत -रम्यक, हिरण्मय और कुरु नामक वर्षों की सीमा बांधते हैं। इनमें से प्रत्येक पर्वत की चौड़ाई दो हजार योजन तथा फैलावट/लम्बाई में पहले की अपेक्षा पिछला क्रमशः दशमांश से कुछ अधिक कम है।'

'इलावृत के दक्षिण में निषध, हेमकूट व हिमालय नामक तीन पर्वत हैं, जो पूर्व से पश्चिम तक खारे पानी के समुद्र तक फैले हैं। दस-दस हजार योजन ऊंचे ये पर्वत क्रमशः हरिवर्ष, किम्पुरुष वर्ष तथा भारत वर्ष की सीमा विभाजित करते हैं। इलावृत के पूर्व में और पश्चिम में नील तथा निषध पर्वत तक फैली हुई दो-दो हजार योजन चौड़ाई वाले गन्धमादन और माल्यवान नामक दो पर्वत हैं, जो भद्राशव और केतु माल वर्ष की सीमाओं को बांधते हैं। इनके अलावा—मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद नामक दस-दस हजार योजन ऊंचे रहते हैं। चौड़े चार पर्वत और भी हैं, जो मेरु पर्वत की आधारभूत धूनियों के समान हैं और अपने शीर्ष पर पताकाओं के समान क्रमशः आम, जामुन, कदम्ब और बड़ के निजी ग्यारह सौ योजन ऊंचाई व इतने ही विस्तार वाले तथा 100-100 योजन की मोटाई वाले चार वृक्ष भी हैं। इन्हीं पर्वतों पर क्रमशः दूध, शहद, ईखरस व मीठे जल के चार सरोवर भी हैं, जिनका सेवन यहां किन्नरादि करते हैं। नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक व सर्वतोभद्र नामक चार देवताओं व अप्सराओं द्वारा सेवित चार दिव्य उपवन भी हैं।''

शुकदेव जी ने आगे कहा—''मंदराचल की गोद में स्थित देवताओं के आम्रवृक्ष से गिरीशिखर के समान बड़े व मीठे फल नीचे गिर कर फटते हैं, जिससे बहने वाला उनका रस अरुणोदा नामक नदी में बदल जाता है। यही नदी इलावृत वर्ष के पूर्वी भाग का सिंचन करती है। इसी प्रकार इलावृत वृक्ष के दक्षिणी भाग को सींचने वाली जम्बू नदी जामुन के वृक्ष से बिना गुठली के हाथी के जितने बड़े जामुन फलों के गिरकर फटने से बनती है। इस नदी के किनारों की मिट्टी जब सूर्य व वायु के सम्पर्क से सूखती है, तब 'जाम्बूनजद' नामक स्वर्ण बन जाती है।'

'सुपार्श्व पर्वत पर स्थित कदम्ब वृक्ष के पांच कोटरों से पांच पुरसे जितनी मोटाई वाली पांच मधु धाराएं निकलती हैं, जो इलावृत वर्ष के पश्चिमी भाग को सुवासित करती हैं। इसी प्रकार कुमुदपर्वत पर जो बड़ का शतवल्श नामक वृक्ष है, उसकी जटाओं से अनेक प्रकार के नद निकलते हैं, जो दूध, दही, घृत, गुड़, अन्न आदि

पदार्थों के दाता हैं। ये नद इलावृत वर्ष के उत्तरी भाग को सींचते है। कमल कर्णिका के चारों ओर केसर की भांति मेरुपर्वत के चारों ओर मूलदेश में—त्रिकुट, शिशिर, पतङ्ग, नारद, कालंजर, हंस, ऋषभ, वेकंक, कुरर, कुरंग, कुसुम्भ, शिनीवास, कपिल, शंख, निषध, रूचक, जारुचि, वैदूर्य और नाग आदि 20 पर्वत हैं। मेरु के पूर्व में जठर और देवदूत नामक अट्ठारह हजार योजन लम्बे तथा दो हजार योजन चौड़े दो पर्वत हैं। पश्चिम में पवन और पारियात्र, दक्षिण में कैलाश और कखीर तथा उत्तर में त्रिश्रंग व मकर नामक पर्वत भी हैं। कहा जाता है कि मेरु पर्वत के शिखर पर समचौरसाकाट तथा एक करोड़ योजन विस्तार वाली स्वर्णिम ब्रह्मपुरी है तथा उसके नीचे आठों दिशाओं व उपविद्याओं में उनके अधिपतियों की आठ लोकपाल पुरियां हैं। ये आठों लोकपाल पुरियां परिमाण में ब्रह्मा जी की पुरी से चौथाई हैं अर्थात 25-25 लाख योजन के विस्तार वाली हैं।''

शुकदेव जी आगे बोले—''बलि की यज्ञशाला में भगवान विष्णु ने जब वामन रूप में त्रिलोकी को नापा था। तब नापने के लिए फैलाए गए उनकी बाएं चरांगुष्ठ नख से ब्रह्माण्ड कटाह का ऊपरी भाग फटकर छिद्र युक्त हो गया था। उस छिद्र में से ब्रह्माण्ड से बाहर की (दिव्य/आकाश गांगीय) जलधारा आई जो भगवान के चरण कमलों को धोने के कारण उसमें लगी केसर मिलने से लाल हो गई तथा समस्त पापों को धो डालने वाली पवित्र व निर्मल हो गई। प्रभु चरणों से अवतरित होने से उसे 'भगवत्पदी' कहा गया। यह ध्रुवलोक में धुव्र द्वारा आदर पाती हुई सप्तऋषियों के जटाजूट में ठहरती है। फिर वहां से चन्द्रमंडल को भिगो कर मेरुशिखर पर स्थित ब्रह्मपुरी में गिरती है। यहां से सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा—इन चार धाराओं में विभक्त होकर चारों दिशाओं में अलग-अलग बहती हुई अन्ततः समुद्र में जा मिलती हैं। इनमें सीता केसराचल, गन्धमादन आदि शिखरों से होकर भद्राश्व वर्ष होती हुई समुद्र तक जाती है। चक्षु माल्यवान पर्वत के शिखर से होकर केतुमाल वर्ष में बहती हुई, भद्रा मेरुपर्वत के शिखर से अन्य पर्वतों पर होकर अन्त में श्रंगवान पर्वत से होकर कुरु वर्ष में बहती हुई तथा अलकनन्दा अनेक गिरि शिखरों से होकर हेमकूट पर्वत पर आकर हिमालय पर्वत के शिखरों से होती हुई भारत वर्ष में बहती हुई समुद्र तक जाती है। इनके अलावा अन्य भी सैंकड़ों छोटी-बड़ी नदियां मेरु से निकलकर प्रत्येक वर्ष से होकर खारे पानी के समुद्र तक जाती हैं।'

'हे राजन! इन सब वर्षों में भारत वर्ष ही कर्म भूमि है। अन्य शेष आठ वर्ष तो भोग स्थान ही है। अतः ये भूलोक के स्वर्ग भी कहे जाते हैं और वहां हर समय त्रेता युग के समान बना रहता है। व्यक्ति समर्थ, शक्तिशाली तथा मानवीगणना से दस हजार वर्ष की आयु वाले होते हैं। इन नौ वर्षों में परमपुरुष नारायण विभिन्न

रूपों से वहां के वासियों पर कृपा करने को विराजमान रहते हैं, जबकि दसवें तथा केन्द्रीय वर्ष इलावृत में एक मात्र भगवान शंकर ही पुरुष हैं। पार्वती के शाप के कारण वहां जानेवाला अन्य कोई भी पुरुष स्त्री रूप हो जाता है। (इसका कारण प्रसंग पाठकगण नवें स्कन्ध में पढ़ सकेंगे) यहां पार्वती जी की अरबों सेविकाओं से सेवित शिव परमपुरुष वासुदेव की चौथी तम प्रधान संकर्षण नामक मूर्ति (वासुदेव प्रद्युम्न, अनिरुद्र, व संकर्षण यह चार मूर्तियां पुराण ने कही है।) का चिन्तन करते हुए इस मंत्र—**'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नमः इति'** द्वारा उनकी स्तुति किया करते हैं।

ॐ जिनसे सभी गुणों की अभिव्यक्ति होती है। उन अनन्त और अव्यक्त मूर्ति ओंकारस्वरूप परमपुरुष श्री भगवान को नमस्कार है।

शुकदेव जी ने आगे कहा—''भद्राश्व वर्ष में धर्म पुत्र. भद्रश्रवा तथा उनके मुख्य सेवक वासुदेव प्रभु की हयग्रीव संज्ञक मूर्ति को हृदय में धारण कर, इस मंत्र—**'ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः इति'** (ॐ चित्त को विशुद्ध करने वाले ओंकार स्वरूप भगवान धर्म हैं—उनको नमस्कार है।) द्वारा स्तुति किया करते हैं। हरिवर्ष खण्ड में भगवान नरसिंह रूप में रहते हैं (वर्णन सातवें स्कन्ध में) वहां प्रह्लाद जी प्रजा सहित भगवान के नरसिंह रूप का ध्यान करके इस मंत्र—**'ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भय वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा। अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठाः ॐ क्ष्रौं।'** द्वारा उनकी स्तुति करते है। इस मंत्र का अर्थ है—ओंकारस्वरूप भगवान नरसिंह को प्रणाम है। आप अग्नि आदि तेजों के भी तेज हैं, आपको प्रणाम है। हे वज्र के समान नाखून व वज्र के समान दांतों वाले! आप हमारे समीप प्रकट हों, प्रकट हों, हमारी कर्म वासनाओं को जला डालें, जला डालें, हमारे अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करें, नष्ट करें। ॐ स्वाहा। हमारे अन्तःकरण में अभयदान देते हुए प्रकाशित होइए। ॐ क्ष्रौं। अब आगे सुनो।'

केतुमाल वर्ष में संवत्सर नामक प्रजापति के पुत्र-पुत्रियों तथा लक्ष्मी जी का प्रिय करने के लिए भगवान कामदेव रूप से निवास करते हैं। वहां लक्ष्मी जी रात में संवत्सर की पुत्रियों तथा दिन में उनके पतियों के साथ इस मंत्र द्वारा उनकी आराधना किया करती हैं—**'ॐ ह्रीं ह्रूं ह्रां ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलायचछन्दोमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलायकान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात्।'** इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—

'जो इन्द्रियों के नियन्ता व सम्पूर्ण श्रेष्ठ वस्तुओं के आकार हैं, क्रिया—शक्ति,

ज्ञानशक्ति व संकल्प शक्ति आदि चित्त के धर्मों व उनके विषयों के स्वामी हैं, ग्यारह इंद्रिय (एक मन को मिलाकर) और पांच विषयों (जो पांच ज्ञानेन्द्रियों से ग्रहण किये जाते हैं)—इन सोलह कलाओं से युक्त हैं—वेदवर्णित कर्मों से प्राप्त होते हैं तथा अन्नमय, अमृतमय व सर्वमय हैं—उन मानसिक ऐन्द्रिक व दैहिक बल के स्वरूप—परम सुन्दर भगवान कामदेव को—'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं' इन बीजमन्त्रों सहित सब ओर से नमस्कार है।'

'रम्यकवर्ष में, क्योंकि भगवान ने वहां के मनु को पूर्व काल में मतस्य रूप दिखाया था। अतः वे अब भी प्रजा सहित भक्ति भाव से उसी मनुष्य रूप को स्मरण करते हुए—**'ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याम नमः इति।'** इस मन्त्र से भगवान वासुदेव की स्तुति करते हैं। इस मंत्र का अर्थ है—'सत्त्वप्रधान मुख्य प्राण सूत्रात्मा तथा मनोबल, इन्द्रियबल और शारीरिक बल ओंकारपद के अर्थ सर्वश्रेष्ठ भगवान महामत्स्य को बारम्बार प्रणाम है।'

'हिरण्मय वर्ष में प्रभु कच्छप रूप में रहते हैं। अतः पितृराज अर्यमा यहां के वासियों सहित प्रभु के उसी रूप का ध्यान करके इस मन्त्र के द्वारा उनकी स्तुति करते हैं—**'ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणायानुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते** अर्थात्—जो सम्पूर्ण सत्त्वगुण से युक्त हैं, जल में विचरण करते रहने से, जिनके स्थान का कोई निश्चित नहीं है तथा जो काल की मर्यादाओं से परे हैं, उन ओंकार स्वरूप सर्वव्यापी सर्वाधार कच्छप प्रभु को बारम्बार प्रणाम है। इसी प्रकार उत्तरकुरु वर्ष में, जहां भगवान यज्ञपुरुष वाराह रूप में बसते हैं—वहां पृथ्वी देवी समस्त निवासियों के साथ उनके वाराह रूप को हृदय में रखकर इस परमोत्कृष्ट मंत्र के द्वारा उनकी स्तुति करते हैं—**'ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिंगाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते।'** अर्थात् जिनका तत्व मन्त्रों से जाना जाता है, जो यज्ञ और क्रतुरूप हैं तथा बडे-बड़े यज्ञ जिनके अंग हैं, उन ओंकार स्वरूप शुक्ल कर्ममय त्रियुगमूर्ति पुरुषोत्तम वाराह भगवान को बारम्बार प्रणाम है। इसी प्रकार किम्पुरुष वर्ष में, श्री हनुमान जी किन्नरों व गंधर्वों सहित भगवान के रामरूप का स्मरण करते हुए निम्नलिखित मन्त्र द्वारा उनकी स्तुति किया करते हैं—**'ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नमः आर्यलक्षणशीलव्रताय नमः उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः इति।'**—अर्थात् हम ओंकार स्वरूप पवित्र कीर्ति भगवान श्रीराम को प्रणाम करते हैं। आपमें सत्पुरुषों .के लक्षणशील व आचरण विद्यमान हैं, आप बहुत संयतचित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुत्व की परीक्षा के हेतु कसौटी सम व बहुत अधिक ब्राह्मण भक्त हैं। ऐसे महापुरुष प्रभुराम को हमारा

बारम्बार नमस्कार है।'

'हे राजन! भार..र्ष में भी दया के कारण नर-नारायण रूप में साधु पुरुषों पर कृपा करने के लिए भगवान अव्यक्त रूप से कल्पांत तक तप करते हैं। यहां नारद जी स्वयं भगवान के कहे सांख्यदर्शन और योगशास्त्र सहित प्रभुमहिमा को दर्शाने वाले पांचरात्र दर्शन का सावर्णि मुनि को उपदेश करने के लिए वर्णाश्रम तथा धर्म का अवलम्बन करने वाली प्रजा सहित स्तोत्र गाकर तथा इस मन्त्र द्वारा प्रभु स्तुति करते हैं—"**ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमः इति।'** अर्थात—ओंकार स्वरूप, अहंकाररहित, निर्धनों के धन, शान्त स्वभाव, ऋषियों के भी ऋषि नर-नारायण भगवान को हम प्रणाम करते हैं। वे परमहंसों के परम गुरु और आत्मारामों के स्वामी हैं—उनको बारम्बार प्रणाम हैं।'

'इस भारतवर्ष में भी बहुत से पर्वत और नदियां हैं। जैसे मलय, मैनाक, मंगल प्रस्थ, त्रिकूट, ऋषभ, कोल्लक, कूटक, सह्य, ऋष्यमूक, देवगिरि, शक्तिमान, महेन्द्र, श्रीशैल, विन्ध्य, वारिधार, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, नील, ककुभ, इन्द्रकील, कामगिरि तथा गोकामुख आदि प्रधान पर्वत तथा नामों से ही जीव को पवित्र कर देने वाली—मन्दाकिनी, गोमती, सरस्वती, कौशिकी, सरयू, यमुना, दृषद्वति, रोधस्वती, सप्तवती, चन्द्रभागा, शतद्रू, सुषोमा, वितस्ता, विश्वा, असिन्की, मरुद्वृधा, चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुंगभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धु, शोण, अन्ध, महानदी, वेदस्मृति, त्रिभासा एवं ऋषिकुल्या नामक मुख्य नदियां व नद हैं। देवता भी भारतवर्ष में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों की महिमा गाते हैं; क्योंकि यहीं अपने नश्वर शरीर के समस्त कर्म भगवान को अर्पण करके मनुष्य उनका परमपद पा सकते हैं, किन्तु भारतवर्ष में जन्म लेने के बाद भी उस जन्म का सदुपयोग न करने वाले उन मूढ़ मनुष्यों को क्या कहें, जो आवागमन चक्र से निकलने का प्रयास न करके पुनः बन्धन में पड़ जाते हैं। जैसे स्वतंत्र हुआ पक्षी फलादि के लोभ से पुनः—शिकारी के जाल में आ फंसता है। अतः श्रीहरि का भजन करके इस सुअवसर का पूरा लाभ उठाना ही चाहिए।'

'हे राजन! राजा सगर के पुत्रों द्वारा जब यज्ञ के अश्व को ढूंढने के लिए पृथ्वी चारों ओर से खोदी गई थी, तब इस जम्बूद्वीप में ही—स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका नामक आठ उपद्वीप बन गए थे, ऐसा कुछ विद्वानों का कहना है। इस प्रकार जैसा मैंने जम्बूद्वीप के विषय में गुरुमुख से सुना था—सो तुम से कह दिया।"

शुकदेव ने आगे कहा—"अब तुमसे प्लक्षादि अन्य द्वीपों के वर्ष विभागों का वर्णन करता हूं। जिस प्रकार मेरु पर्वत चारों ओर से जम्बूद्वीप से घिरा है और अपने ही परिमाण वाले खारे पानी के समुद्र से जम्बूद्वीप घिरा है, वैसे ही जम्बूद्वीप का क्षारसमुद्र अपने से दुगुने विस्तार वाले प्लक्षद्वीप से घिरा है। जम्बूद्वीप के जामुन के वृक्ष के समान उतने ही विस्तार वाला यहां प्लक्षवृक्ष है। यहां सात जिम्ह्वाओं वाले अग्नि विराजते हैं। इस द्वीप के अधिपति प्रियव्रत के पुत्र इध्मजिह थे। उन्होंने इस द्वीप को सात वर्षों में बांटा और उन्हें अपने सातों पुत्रों को सौंपकर अध्यात्मयोग का पालन कर उपरत हुए। इन सात वर्षों के नाम—शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय हैं। इनमें मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव तथा मेघमाला नामक सात पर्वत तथा अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतुम्भरा व सत्यम्भरा नामक सात नदियां प्रमुख रूप से प्रसिद्ध हैं। यहां—हंस, पतंग, उर्ध्वायन और सत्यांग—यह चार वर्ण प्रसिद्ध हैं। ऊपर कही नदियों में स्नान कर यहां के वासियों के तमो व रजोगुण क्षीण होते रहते हैं। इनके शरीरों में देवताओं की भांति पसीना, थकावट आदि नहीं होते तथा आयु एक हजार वर्ष होती है। ये लोग सूर्य के उपासक होते हैं तथा जन्म से ही आयु, इन्द्रीय, मनोबल, इन्द्रीयबल, शरीर बल, बुद्धि व पराक्रम, इनमें समान रूप से सिद्ध रहते हैं।'

'प्लक्ष द्वीप अपने ही समान विस्तार वाले इक्षुरस सागर से घिरा है—जो दुगुने परिमाण वाले शाल्मली द्वीप से घिरा है। शाल्मली द्वीप भी फिर समान विस्तार वाले मदिरा के समुद्र से घिरा हुआ है। यहां जामुन तथा प्लक्ष की भांति उतना ही बड़ा शाल्मली (सेमर) का वृक्ष है। कहा जाता है कि अपने वेदमय पंखों से प्रभु की स्तुति करने वाले गरूड़ का निवास इसी शाल्मली वृक्ष पर है। इस द्वीप के अधिपति प्रियव्रत पुत्र यज्ञबाहु थे। इन्होंने अपने पुत्रों के नामानुसार इस द्वीप के सात वर्ष बनाए जो—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन तथा अविज्ञात हैं। इनमें भी सात पर्वत (स्वरस, शतश्रृंग, वामदेव कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ष व सहस्रश्रुति) तथा सात नदियां (अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका) ही मुख्यतः प्रसिद्ध हैं। यहां के वासी श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धरा और इषन्धर इन चार वर्णों के तथा चन्द्रा के उपासक होते हैं।'

'शाल्मली द्वीप को घेरने वाला मदिरा सागर अपने से दूने परिमाण वाले कुशद्वीप से और कुशद्वीप अपने समान विस्तार वाले घृत सागर से घिरा है। इससे पूर्व द्वीपों के नाम वृक्षों के आधार पर थे, किन्तु कुशद्वीप में ईश्वर द्वारा बनाया एक बड़ा कुशों का झाड़ है, जो इस द्वीप के नाम का कारण है। यह कुशाओं का झाड़ समस्त दिशाओं को दूसरे अग्नि देव के समान प्रकाशित करता है। इसी द्वीप के अधिपति प्रियव्रत

पुत्र महाराज हिरण्यरेता ने भी इसे सात वर्षों में बांटकर अपने पुत्रों क्रमशः वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विदित्त, व वामदेव को सौंप दिया और तप करने चले गए। इस द्वीप के सात पर्वत चक्र, चतुःश्रंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, उर्ध्वरोमा व द्रविण तथा सात मुख्य नदियां रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रवृन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, धृतुच्युता तथा मन्त्रमाला हैं। कुशल, कोविद, अभियुक्त व कुलक यहां के चार वर्ण हैं। यहां के निवासी अग्नि के उपासक हैं, जो यज्ञादि कर्म कौशल अग्नि की उपासना किया करते हैं।'

'हे राजन! पहले बताए क्रम से घृत का समुद्र भी अपने से दुगुने क्रौंचद्वीप से घिरा है। क्रौंचद्वीप अपने ही परिमाण वाले दूध के समुद्र से घिरा हुआ है। इस द्वीप के नाम का कारण यहां अवस्थित क्रौंच नाम का एक विशाल पर्वत है। पूर्वकाल में शिवपुत्र कार्तिकेय जी के शस्त्राघात से इसका कटिक्षेत्र, लता व निकुंज आदि क्षत-विक्षत हो गए थे, जो कालान्तर में क्षीर सागर द्वारा सिंचित व वरुणदेव से रक्षित होकर फिर निर्भय हो गया। प्रियव्रत पुत्र धृतपृष्ठ इस द्वीप के अधिपति थे। उन्होंने भी अपने पुत्रों के समान नाम वाले सात वर्ष इस द्वीप में बनाए (आम, मधुरूह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण तथा वनस्पति)। यहां के प्रमुख सात पर्वत व सात नदियां क्रमशः इस प्रकार हैं—शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हिण, नन्द, नन्दन तथा सर्वतोभ्रद पर्वत एवं अभया, अमृतौधा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती एवं शुक्ला नदी। यहां पुरुष, ऋषभ, द्रविण व देवक नामक चार वर्णों वाली प्रजा आपोदेवता (जल के देवता) की उपासना किया करती हैं।'

'दूध के सागर को घेरने वाला दुग्धसागर से दुगुने परिमाण वाला शाकद्वीप है, जो अपने समान परिमाण वाले मट्ठे के समुद्र से घिरा है। इस द्वीप में शाक नामक विशालवृक्ष है, जो सारे द्वीप में सुंगध फैलाता है। प्रियव्रत पुत्र मेघातिथि इस द्वीप के अधिपति थे। उन्होंने भी द्वीप के सात वर्ष बना कर अपने पुत्रों—पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप व विश्वधार को सौंपकर संन्यास लिया। इस द्वीप के सात प्रमुख पर्वत—ईशान, उरुश्रंग, बलभद्र, रातकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल व महानस तथा सात मुख्य नदियां अनघा, आयुर्दा, अपराजिता, उभयस्पृष्टि, पंचपदी, निजघृति एंवम् सहस्रश्रुति हैं। ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत तथा अनुव्रत चार वर्ण हैं। यहां के लोग प्राणायाम द्वारा अपने तमो व रजोगुण को क्षीण कर समाधि द्वारा वायु की उपासना करते हैं।'

'इसके आगे पुष्कर द्वीप है, जो अपने से आधे विस्तार वाले तक्र सागर को घेरता है और अपने समान विस्तार वाले मीठे जल के समुद्र से घिरा है। यहां एक बहुत बड़ा पुष्कार (कमल) है, जो ब्रह्मा जी का आसन माना जाता है। अतः इसे

पुष्करद्वीप कहते हैं। इस द्वीप के बीच में पूर्वी व पश्चिमी विभाग की सीमा बनाने वाला दस हजार योजन ऊंचा व इतना ही लम्बा मानसोत्तर नामक पर्वत है। इसके ऊपर चारों दिशाओं में लोकपालों की चार पुरियां हैं। इन पर मेरुपर्वत के चारों ओर घूमने वाले सूर्य रथ का संवत्सर रूपी पहिया उत्तरायण व दक्षिणायन के क्रम से सदा घूमता है। इस द्वीप पर प्रियव्रत पुत्र. वीतिहोत्र का शासन था। उन्होंने अपने दो पुत्रों में (रमणक व घातकि) को आधे-आधे भाग का स्वामी बनाकर सन्यास ले लिया था। यहां के निवासी ब्रह्मा जी की स्तुति करने वाले हैं।"

शुकदेव जी ने आगे कहा—"हे राजन! उसके आगे अत्यंत ऊंचा लोकालोक नामक पर्वत है। यह पृथ्वी के सब ओर सूर्य द्वारा प्रकाशित व अप्रकाशित प्रदेश को बीच से बांटने का कार्य करता है। मेरु से मानसोत्तर पर्वत तक जितनी दूरी है, उतनी ही मीठे समुद्र के उस ओर भूमि है। यह स्वर्णमयी और दर्पण-सी निर्मल है। इसमें गिरी कोई वस्तु फिर नहीं मिलती। अतः वहां देवताओं के अतिरिक्त कोई प्राणी नहीं रहता। यह समस्त भूगोल पचास करोड़ योजन है। इसका चौथाई लोकालोक पर्वत है। इसके ऊपर ब्रह्मा द्वारा सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के लिए चार गजराज नियुक्त हैं। उसके ऊपर श्रीहरि विराजते हैं। लोक का लोक पर्वत के इस ओर जितना भाग है, दूसरी ओर (अलोक) में भी उतना ही समझना चाहिए, क्योंकि विद्वानों ने सब लोकों का (प्रमाण, लक्षण व स्थिति अनुसार) इतना ही विस्तार कहा है।

'स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य ब्रह्मांड का जो केन्द्र है, वहां पर सूर्य की स्थिति है। सूर्य और ब्रह्मांड गोलक के बीच सब ओर से 25 करोड़ योजन की दूरी है। सूर्य इस मृत अण्ड में वैराज रूप से विराजते हैं तथा समस्त ऊर्जा, प्रकाश व जीवन का स्रोत हैं, अतः इन्हें 'मार्तण्ड' कहते हैं। हिरण्मय ब्रह्मांड से प्रकट होने से इन्हें 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं। सूर्य ही समस्त जीवों में आत्मा व नेत्रों के अधिष्ठाता हैं तथा दिशा, आकाश, लोकादि के विभाजक हैं।"

शुकदेव जी ने आगे कहा—"भूमंडल के विस्तार के अनुसार ही विद्वान द्युलोक का परिमाण कहते हैं। इन दोनों के मध्य अन्तरिक्ष लोक है, जो दोनों का सन्धिस्थान है। इसी से समस्त ग्रह नक्षत्रों सहित भगवान भास्कर प्रकाशित होते हैं। सूर्य ही से त्रिलोकी को ताप व प्रकाश प्राप्त होता है (सृष्टि का जनरेटर कहिए)। उत्तरायण, दक्षिणायन तथा विषुवत नामक मन्द, शीघ्र व समान गति से चलते हुए, ये विभिन्न राशियों में ऊंचे-नीचे व समान स्थानों में जाकर दिन-रात को छोटा-बड़ा या समान करते हैं। मेष व तुला राशि पर सूर्य के आने पर दिन-रात समान हो जाते हैं। वृषादि पांच राशियों पर चलते समय क्रमशः प्रतिमास रात्रियों में एक-एक घड़ी कम होती जाती है व उसी अनुपात में दिन बढ़ते जाते हैं। वृश्चिक आदि पांच राशियों पर चलते

समय इसके विपरीत होता है। इस प्रकार दक्षिणायण आरम्भ होने तक दिन बढ़ते हैं तथा उत्तरायण लगने तक रात्रियां। यह सूर्य ही रात-दिन का, उनके घटने-बढ़ने का तथा ऋतुओं के परिवर्तन का कारण हैं।'

'मानसोत्तर पर्वत पर सूर्य की परिक्रमा का मार्ग 9 करोड़ 51 लाख योजन है। इस पर्वत पर मेरु के पूर्व में इन्द्र की देवधानी, दक्षिण में यमराज की संयमनी, उत्तर में चन्द्रमा की विभावरी तथा पश्चिम में वरुण की निम्लोचनी पुरियां हैं। सूर्योदय, मध्याह्न, अपराह्न तथा रात्रि के होने से ही जीवों में प्रवृत्ति व निवृत्ति होती है। सुमेरु पर रहने वालों का सूर्य का मध्याह्न काल ही सदा सहना होता है। सूर्य अपनी गति के अनुसार नक्षत्रों को बाईं ओर रखकर चलते हैं तो भी समस्त ज्योर्तिमंडल को घुमानेवाली निरन्तर दाईं ओर बहती वायु द्वारा घुमा दिए जाने से वे दाईं ओर रखकर चलते मालूम होते हैं, जिस पुरी में सूर्योदय होता है, उसके ठीक दूसरी ओर सूर्यास्त होता मालूम होता है। जिस पुरी में मध्याह्न समय होता है उसके ठीक दूसरी ओर अर्धरात्रि होती है। इसी प्रकार चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह भी नक्षत्रों के साथ उदय व अस्त होते (सूर्य के कारण) हैं। सूर्य एक घड़ी में सवा दो करोड़ व साढ़े बारह लाख योजन से 25 हजार योजन (लगभग) अधिक चलते हैं। एक मुहूर्त में चौंतीस लाख आठ सौ योजन के हिसाब से सूर्य का रथ इन पुरियों में घूमता रहता है। अब इस वेदमय सूर्यरथ का भी वर्णन सुनो।'

'सूर्यरथ का एक पहिया (वर्ष/Year) है, जिसमें बारह अरे (बारह महीने) हैं। छह नेमियां (ऋतुएं) हैं। तीन नाभियां हैं। (तीन चौमासे हैं अथवा भूत, भविष्य, वर्तमान तीन कालावस्थाएं हैं, क्योंकि सूर्य का एक पहिया वास्तव में काल/समय ही तो है।) इस रथ की धुरी का एक-एक सिरा मेरु व मानसरोवर पर्वत पर टिका है (यानी पहिया मानसोत्तर के ऊपर चक्कर लगाता है।) इस धुरी के पूल से जुड़ी और इससे चौथाई लम्बाई वाली एक धुरी इसे तैल यन्त्र के धुरे के समान ध्रुव लोक से जोड़ती है। (वही सूर्य को 'चैनलाइज्ड' करती है) इस रथ में छत्तीस लाख योजन लंबा नौ लाख योजन चौड़ा बैठने का स्थान है। इसका जुआ भी छत्तीस लाख योजन लम्बा है। उसे अरुण नामक सारथी चलाता है तथा इसमें सात घोड़े लगे हैं। (रथ वेदमय है। अतः सात घोड़े सात शब्द हैं। सूर्य प्रकाश का स्रोत है। अतः सात घोड़े प्रकाश की सात रंग की किरणें हैं। सूर्यकाल/गति/समय का कारक है। अतः सात घोड़े समय को चलाने वाले सात दिन/वार हैं। किसी पुराण में सूर्य रथ के तीन घोड़े ही होने का प्रसंग मिलता है। वहां मूल तीन रंग लाल, नीला, पीला तथा भूत, भविष्य व वर्तमान समझना चाहिए। अंगूठें के पोरवे के समान आकार वाले वालखिल्य आदि साठ हजार ऋषि उनके आगे स्तुति करते चलते हैं। इसके अलावा चौदह-ऋषि, गंधर्व, नाग

सूर्य रथ तथा भगवान सूर्यदेव की स्तुति करते एक ऋषि

अप्सरा, यक्ष, राक्षस व देवता आदि जो जोड़ों में रहने से सातगण कहलाते हैं। ये भी प्रत्येक मास में सूर्य की उपासना करते हैं। इस प्रकार प्रतिक्षण दो हजार दो योजन की गति से सूर्य भूमण्डल के नौ करोड़ इक्यावन लाख लम्बे घेरे को पार किया करते हैं।''

राजा परीक्षित बोले—''प्रभु! सूर्य राशियों में जाते समय जो ध्रुव और मेरु को दायीं ओर रखकर चलते मालूम होते हैं, किन्तु वास्तव में उनकी गति दक्षिणावर्त नहीं होती—यह क्या रहस्य है?''

शुकदेव ने कहा—''जैसे कुम्हार के घूमते हुए चाक पर घूमती हुई चींटी चाक पर होते हुए भी उससे भिन्न गति वाली होती है, क्योंकि वह भिन्न समयों में चाक के भिन्न स्थानों पर देखी जाती है। इस प्रकार कालचक्र में पड़कर भी सूर्य की गति उससे भिन्न है, क्योंकि वे कालभेद से विभिन्न नक्षत्रों व राशियों में दिखाई पड़ते हैं। संवत्सर के अवयव ही राशियों के नाम से प्रसिद्ध है। संवत्सर का प्रत्येक मास चन्द्रमा से दो पक्षों का, पितृमान से एक रात-दिन तथा सौरमान से सवार्दा नक्षत्र का बताते हैं, जितने समय में सूर्य संवत्सर का छठा भाग भोगते हैं, वह ऋतु कही जाती है। अपने आकाशीय मार्ग का आधा, वे जितने समय में पार करते हैं, वह समय कहा जाता है तथा जितने समय में वे अपनी मन्द, तीव्र व समगति से स्वर्ग और पृथ्वी सहित पूरे आकाश का चक्कर लगाते हैं, वह अवान्तर भेद से संवत्सर, परिवत्सर, इंडावत्सर, अनुवत्सर तथा वत्सर कहा जाता है।'

'सूर्य की किरणों से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा है। उसकी गति तेज होने से वह सब नक्षत्रों से आगे रहता है। यह सूर्य के एक वर्ष के मार्ग को एक मास में, एक मास के मार्ग को सवा दो दिनों में और एक पक्ष के मार्ग को एक दिन में तय करता है। यह क्षीण होती कलाओं से कृष्णपक्ष में पितरों तथा बढ़ती कलाओं से शुक्ल पक्ष में देवताओं के दिन-रात का विभाग करता है। तीस मुहूर्त में यह एक नक्षत्र को पार करता है। अन्नमय व अमृतमय होने से यही समस्त जीवों का प्राण व जीवन है। समस्त प्राणियों के प्राणों का पोषण करने के कारण इन्हें 'सर्वमय' भी कहते हैं। चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अभिजित सहित 28 नक्षत्र हैं। उनके दो लाख ऊपर शुक्र है, जो वर्षा कराने वाला ग्रह है तथा सूर्य की गतियों के अनुसार कभी आगे, कभी पीछे और कभी साथ-साथ चलता है। शुक्र की गति के ही अनुसार बुध की गति है, जो शुक्र से दो लाख योजन ऊपर तथा चन्द्रपुत्र है। मंगलकारी होते हुए भी सूर्य की गति का उल्लघंन करके चलते समय यह बहुत अधिक आंधी व सूखे के भय की सूचना देता है। बुध के दो लाख ऊपर अशुभ ग्रह मंगल है। यह वक्रगति से न चले, तो तीन पक्ष में एक राशि को भोगता है। यह प्रायः अमंगल सूचक है।

'मंगल से दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति है। यह प्रायः ब्राह्मणकुल के लिए अनुकूल रहते हैं तथा वक्रगति से न चलने पर एक राशि को एक वर्ष में भोगते हैं। इनके भी दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर है। यह तीस महीने एक राशि में रहते हैं। ये प्रायः सभी के लिए अशांति कारक हैं। (तीस वर्षों में समस्त राशियों को पार करने की धीमी गति के कारण इन्हें शनैःचर कहा जाता है।) इनके ग्यारह लाख योजन ऊपर सप्तऋषि मंडल है, जो ध्रुव लोक की प्रदक्षिणा करता है।"

शुकदेव जी आगे बोले—"ध्रुव लोक सप्तऋषियों से तेरह लाख योजन ऊपर है। यह भगवान विष्णु का परमपद व उनके परम भक्त ध्रुव का स्थान है। कल्पान्त तक रहने वाले लोक इन्हीं के आधार पर स्थित हैं। सदा जागने वाले अव्यक्त गति काल के द्वारा घुमाए जाने वाले ज्योर्तिगणों का आधरस्तम्भ ध्रुवलोक ही है। अतः केवल ध्रुव ही (समस्त नक्षत्र, तारे, ग्रह आदि में) अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं और वायु की प्रेरणा से सब ज्योर्तिगण ध्रुव का आश्रय लेकर कल्पांत तक घूमते हैं। कुछ विद्वान प्रभु की योगमाया पर आधारित इस ज्योतिश्चक्र का शिशुमार रूप में वर्णन भी करते हैं। इस शिशुमार का मुंह नीचे है और यह दाईं ओर कुंडली मारे है। इसकी पूंछ के सिरे पर ध्रुव, पूंछ के बीच में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र व धर्म, पूंछ के मूल में धाता और विधाता, कटिक्षेत्र में सप्तऋषि, दाहिने भाग में अभिजित से पुनर्वसु तक 14 नक्षत्र व बाएं में पुष्य से उत्तराषाढ़ तक 14 नक्षत्र, पीठ में अजवीथि व उदर में आकाशगंगा, थूथन में अगस्त्य, निचली ठोड़ी में यम, मुख में मंगल, लिंग में शनि, ककुद् में बृहस्पति, छाती में सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों में अश्विनी कुमार, प्राण-अपान में बुध, गले में राहू, समस्त अंगों में केतु और रोमों में तारागण स्थित हैं।'

'हे राजन! यह शिशुमार रूप विष्णु भगवान का सर्वदिवमय रूप है। इसका प्रतिदिन सायंकाल का पवित्र मन से मौन रहकर दर्शन करते हुए ध्यान करना चाहिए तथा स्तुति करनी चाहिए। तीनों कालों में उनके इस रूप का चिंतन व स्तुति समस्त पापों को नष्ट करती है।

'सिंहि का पुत्र राहू, जो नीच असुर होने से अयोग्य होते हुए भी भगवान की कृपा से सूर्य के दस हजार योजन नीचे नक्षत्र के समान घूमता है। राहू का विस्तार तेरह हजार योजन है। सूर्य का दस हजार तथा चन्दमा का 12 हजार योजन—ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। सूर्य व चन्द्रमा से बैर के कारण अमावस्या व पूर्णिमा के दिन यह उन पर आक्रमण करता है, किन्तु भगवान हरि द्वारा सूर्य-चन्द्र की रक्षार्थ नियुक्त सुदर्शन चक्र से घबरा कर यह मुहूर्त भर में वापस आ जाता है। सूर्य-चन्द्र के आगे राहू का मुहूर्त भर को आ जाना 'ग्रहण' कहा जाता है। राहू से दस हजार योजन नीचे

सिद्ध, विद्याधर आदि का स्थान है। उनके नीचे बादल व वायु से भरा अंतरिक्ष लोक है, जो राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत आदि का विहार स्थान है। उससे 100 योजन नीचे पृथ्वी है। जहां तक प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं, वहां तक पृथ्वी मंडल है। पृथ्वी का विस्तार कह आया हूं। पृथ्वी से नीचे पाताल आदि सात भू-विवर हैं, जो एक दूसरे से 10-10 हजार योजन दूरी पर स्थित हैं। विषय-भोग, ऐश्वर्य, आनन्द, सुख-सम्पत्ति की दृष्टि से यह सातों भू-विवर स्वर्ग से कम नहीं। ये दैत्य, दानव व नागों का विहार क्षेत्र है। इनके भोगों में बाधा डालने की इन्द्र की सार्मथ्य भी नहीं है। यहां अनेक सुन्दर नगर व उद्यान हैं, जिनकी शोभा व वैभव व सम्पन्नता अद्वितीय है। सुदर्शन चक्र के अलावा यहां के निवासियों को किसी का भय नहीं। अब इन सब भू-विवरों के विषय में कहता हूं।'

'ये सात भूविवर—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पातल कहे जाते हैं—यह पहले बता आया हूं कि अतल लोक में मयदानव का पुत्र असुर बल रहता है, जिसने 96 प्रकार की—मायाएं रचीं हैं। एक बार जम्हाई लेकर उसने—स्वैरिणी , कामिनी और पुश्चली तीन प्रकार की स्त्रियां उत्पन्न की। ये उस लोक के पुरुषों को हाटक नामक रस पिलाकर सम्भोग के योग्य बना लेती हैं और रमण करती हैं। वितल लोक में हाटकेश्वर महादेव अपने भूतगण पार्षदों के साथ रहते हैं। प्रजापति की सृष्टि बढ़ाने को वे भवानी सहित वहां विहार करते हैं। उनके तेज से वहां हाटकी नामक श्रेष्ठ नदी निकलती है। वायु से प्रज्वलित अग्नि उसके जल को सोत्साह पीता है। उसके द्वारा थूका गया हाटक नामक सोना दैत्य स्त्रियों के आभूषणों में प्रयुक्त होता है।'

'सुतल लोक में विरोचन के पुत्र दैत्यराज बलि रहते हैं। वे इन्द्र से भी श्रेष्ठ सम्पन्न हैं और वामनावतार द्वारा तीनों लोक छीने जाने के बाद उन्हीं की कृपा से इस लोक को प्राप्त हुए थे। यह सब भूमिदान का प्रताप है, जो साक्षात् मोक्ष का द्वार है। अपने भक्त बलि के लोक की रक्षा के लिए गदा लिए भगवान नारायण सदैव इस लोक की रक्षार्थ यहां उपस्थित रहते हैं। एक बार महाभिमानी रावण दिग्विजय करता हुआ यहां आ गया था, तब भगवान ने अपने पांदांगुष्ठ से ही उसे लाखों योजन दूर फेंक दिया था। तलातल में त्रिपुराधिपति दानवराज मय का वास है। भगवान शंकर द्वारा तीनों पुर भस्म कर दिए जाने पर उसने उन्हें ही प्रसन्न कर इस लोक में आश्रय प्राप्त किया था। मयदानव मायावियों का भी परमगुरु है और भगवान शिव द्वारा सुरक्षित है, अतः उसे सुदर्शन चक्र से भी भय नहीं है। महातल में कश्यप जी की पत्नी कद्रू से उत्पन्न अनेक सिर वाले सांपों का क्रोधवश नामक समुदाय रहता है। उनमें विशाल फन वाले—कालिय, तक्षक, कुहक व सुषेण आदि मुख्य हैं। इन्हें विष्णु वाहन पक्षीराज

गरुड़ से भय होता है।

'रसातल में पणि नामक दानव रहते हैं। इनको निवातकवच काले या हिरण्यपुट वासी भी कहते हैं। ये बलवान साहसी व देव विरोधी हैं। ये विष्णु तेज से तथा इन्द्र की दूती सरमा के कहे मन्त्र वाक्य—**'हता इन्द्रेण मणयः शयध्वम्'** अर्थात् हे प्राणियों! तुम इन्द्र द्वारा मारे जाकर पृथ्वी पर सो जाओ, के कारण इन्द्र से भयभीत रहते हैं। पाताल में शंख, कुलिक, महाशंख, धनन्जय, धृतराष्ट्र, शखचूड़, श्वेत, अश्वतर, कम्बल और देवदत्त आदि महा क्रोधी, विकराल सर्प रहते हैं। वासुकि, इनमें प्रधान हैं। इन कई फन वाले नागों की मणियों से पाताल लोक प्रकाशित रहता है।'

'हे राजन! पाताल के तीस हजार योजन नीचे अनन्त अथवा संकर्षण नाम से भगवान अपने तामसी रूप में एक हजार फन वाले शेषनाग के रूप में रहते हैं, जिसके एक फन पर यह भूमंडल सरसों के दाने की भांति रखा है। समस्त लोकों के कल्याणार्थ ये विराजमान हैं, किन्तु जब इस विश्व के उपसंहार की इच्छा होती है तब उन्हीं की भृकुटियों के बीच से संकर्षण नामक रूद्र प्रकट होते हैं। सिद्ध, मुनि, देवता आदि भगवान संकर्षण का ध्यान करते हैं। इनका ध्यान व महात्म श्रवण ह्दय की अविद्या रूपी ग्रंथी को काट देता है। ब्रह्मा जी के पुत्र नारद जी ने गन्धर्व तुम्बुरु के साथ ब्रह्मसभा में एक बार भगवान संकर्षण के गुणों का गान भी किया था।"

परीक्षित बोले—"प्रभो! लोगों को जो ऊंची-नीचीं गतियां प्राप्त होती हैं, उनमें इतनी विभिन्नताएं क्यों हैं?"

तब शुकदेव जी बोले—"स्वभाव और श्रद्धा के भेद से कर्मों की गतियां भिन्न होती हैं। सात्विक, राजसिक, तामसिक स्वभाव और अपनी-अपनी श्रद्धा (Involvement) के कारण निषिद्ध कर्मों (पापों) की गतियां भी भिन्न होती हैं। नारकीय गतियां भी हजारों हैं राजन!"

तब परीक्षित ने पूछा कि नरक जिनका वे वर्णन करना चाहते हैं—त्रिलोकी से बाहर है या इसी के भीतर कहीं?

इस पर शुकदेव जी ने कहा—"वे त्रिलोकी के भीतर ही दक्षिण दिशा में पृथ्वी के नीचे जल के ऊपर हैं। उसी दिशा में अपने वंशजों की मंगलकामना करने वाले पितर भी रहते हैं। सूर्यपुत्र अपने सेवकों के साथ वहां मृत पापियों को दुष्कर्मो का दण्ड देते हैं। विद्वान प्रमुख नरकों की संख्या 21 बताते हैं और कुछ 28, इनके नाम-तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीयाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटकशाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विरासन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचिमान, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगणभार्जन, शूलप्रोत, दन्दशूक, मवटनिरोधन, पर्यावर्तन और सूची मुख।'

'ताम्रिस नरक में भूखा-प्यासा रख कर डंडे मारना, डराना आदि यातनाएं उनको दी जाती हैं, जो पराए धन, स्त्री या सन्तान का हरण करते हैं। वहां सदा अन्धेरा रहता है। धोखेबाज व धोखा देकर स्त्री को भोगने वाला अन्धतामिस्र नरक में जाता है—जो और भी भयानक व विषम है। द्रोही व स्वार्थी मनुष्य रौरव नरक में जाता है। दूसरे प्राणियों को तंग करने वाला भी इसी नरक में जाता है, यहां तंग हुए प्राणी तंग करने वाले को यातना देकर बदला चुकाते हैं। इसी प्रकार जघन्य अपराधी महारौरव में जाते हैं। मांस भक्षियों को भी यही भयानक नरक मिलता है। क्रूर, निर्मम, जीव हत्यारे पुरुषों को कुम्भीपाक नरक में जाना पड़ता है, यहां उबलते तेल में पापी को पकाया जाता है। माता-पिता, गुरु, ब्राह्मण, वेद व मित्र का द्रोही कालसूत्र नरक में जाता है। अपने शरीर के रोम संख्या के बराबर वर्षों तक पापी यहां कष्ट भोगता है। यहां तांबे की तपी हुई भूमि व तपे हुए वातावरण में उसे जीना पड़ता है। पाखण्डी और नास्तिक या वेद विरोधी लोग असिपत्रवन नरक में जाते हैं। यहां कोड़ों की मार से बचने के लिए उन्हें तलवारों के जंगल में भागना पड़ता है। दलाली खाने वाले, सत्ता का अधिकार का दुरुप्रयोग करने वाले सूकरमुख नरक में जाते हैं। जहां यमदूत उन्हें गन्नों के सामन कोल्हू में पेरते हैं।'

'खटमल, चींटी आदि क्षुद्रजीवों की हत्या करने वाले अन्धकूप नरक में गिरते हैं। जहां वे अंधेरे कुएं में भूखे-प्यासे रहते हैं और क्षुद्रजीव उन्हें काट कर हिसाब चुकता करते हैं। अपने आश्रितों को दिए बिना ही स्वयं भोजन कर लेने वाला कृमिभोजन नरक में जाता है जहां, कृमि उसे काटते रहते हैं। चोर, डाकू आदि सन्दंश नरक में जाते हैं। जहां गरम सलाखों से उन्हें दागा व गरम चिमटे से खाल नोंची जाती है। अगम्य स्त्री से सम्भोग करने वाले को तप्तसूर्मि नरक में लोहे से तपी हुई स्त्री की मूर्ति का आलिंगन करना व कोड़े खाने पड़ते हैं। पशुओं से मैथुन या गुदा मैथुन करने वाले व्रजकण्टक शाल्मली नरक में जाते हैं। जहां वज्र के समान दृढ़ व पैने कांटों से युक्त एक बड़े वृक्ष पर अपराधी को चढ़ा कर फिर नीचे खींचा जाता है, कांटों पर घसीटा जाता है। धर्म मर्यादाओं को तोड़ने वाले वैतरणी नरक में जाते हैं। जहां उन्हें मल, मूत्र, विष्ठा, मवाद आदि की नदी में डुबोया जाता है और जल जोंकें उनका रक्त चूसती हैं। शूद्राओं से सम्भोग करने वाले पूयोद नरक में जाते हैं, जहां उन्हें मल, मूत्र, विष्ठा व मवाद आदि खिलाया जाता है तथा यमदूत उन्हें तीरों से बींधते हैं अथवा उनका श्वासावरोधकर उन्हें पीड़ित करते हैं।'

'पाखण्ड यज्ञों में पशु बलि देने वाले विरासन नरक में यमदूतों द्वारा काटे जाते हैं। अपनी पत्नी को कामातुर होकर वीर्यपान कराने वाला लालाभक्ष नरक में वीर्य की नदी में डाले जाते हैं व वीर्यपान करने को विवश किए जाते हैं। घर में आग

लगाने, विष देने वाले लोग सारमेयादन नरक में कुत्तों द्वारा फाड़े-नोंचे जाते हैं। झूठे, झूठी गवाही देने वाले को अविचिमान नरक में 100 योजन ऊंचे पहाड़ों से नीचे गिराया जाता है। शराब पीने वाले, व्रत का भंग करने वाले अयःपान नरक में जाते हैं। जहां यमदूत उनकी छाती पर पांव रखकर उन्हें आग में गलाया गया लोहा या गरम कोयले खिलाते हैं। अपने से बड़ों का सम्मान न करने वाले तथा आचार, विद्या व तप से हीन व्यक्ति क्षारकर्दम नरक में तेजाब में डाले जाते हैं। मांस भोगी, हत्यारे तथा नरमेधयज्ञों द्वारा राक्षसों का पूजन करने वाले क्रूर दुष्ट लोग रक्षोगणभार्जन नरक में राक्षसों द्वारा कुल्हाड़ी से काट कर खाए जाते हैं। जानवरों को रस्सी से बांधकर रखने या तंग करने वाले शूलप्रोत नरक में बड़े सांपों द्वारा निगले व काटे जाते हैं। इसी प्रकार जीवों को सताने वाले मवटनिरोधन नरक में पड़ते हैं। जहां गुफा में बन्द कर धुएं से उनका दम घोंटा जाता है।'

'पर्यावर्तन नरक में अतिथि सम्मान न करने वाला तथा बड़ों की ओर आंखें निकालने वाला होता है, जहां कौए, गिद्ध आदि अपनी चोंच से उनके नेत्र निकाल लेते हैं। अभिमानी व सबका तिरस्कार करने वाला सूचि मुख नरक में सूई-धागों से सिला जाता है। इसी प्रकार और भी सैकड़ों नरक हैं। अधर्मी व पापी मनुष्य अपने-अपने कर्मों के दुष्परिणाम क्रमशः वहां भुगतकर प्रायश्चित करते व शुद्ध होते हैं। प्रमुख नरक तुमसे कहे, उनके भोगादि भी कह दिए। सत्कर्म करने वाले स्वर्ग जाते हैं और अपने पुण्यों के फल भोगते हैं। पापों या पुण्यों का क्षय होने पर वे बचे हुए कर्मों तथा संस्कारों के साथ पुनः इसी लोक में जन्म लेने आ जाते हैं और यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। इस क्रम से निकलने के लिए एक मात्र मानव जन्म ही अवसर है तथा मोक्ष प्राप्ति व जन्म-मरण के क्रम से छूटने की विधि भी पहले बताई जा चुकी है। तुमसे पृथ्वी, आकाश, पाताल, गृह, नक्षत्र तथा नरक आदि के विषय में भी कह दिया है। अब और जो जानना चाहते हो—सो कहो।"

□□

षष्ठ स्कन्ध

राजा परीक्षित ने कहा—"हे महामुने! कृपया वह उपदेश करें जिससे मनुष्यों को अनेक दारुण नरकों की यातना न भोगनी पड़ें।"

शुकदेव जी बोले—"राजन! पाप—मन, वाणी व कर्म द्वारा होता है। यदि उसका प्रायश्चित इसी जन्म में न कर लिया जाए तो अवश्य ही नरकों में जाना पड़ता है। अतः पापकर्म से सदा दूर रहना और अगर हो जाए तो तुरन्त उसका प्रायश्चित कर डालना ही नरक यातना से बचने का उपाय है। जिस प्रकार से अग्नि सब पदार्थों को, कामाग्नि मर्यादाओं को, क्रोधाग्नि विवेक को, चिन्ता की अग्नि स्वास्थ्य को, योगाग्नि कर्मों व अज्ञान को जला डालती है, उसी प्रकार प्रायश्चित की अग्नि पापों को भस्म कर देती है।"

परीक्षित द्वारा पूछे जाने पर वे आगे बोले—"हे राजन! सच्चा प्रायश्चित तो तत्व ज्ञान ही है। प्रभु भक्ति भी पापनाशक है। शराब से भरा घड़ा, जिस प्रकार नदियों से शुद्ध नहीं होता, उसी प्रकार मनुष्य का मन भी है, किन्तु प्रभु भक्ति तो समस्त शोधकों से बढ़ कर है, समस्त प्रायश्चित उसी में निहित है। श्री विष्णु की भक्ति तो यमराज तक से त्राण दिलाती है, फिर नरक यातना क्या है? इस विषय में महात्माजन विष्णु दूतों और यमदूतों का संवाद भी प्राचीन इतिहास के तौर पर सुनाते हैं। सो मैं तुमसे कहता हूं। सुनो—

'कान्यकुब्ज में अजामिल नामक एक ब्राह्मण दासी का पति होने से संस्कार भ्रष्ट हो गया। जुआ, छल, लूट, परपीड़ा आदि दुष्कर्मों में लिप्त होकर उसने 88 वर्ष बिता दिए। उसके दस पुत्रों में छोटे का नाम 'नारायण' था। मृत्यु के समय यमदूत उसे लेने आए। उनके भयंकर रूप से घबरा कर उसने पास खेलते छोटे पुत्र को 'नारायण' कहकर पुकारा। अन्त समय में प्रभु नाम का स्मरण करते देख भगवान के पार्षद (देवदूत) वहां आ पहुंचे और उन्होंने यमदूतों को रोक दिया। तब यमदूतों द्वारा पूछे जाने पर वे विष्णुदूत बोले—'यमदूतों! यदि तुम धर्मराज की आज्ञा का पालन कर

रहे हो तो हमें धर्म का तत्व व लक्षण बताओ। दण्ड कैसे देते हैं? दण्ड का पात्र कौन है? सभी पापी दण्ड के योग्य हैं या उनमें से कुछ ही?'

'यमदूत बोले—'वेदों द्वारा निषिद्ध कर्म ही अर्धम है और वेदों द्वारा निर्दिष्ट कर्म ही धर्म हैं, क्योंकि वेद स्वयं भगवान का मुख ही हैं? सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, चन्द्रमा, दिशाएं, पृथ्वी, जल, संध्या, रात, दिन, काल, धर्म व इन्द्रियां ये मनुष्य के साक्षी हैं। मन, वचन और कर्म से होने वाले सब पाप-पुण्य इनके कारण पता चल जाते हैं। पाप कर्म करने वाला ही दण्ड का पात्र होता है। सबके मन में उपस्थित हमारे स्वामी यमराज सबके पूर्वरूपों और भावी स्वरूप का विचार कर लेते हैं। कोई जीव कर्म किए बिना नहीं रह सकता। उसके स्वभाविक गुण या संस्कार उसे कर्मों को बाध्य करते हैं। अजामिल पहले संस्कारित, पवित्र व सद्‌कर्म करने वाला था, किन्तु एक शूद्रकुल्टा के चक्कर में पड़कर इसने अपनी पत्नी का त्याग कर, उससे ही विवाह कर लिया और तब से कुसंग के कारण उसके संस्कार नष्ट हो गए और वह निरन्तर पाप करता रहा । कोई प्रायश्चित तक नहीं किया। अब यह पूर्णायु हो गया है, अतः इसके पापों को दण्ड देने हम इसे लेने आए हैं। पापों का दण्ड भोगकर यह शुद्ध हो जाएगा।'

तब भगवान के पार्षद बोले—'किन्तु इसने कोटि-कोटि जन्मों की पापराशि का प्रायश्चित कर लिया है। विवश होकर ही सही, इसने मन से भगवान के मोक्षप्रद नाम 'नारायण' का उच्चारण किया है। प्रभु नाम का स्मरण तो गम्भीरतम पापों को भी नष्ट कर देता है। ब्रह्मवादी ऋषियों ने पाप प्रशमन के लिए बहुत से व्रतों व प्रायश्चित कर्मों की व्यवस्था की है, किन्तु प्रभुनामोच्चार से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। शेष प्रायश्चित करने के बाद तो मन फिर से पापोन्मुख हो जाता है, किन्तु हृदय से प्रभुनाम का उच्चारण चित्त को सदा के लिए शुद्ध कर देता है। अन्त समय में प्रभुनाम का प्रथम अक्षर उच्चारित कर लेना भी शोधन के लिए पर्याप्त है, अजामिल ने तो पूरे नाम का उच्चारण किया है अतः यह यमयातना का पात्र नहीं रह गया है।''

शुकदेव जी ने आगे कहा—''इस प्रकार समझाए जाने पर यमदूत अजामिल को छोड़कर यमराज के पास चले गए और अजामिल यह सब देख-सुनकर भक्ति से भर उठा, उसे अपने पापों को याद कर ग्लानि हो आई। विष्णु पार्षदों के कुछ क्षणों के संग ने ही यह प्रभाव दिखाया कि वह प्रभु भक्ति में ही शुद्धचित्त से रम गया और वैकुण्ठ को प्राप्त हुआ। राजन् यह इतिहास गोपनीय और समस्त पापों का नाश करने वाला है। श्रद्धा तथा भक्ति से इसका-श्रवण कीर्तन करने वाला कभी भी नरक में नहीं जाता। बिना श्रद्धा के भी उच्चारित किया गया प्रभुनाम अपना प्रभाव दिखाता है, फिर श्रद्धा सहित लिया गया नाम तो प्रभावी होगा ही। अतः प्रभु भक्त कभी नरक में नहीं जाता। यमदूत उसकी ओर देख भी नहीं सकते।''

परीक्षित बोले—"महामुने! यमराज के वश में समस्त जीव है। अजामिल को न ले जाने देकर विष्णुदूतों ने यम के कार्य में बाधा डाली। यमराज ने तब अपने दूतों के खाली लौट आने पर क्या किया? धर्मराज के शासन का उल्लंघन तो बहुत शंकाएं उत्पन्न करने वाला कार्य है—आप ही इसका निवारण कर सकते हैं। पहले कभी मैंने ऐसा नहीं सुना।"

शुकदेव जी ने कहा—"तुम्हारी शंका का निवारण अवश्य होगा राजन! यमदूतों ने लौट कर सब संवाद यम को सुनाया और इस रहस्य को जानना चाहा; क्योंकि उनको भी ऐसी ही शंका हुई थी। तब यमराज ने इस प्रकार कहा—'चराचर जगत् का मैं स्वामी हूं, किन्तु भगवान विष्णु मेरे भी स्वामी हैं। उनके द्वारा सौंपे गए उत्तरदायित्वों को ही मैं तथा अन्य देवगण पूरा करते हैं। वे श्रीविष्णु परम स्वतन्त्र तथा मन, वाणी व इन्द्रियों से परे हैं। विष्णु पार्षद उनके भक्तों को समस्त विपदाओं, शत्रुओं तथा अनिष्टों से सुरक्षित रखते हैं। धर्म की मर्यादा श्रीहरि की ही बनाई है। भागवत धर्म को जानने वाला उन्हीं के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि वह परम शुद्ध, निगंत कठिन और अत्यंत गोपनीय है। भागवत धर्म को—ब्रह्मा जी, शिवजी, नारद, सनत्कुमार, कपिलदेव, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक, बलि, भीष्म पितामह, शुकदेव जी और मैं—हम बारह ही जानते हैं। प्रभु की चरण शक्ति किसी भी उपाय से प्राप्त कर लेना ही परम धर्म है। भगवत् भक्त के हृदय में भगवान स्वयं विराजते हैं, अतः प्रथम तो उनसे पाप होता नहीं, और कभी संयोगवश हो भी जाए तो भगवान का गुणगान उसे तत्काल नष्ट कर देता है। अतः उन्हें समर्पित भक्त मेरे दण्ड का पात्र नहीं है। उनकी रक्षा भगवान स्वयं गदा से करते हैं। अतः तुम उनको दूर ही से छोड़ देना, जो कर्मवासना के जाल में फंसे मूढ़ या दुष्ट हैं, उन्हीं को तुम मेरे पास लाया करो। हे दूतों! आज तुमको रिक्त लौटा कर विष्णु दूतों ने मेरा अपमान नहीं किया, अपितु तुमने भगवान विष्णु का अपमान 'नारायण' पुकारने वाले अजामिल के पास जाकर किया है। यह मेरी ही त्रुटि है। भगवान हमारी यह भूल क्षमा करें। हम अज्ञानी होने पर भी उनके और आज्ञापालन को उत्सुक हैं। मैं उन एकरस अनन्त प्रभु को प्रणाम करता हूं।"

शुकदेव जी ने आगे कहा—"हे राजन! इस इतिहास को सुनकर तुम्हारी समस्त शंकाओं का निवारण हो गया होगा। यह इतिहास परम गोपनीय व रहस्यपूर्ण है तथा भक्ति भावना को प्रोत्साहित करने वाला है। मलयपर्वत पर विराजमान महर्षि अगस्त्य जी ने श्रीहरि की पूजा के समय मुझे यह इतिहास सुनाया था, सो मैंने तुमसे कह दिया है।"

तब परीक्षित बोले—"महामुने! आपने कृपाकर मेरी शंका निवृत्त कर दी, किन्तु स्वायम्भुव मन्वतन्तर में—देवता, असुर, मनुष्य, सर्प आदि की सृष्टि का वृत्तांत आपने संक्षेप में कहा। मैं उसे विस्तार से सुनना चाहता हूं। यदि आप उचित समझें तो मुझसे कहें।

इस पर शुकदेव जी मुस्करा कर बोले—"प्रकृति आदि कारणों के भी परम कारण भगवान किस प्रकार अपनी शक्ति से बाद की सृष्टि का विस्तार करते हैं? यह वास्तव में सहजजिज्ञासा वाला सुन्दर प्रश्न है। मैं इस प्रश्न का स्वागत करते हुए तुमसे सब विस्तार से कहता हूं—

"हे राजन! प्रचेतागण जब समुद्र से निकले और पृथ्वी को वृक्षों से अटा पाया तो उन्होंने क्रोध में आकर तपोबल से उनको जलाने के लिए मुख से वायु व अग्नि उत्पन्न की। तब वनस्पतियों के राजा सोम (चन्द्रमा) ने उनकी प्रार्थना की और समझा कर निवेदन किया कि वे वृक्षों की रक्षा करें और वृक्षों द्वारा पालित कन्या—(मारिषा) को पत्नी रूप में स्वीकार करके प्रजा की वृद्धि करें। प्रचेताओं ने तब शांत होकर मारिषा से विवाह किया। उसी के गर्भ से प्रचेतस दक्ष पैदा हुआ। दक्ष की प्रजासृष्टि से कालान्तर में तीनों लोक भर गए। इन्होंने जिस प्रकार अपने संकल्प व वीर्य से विविध प्राणियों की सृष्टि की, वह मैं तुम्हें सुनाता हूं। दत्तचित्त होकर श्रवण करो।

'दक्ष ने जल, थल व आकाश में रहने वाले देवता, असुर व मनुष्य आदि प्रजा की सृष्टि अपने संकल्प से की। तदुपरांत विन्ध्याचल के निकट वाले पर्वतों पर तप किया। उनके द्वारा की गई हंसगुह्य स्तोत्र से भगवान प्रसन्न हुए और बोले—'तपस्या मेरा हृदय है, विद्या मेरा शरीर, कर्म आकृति है, यज्ञ अंग, धर्म मन और देवता प्राण हैं। जब यह सृष्टि नहीं थी, तब सिर्फ मैं था। मेरी ही गुणमयी माया के क्षोभ से यह ब्रह्माण्ड शरीर प्रकट हुआ और उसमें अयोनिज ब्रह्मा प्रकट हुए। मैंने उनमें शक्ति व चेतना का संचार कर तप का आदेश दिया, तब वे प्रजा-उत्पादन में सक्रिय हुए। तप द्वारा ही उन्होंने सृष्टि की। तप ही सब उपलब्धियों का साधन है। तुमने भी तप द्वारा मुझे ही प्रसन्न किया है। प्रजापति पन्चजन की पुत्री आसिकी को पत्नी रूप से स्वीकार करो। तब तुम उसके द्वारा बहुत-सी प्रजा उत्पन्न कर सकोगे। अब तक सृष्टि मानसी थी। अब तुमसे मैथुनिक सृष्टि आरम्भ होगी।' यह कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गए।'

दक्ष द्वारा कहा गया विष्णु भगवान का 'हंसगुह्य-स्तोत्र'

नमः परायावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभिर्निवृत्तमानाय दधे स्वयम्भुवे।।
न यस्य सख्यंपुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन् संवसतः पुरेऽस्मिन।
गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टेस्तस्मै महेशाय नमस्करोमि।।
देहोऽसवोऽक्षामनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत्।
सर्वं पुमान् वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे।।
यदोपरामो मनसो नामरूपरूपस्य दृष्टस्मृतिसम्प्रमोषात्।
य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः।।

मनीषिणोऽन्तर्हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृत्रिद्भिः।
वह्नि तथा दारूणि पाञ्चदश्यं मनीषया निष्कर्षन्ति गूढ़म्।।
स वै ममाशेषविशेषमायानिषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः।
स सर्वनामा स च विश्वरूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः।।
यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं धियाक्षभिर्वा मनसावोत यस्य।।
मा भूत स्वरूपं गुणरूपं हि तत्तत् स वै गुणापायविसर्गलक्षणः।।
यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै यद् यो यथा कुरूते कार्यते च।
परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम्।।
यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवादसंवादभुवो भविन्त।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भम्ने।।
अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयोरंकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मयोः।।
अवेक्षितं किञ्चन योगसांख्ययो : समं परं ह्यनुकूलं वृहत्तत।।
योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवाननन्तः।
नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु।।
यः प्राकृतैर्ज्ञनिपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति।
यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणंः स ईश्वरो में कुरुतान्मनोरथम्।।

'तब आसिन्की से विवाह करके प्रजापति दक्ष ने हर्यश्व नाम वाले दस हजार पुत्र उत्पन्न किए, जो आचरण व स्वभाव में समान होने से एक ही नाम वाले हुए। पिता द्वारा सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा पाकर वे पश्चिम दिशा में तप करने चले गए। तब नारद ने उनसे कहा—'तुमने पृथ्वी का अन्त ही नहीं देखा तो सृष्टि कैसे करोगे? बहुत खेद की बात है। सुनो! एक ही पुरुष वाला एक देश है, एक बिल है, जिसमें बाहर निकलने का मार्ग नहीं है। एक स्त्री जो बहुरूपिणी है, एक पुरुष जो व्यभिचारिणी का पति है, एक दोनों ओर बहने वाली नदी है, पच्चीस पदार्थों से बना एक विचित्र घर है, एक विचित्र कहानी वाला हंस, एक छुरे व वज्र से बना स्वचालित चक्र है। हे मुर्खों! जब तक अपने पिता के आदेश को ठीक से समझ न लोगे और मेरी कही गई उपरोक्त 8 वस्तुएं देख न लोगे, तब तक सृष्टि कैसे करोगे?''

'हे राजन्! जन्म ही से बुद्धिमान हर्यश्वों ने नारद की पहेलियों पर विचार किया और पाया कि—'लिंग शरीर, जिसे सामान्यतः जीव कहते हैं, ही पृथ्वी है। यही आत्मा का अनादि बंधन है। अतः इसका अन्त देखे बिना मोक्ष के अनुपयोगी कर्मों में संलग्न होने से क्या लाभ। एक ही पुरुष वाला देश जगत् है—जिसमें भगवान ही एक पुरुष हैं। वह बिल जिसमें से निकलने का मार्ग नहीं है, अतः ज्योति स्वरूप परमात्मा ही हैं। जब हृदय में छिपे परमतत्व का साक्षात्कार होकर मोक्ष हो जाता है तो जीव फिर संसार चक्र में नहीं लौटता। अपनी बुद्धि ही बहुरूपिणी (सत, रज, तम) स्त्री है।

यही बुद्धि व्यभिचारिणी है, जिसके संग में फंसकर उसका पति जीव रूपी पुरुष दिशा भ्रमित हो जाता है। माया ही वह नदी है, जो दोनों ही ओर बहती है—क्योंकि वह सृष्टि भी करती है और प्रलय भी। जो लोग इससे निकलने को तप, विद्या आदि तट का आश्रय लेते हैं, उन्हें रोकने पर यह क्रोध, अहंकार आदि के रूप में और भी वेग से बहने लगती है। पच्चीस तत्व ही पच्चीस पदार्थ हैं—उनके आश्रय (घर) में रहने वाला पुरुष ही उस कार्य—कारणात्मक जगत का अधिष्ठाता है। भगवत रूप का निरूपण करके दूध व पानी को अलग करने के समान बन्ध मोक्ष तथा जड़-चेतन को पृथक करके दिखा देने वाला शास्त्र ही हंस है। अध्यात्मशास्त्र के अध्ययन से ही माया और सत्य को अलग करने पर विवेक प्राप्त होता है, जैसे हंस पानी और दूध को अलग कर लेता है। काल ही स्वचालित चक्र है, (अथवा वेद ही पिता हैं) क्योंकि दूसरा जन्म शास्त्राध्ययन के बाद होता है—उसका आदेश कर्मों में संलग्न होना नहीं, उनसे निवृत्त होना है—तब भला हम संतानोत्पत्ति कर विभिन्न कर्मों के बन्धन व माया में क्यों फंसे? ऐसा सोचकर वे सभी मोक्ष पथ के पथिक बन गए और श्रीकृष्ण के चरणों में चित्त अखण्ड रूप से स्थिर कर लोक लोकान्तरों में विचरने लगे।'

'दक्ष प्रजापति को यह जान कर बड़ा शोक हुआ, क्योंकि सन्तान का न होना शोक का कारण है। बुरी सन्तान का होना और भी शोक का कारण है और अच्छी सन्तान का होकर बिछुड़ जाना तो महाशोक का कारण है। ब्रह्मा द्वारा समझाए जाने पर उन्होंने धैर्य धारण करके आसिन्की के गर्भ से एक हजार और पुत्र उत्पन्न किए जो सम-स्वभाव व आचरण से एक ही—'शबलाश्व' नाम के हुए। पिता द्वारा आज्ञा पाकर वे भी अपने भाइयों के समान तप के लिए गए, किन्तु नारद ने अपने कूट वाक्यों से उनको भी निवृत्तिमार्ग पर भेज दिया। यह जान कर दक्ष अत्यंत क्रुद्ध हो गए और नारद को शाप दिया कि 'वे कभी एक ही स्थान पर अधिक समय ठहर न पाएंगे, लोक-लोकान्तरों में भटकते रहेंगे।' प्रतिकार व प्रतिशोध की सामर्थ्य होते हुए भी नारद ने शांतिपूर्वक शाप स्वीकार किया, क्योंकि साधुओं का यही लक्षण है।

'हे राजन! इसके बाद ब्रह्मा जी के काफी मनाने के बाद दक्ष ने आरसिन्की के गर्भ से साठ कन्याएं उत्पन्न कीं। वे सभी दक्ष से बहुत प्यार करती थीं। दक्ष ने उनमें से 10 का धर्म से, 13 का कश्यप जी से, 27 चन्द्रमा से, दो अंगिरा से, दो भूतों से, दो कृशाश्व से और चार का ताक्ष्र्य नाम वाले कश्यप से विवाह किया। इन पुत्रियों की वंश परम्परा त्रिलोकी में फैली हुई है। अब तुमसे इनकी सन्तानों का वृत्तांत कहता हूं। सावधान हो कर सुनो—

'भानु, लाम्बा, ककुभ, जामि, विश्वा, साध्या, मरूत्वती, वसु, मुहूर्ता व संकल्पा धर्म को ब्याही गई थीं। भानु का पुत्र देवऋृषभ व पौत्र इन्द्रसेन था। लाम्बा के पुत्र व पौत्र क्रमशः विद्योत व मेघगण थे। ककुभ का पुत्र संकट, पौत्र कीकट तथ प्रपौत्र

सम्पूर्ण दुर्गों के अभिमानी देवता हुए। जामि का पुत्र व पौत्र क्रमशः स्वर्ग व नन्दी थे। विश्वा का पुत्र विश्वेदेव निःसन्तान रहा। साध्या के साध्यगण व उनके अर्थसिद्धि हुआ। मरूत्वती के दो पुत्र हुए—'मरूत्वान्' तथा वासुदेव का अंश 'जयन्त', जिसे 'उपेन्द्र' भी कहा गया। मुहूर्ता से अपने-अपने मुहूर्त में जीवों को कर्मानुसार फल देने वाले मुहूर्त के अभिमानी देवता हुए। संकल्पा का पुत्र संकल्प व पौत्र काम हुआ। वसु के आठ पुत्र हुए—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु। ये सभी आठ वसु कहलाए। द्रोण ने अभिमती के गर्भ से हर्ष, शोक, भय आदि अभिमानी देवता उत्पन्न किए। प्राण ने उर्जस्वती से सह, आयु व पुरोजव तीन पुत्र उत्पन्न किए। ध्रुव ने धरणी से नगरों के अभिमानी देवता पैदा किए। अर्क वासना के गर्भ से तृष्णा आदि पुत्र पैदा किए। अग्नि ने धारा के गर्भ से द्रविणक आदि बहुत से पुत्र तथा कृत्तिकापुत्र स्कन्द उत्पन्न किए। उनसे विशाख आदि का जन्म हुआ।'

'दोष ने शर्वरी के गर्भ से भगवान के कलावतार शिशुमार को पैदा किया। वसु ने आंगिरसी के गर्भ से शिल्पकला के स्वामी विश्वकर्मा को उत्पन्न किया। विश्वकर्मा ने कृति के गर्भ से चाक्षुष मनु को जन्म दिया, जिनके पुत्र विश्वेदेव और साध्यगण हुए। विभावसु के ऊषा द्वारा व्युष्ट, रोचिष, और आतप नामक तीन पुत्र हुए। आतप का पुत्र पञ्चयाम (दिन) हुआ, जो सब जीवों को सक्रीय रखता है।' अब आगे सुनो—

''भूत की पहली पत्नी दक्षपुत्री सरूपा ने कोटि-कोटि रुद्रगण उत्पन्न किए। इनमें ग्यारह रूद्र—रैवत, अज, भव, भीम, वाग, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अर्हिवुध्न्य, बहुरूप और महान्—मुख्य हैं। दूसरी पत्नी भूता से भयंकर भूत और विनायक आदि उत्पन्न हुए। ये सब ग्यारहवें प्रधान रूद्र 'महान' के पार्षद बने। अंगिरा ने पहली पत्नी स्वधा द्वारा पितृगण को और दूसरी सती द्वारा अथर्वागिंरस नामक वेद को ही पुत्र रूप से स्वीकारा। कृशाश्व ने अर्चि के गर्भ से धूम्रकेश को उत्पन्न किया और दूसरी पत्नी धिष्णा से—वेदशिरा, देवल, मनु तथ वयुन इन चार पुत्रों को पैदा किया। तार्क्ष्यनामधारी कश्यप ने पहली पत्नी विनता से पक्षीराज व विष्णुवाहन गरुड़ और सूर्य के सारथी अरुण को उत्पन्न किया। दूसरी पत्नी कद्रू से विभिन्न नागों को, तीसरी पतंगी से विभिन्न पक्षियों को तथा चौथी यामिनी से विभिन्न शलभों को उत्पन्न किया। कृत्तिका, रोहिणी आदि 27 नक्षत्राभिमानी दक्षकन्याएं चन्द्रमा को ब्याही गईं थीं। रोहिणी से अधिक प्रेम के कारण औरों को उपेक्षित कर देने पर चन्द्रमा दक्ष के शाप से क्षयरोगी हो गए थे। अतः उनके कोई संतान नहीं हुई। शिवाराधना द्वारा शिव व दक्ष को प्रसन्नकर चन्द्रमा ने शुक्लपक्ष में वृद्धि का वर लिया तो भी दक्षपुत्रियों से उनके संतान न हुई (बुध का चन्द्रमा पुत्र होने का वर्णन कुछ पुराणों में आया है, किन्तु वे दक्षपुत्रियों के गर्भ से नहीं बृहस्पति की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं)। अव तुमसे कश्यप ऋषि की तेरह पत्नियों की संतानों का वृत्तांत कहता हूं, जो लोकमताओं के रूप में

प्रसिद्ध हैं, क्योंकि सारी-सृष्टि उन्हीं के गर्भ से उत्पन्न हुई है।'

'सुरभि नामक पत्नी से—गाय-भैंस आदि दो खुरों वाले पशु, तिमि नामक पत्नी से—मत्स्य आदि जलचर जन्तु, सरमा नामक पत्नी से बाघ, सिंह आदि हिसंक जीव, ताम्रा से—बाज, गिद्ध आदि शिकारी पक्षी, मुनि नामक पत्नी से—विभिन्न अप्सराएं, क्रोधवशा नाम की पत्नी से—बिच्छु, सांप, आदि विषैले जन्तु, इला से वृक्ष, लता आदि वनस्पतियां, सुरसा नामक पत्नी से यातुधान आदि राक्षस (या कीटाणु) अरिष्टा से विभिन्न गंधर्व, काष्ठा से घोड़े आदि एक खुर के पशु कश्यप ने उत्पन्न किए। शेष तीन पत्नियों—दिति, अदिति व दनु के पुत्र क्रमशः दैत्य, आदित्य व दानव कहे गए। उनके विषय में भी सुनो।'

'दनु के गर्भ से कश्यप के 61 पुत्र हुए। उनमें—शम्बर, अरिष्ट, द्विमूर्धा, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शंकुशिरा, स्वर्भानु, पुलोमा, अरुण, कपिल, वृषपर्वा, एकचक्र अनुतापन, विरुपाक्ष, दुर्जय, धूम्रकेश तथा विप्रचित्ति प्रधान हुए। इनमें—स्वर्भानु की पुत्री सप्रभा से नमुचि का, वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से नहुष पुत्र ययाति का विवाह हुआ। दनु पुत्र वैश्वानर की चार पुत्रियों—उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कालका में से पहली दो से क्रमशः हिरण्याक्ष व क्रतु का विवाह हुआ। पुलोमा और कालका से ब्रह्माज्ञा के कारण स्वयं कश्यप ही ने विवाह किया और उनसे पौलोम के कालकेय नामक साठ हजार दानव उत्पन्न किए, जिन्हें निवात कवच भी कहा गया। ये यज्ञकर्मों में विघ्न डालते थे। अतः तुम्हारे दादा अर्जुन जब स्वर्ग गए थे, तब इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने अकेले ही इन दानवों को मार डाला था। विप्रचित्ति ने अपनी पत्नी सिंहिका के गर्भ से एक सौ एक पुत्र उत्पन्न किए, जिनमें राहु सबसे बड़ा था (इसकी गणना ग्रहों में होती है) शेष सौ पुत्र—केतु कहे गए।'

'अदिति के गर्भ से कश्यप द्वारा विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भगधाता, विधाता, वरुण, मित्र, इन्द्र और त्रिविक्रम (वामनावतार) इन बारह पुत्रों का जन्म हुआ, जो बारह आदित्य कहे गए। विवस्वान् (सूर्य) की पत्नी संज्ञा के गर्भ से वैवस्वत मनु (श्राद्धदेव) तथा यम-यमी का युगल उत्पन्न हुआ। घोड़ी का रूप धारणकर संज्ञा ने सूर्य द्वारा ही अश्विनी कुमारों को जन्म दिया। दूसरी पत्नी छाया से भी सूर्य ने शनैश्चर तथा सावर्णि मनु नामक दो पुत्र और तपती नामक एक कन्या उत्पन्न की। तपती का पति संवरण हुआ। अर्यमा ने मातृका नामक पत्नी से चर्षणी नाम के पुत्र उत्पन्न किए—इन्हीं के आधार पर ब्रह्मा ने मनुष्यों में चार वर्णों की कल्पना की। पूषा निःसंतान रहे। प्राचीनकाल में शिव के अनुचर वीरभद्र द्वारा शिव पर हंसने के कारण पूषा के दांत तोड़ दिए थे। अतः वे तबसे पिसा अन्न ही खाते हैं। त्वष्टा ने दैत्यों की छोटी बहिन रचना के गर्भ से संनिवेश व विश्वरूप इन दो पुत्रों को उत्पन्न

किया। इस प्रकार शत्रुओं का भान्जा होने पर भी इन्द्र ने विश्वरूप को उस समय पुरोहित बनाया था, जब इन्द्र से अपमानित होकर क्रोधवश देवगुरु बृहस्पति ने इन्द्रादि देवताओं को त्याग दिया था।"

परीक्षित ने उत्सुकता वश बीच में ही कहा—"हे महामुने! बृहस्पति जी द्वारा देवताओं को त्यागे जाने का प्रसंग भी कहिए। उसे सुनने की मुझे बहुत उत्कंठा हो रही है।"

तब शुकदेव जी बोले—"त्रिलोकी का ऐश्वर्य पाकर घमण्डी हो जाने के कारण इन्द्र सदाचार व मर्यादाओं का उल्लंघन करने लगे थे। अतः एक बार इन्द्रसभा में बृहस्पति के आगमन पर इन्द्र पहले की भांति और देवताओं के साथ उनके सम्मान में खड़े नहीं हुए, तब बृहस्पति जी रूष्ट होकर वापस लौट गए। बाद में इन्द्र को अपने इस कृत्य पर पछतावा हुआ। वे उन्हें मनाने उनके घर गए, किन्तु बृहस्पति योगबल से अन्तर्धान हो गए। इन्द्र द्वारा बहुत खोजे जाने पर भी वे न मिले। इधर अवसर का लाभ उठाकर शुक्राचार्य जी के निर्देशानुसार असुरों ने उन पर आक्रमण कर दिया। बिना गुरु के अरक्षित देवता हारने लगे, तो ब्रह्मा की शरण में पहुंचे।'

'ब्रह्मा बोले—'बृहस्पति वेदज्ञ ब्राह्मण हैं और गुरु व पुरोहित भी। अतः उनका सम्मान न करके आपने दुर्भाग्य को आमंत्रित किया है, किन्तु अभी समस्या सुरक्षा की है। अतः त्वष्टा पुत्र विश्वरूप से पुरोहिती का निवेदन करो। वे सच्चे ब्राह्मण और तपस्वी हैं, तुम्हारा काम बना देंगे।' हे राजन! तब इन्द्र सहित सभी देवताओं ने ऐसा ही किया। विश्वरूप ने देवपुरोहित बनना स्वीकार कर लिया। नीतिबल द्वारा जो असुरों की सम्पत्ति शुक्राचार्य ने सुरक्षित कर दी थी, वह विश्वरूप ने वैष्णवी विद्या के प्रभाव से इन्द्र को वापस दिला दी और इन्द्र को **'नारायण कवच'** का उपदेश दिया—जिससे सुरक्षित होकर इन्द्र ने संग्राम जीत लिया।"

'हे शौनक! परीक्षित द्वारा पूछे जाने पर शुकदेव जी ने उनको भी 'नारायण कवच' का उपदेश दिया, जो मैं जनकल्याणार्थ तुमसे कहता हूं। सुनो! सूत जी ने बताया—"भय का अवसर आने पर मनुष्य को इस कवच के द्वारा रक्षा करनी चाहिए। हाथ-पैर धोकर, आचमन कर, कुश पवित्री हाथ में लेकर उत्तरान्मुख होकर बैठें। कवच धारण कर मौन रहने का निश्चित करके शुद्धमन से—**'ॐ नमो नारायणाय'** और—**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—इन मंत्रों के द्वारा हृदयादि, अंगन्यास तथा अंगुष्ठादि करन्यास करें। तत्पश्चात **'नारायण कवच'** का पाठ करें। इस कवच को धारण करने वाला—प्रेत, भूत, पशु, डाकू, राजा आदि सब भयों से सुरक्षित हो जाता है, और जिसे छू लेता है, वह भी भयमुक्त हो जाता है।"

विशेष—(**'नारायण कवच'** स्थानाभाव के कारण हम इस ग्रन्थ में सम्मिलित नहीं कर पा रहे हैं। इच्छुक पाठक इसी प्रकाशन से प्रकाशित मेरी अन्य पुस्तक 'स्तोत्र

सागर' में अन्य चमत्कारी स्तोत्रों के साथ-साथ—'नारायणकवच' भी प्राप्त कर सकते हैं।)

शुकदेव जी ने आगे कहा—''विश्वरूप तीन सिर वाले थे। उनकी माता असुर कुल की थी। अतः वे देवताओं को तो यज्ञ में आहुति देते ही थे, चुपके से असुरों को भी आहुति दे देते थे। देवराज इन्द्र को जब यह ज्ञात हुआ, तो उन्होंने विश्वरूप के तीनों सिर काट डाले। कहते हैं कि विश्वरूप का सोमरस पीने वाला सिर 'पपीहा', सुरापान करने वाला सिर 'गौरैया' तथा अन्न खाने वाला सिर 'तीतर' बन गया। राजन्! विश्वरूप की हत्या से इन्द्र को जो ब्रह्म हत्या का पाप लगा वह उसने पृथ्वी, वृक्ष, स्त्रियों तथा जल को चार अंशों में बांट दिया। इन चारों ने ब्रह्महत्या के पाप के बदले में मिले वरदानों के बदले ले लिया। पृथ्वी को इन्द्र ने वरदान दिया कि उसमें जहां कहीं गड्ढ़ा होगा। समय आने पर स्वयं भर जाएगा। वृक्षों को उनके कटे हुए भाग को फिर से जम जाने का, स्त्रियों को सदा पुरुष से सहवास कर सकने का तथा जल को प्रयोग होते रहने के बाद भी निर्झरों व स्रोतों आदि के रूप में बढ़ते रहने का इन्द्र ने वर दिया। पृथ्वी का कहीं-कहीं ऊसर होना कुछ वृक्षों का गोंद बहाना, स्त्रियों को मासिक धर्म होना तथा जल में फेन-बुदबुद आदि उत्पन्न होना—उनके द्वारा ग्रहण किए गए ब्रह्म हत्या के पाप को परिलक्षित करता है।'

'अपने पुत्र की हत्या का समाचार जान क्रुद्ध त्वष्टा ने यज्ञ करके मंत्रों द्वारा इन्द्र के हनन के लिए अति विकराल, भयानक, काले रंग का, प्रतिदिन चारों ओर से बाण बराबर बढ़ जाने वाला अत्यंत शक्तिशाली दैत्य 'वृत्तासुर' उत्पन्न किए। उससे समस्त जीव आंतकित हो गए। देवताओं के प्रहार करने पर वृत्तासुर उनके अस्त्र-शस्त्र निगल गया। तब देवता नारायण की शरण में गए। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर श्री नारायण ने उनको दर्शन दिए और कहा—'तुम्हारा यह स्तोत्र मुझे प्रसन्न करने वाला है। तुम लोग दधीचि ऋषि के पास जाओ। उन्होंने तप आदि से शरीर को अत्यंत दृढ किया है तथा उन्हें शुद्ध ब्रह्म का ज्ञान है। उन्होंने अश्विनी कुमार को घोड़े का सिर धारण करके 'अश्वशिरा' ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया था। त्वष्टा को भी **'नारायण कवच'** का उपदेश दिया था। अतः तुम उनसे उनकी अस्थियां मांग लो। विश्वकर्मा उन अस्थियों से एक श्रेष्ठ आयुध बनाएगा और फिर मेरी शक्ति से युक्त होकर इन्द्र उसी आयुध से वृत्तासुर का वध कर देगा। जाओं तुम्हारा कल्याण होगा।'

'हे राजन! तब देवताओं ने ऐसा ही किया। विश्वकर्मा ने दधीचि ऋषि की अस्थियों से वज्र नामक आयुध बनाया और इन्द देवताओं सहित असुर सेना पर टूट पड़े। अपनी सेना को पराजित होते देख वृत्तासुर ने अपनी गदा से ऐरावत का मस्तक फोड़कर अट्ठाइस हाथ पीछे धकेल दिया। इन्द्र ने सौ गांठ वाले वज्र से वृत्तासुर की भुजा काट डाली, किन्तु वृत्तासुर के प्रहार से उसका व्रज उनके हाथ से छूट गया।

तब वृत्तासुर ने इन्द्र को वज्र उठाने का अवसर दिया और निष्कपट शब्दों में युद्ध को प्रोत्साहित किया, क्योंकि इन्द्र को मारकर त्रिलोकी का राज्य लेने से, स्वयं मरकर प्रभु को प्राप्त करना उसे अधिक प्रिय लगा। वृत्तासुर रजोगुणी स्वभाव का होते हुए भी वासुदेव में ही बुद्धि लगाए रहता था। अतः इन्द्र वृत्तासुर दोनों ही धर्म चर्चा करते हुए लड़ने लगे। वृत्तासुर के भयानक परिध के प्रहार करने पर इन्द्र ने वज्र से उसकी दूसरी भुजा भी काट दी। तब वृत्त ने बहुत बड़ा मुख फैला कर इन्द्र सहित ऐरावत को निगल लिया, किन्तु इंद्र **'नारायण कवच'** से सुरक्षित थे। योगमाया के बल से पेट फाड़कर बाहर निकल आए। बाहर आकार वृत्त का सिर व्रज से काट डाला। तब गंधर्वों, सिद्धों आदि ने इन्द्र के पराक्रम को सूचित करने वाले मंत्रों से उनकी स्तुति की।'

'हे राजन!' वृत्तासुर के वध से इन्द्र के अतिरिक्त सभी सुखी हुए, क्योंकि इन्द्र ब्रह्म हत्या के अपराध बोध से ग्रसित हो गए थे। ब्रह्म हत्या एक चाण्डालिनी की भांति उनके पीछे लग गई तो वे आतंकित और व्यग्र होकर एक सरोवर में कमल नाल में जा छिपे। एक हजार वर्षों तक वे भूखे ही वहां छिपे रहे, क्योंकि देवताओं के मुख अग्नि हैं और अग्नि वहां कैसे पहुंचते? तब तक विद्या, तप व योग्बल के प्रभाव से पात्रता सिद्ध करके राजा नहुष इन्द्रपद को संभालते रहे। फिर ऐश्वर्यमद में चूर होकर उन्होंने शची से अनाचार करना चाहा, तब शची ने सप्तऋषियों के प्रति नहुष से अपराध करवाकर उसे उनके शाप से सांप बनवा दिया। एक हजार वर्षों तक कमलनाल में छिपकर भगवान विष्णु का ध्यान करने से इन्द्रका ब्रह्म हत्या का पाप नष्ट हो गया, तब ब्रह्माजी के बुलाने पर इन्द्र स्वर्ग में पहुंचे। तब ब्रह्मर्षियों ने इन्द्र से अश्वमेध यज्ञ कराकर सब पाप मोचन किया। विष्णु भक्त वृत्तासुर का यह प्रसंग पापनाशक, विजयदायक, शुभ व आयु की वृद्धि करने वाला तथा भक्ति बढ़ाने वाला है। इसका पाठ या श्रवण सदा ही करना चाहिए।''

तब परीक्षित बोले—''हे महामुने! वृत्तासुर तो सब प्राणियों व देवताओं को कष्ट पहुंचाता था, फिर वह विष्णु भक्त किस प्रकार हुआ? यह रहस्य कृपया समझाइए।''

शुकदेव जी ने कहा—''मेरे पिता व्यास, देवर्षि नारद और महर्षि देवला से मैंने जो इतिहास सुना, वह तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में सुनाता हूं, सावधानी से सुनो—प्राचीनकाल में शूरसेन देश में सम्राट चित्रकेतु का शासन था। उनके राज्य में पृथ्वी स्वयं प्रजा को इच्छानुसार अन्नादि दे दिया करती थी। सन्तानोत्पत्ति में समर्थ तथा एक करोड़ रानियां होते हुए भी उनके संतान न थीं, क्योंकि वे सभी बांझ थीं। एक दिन अंगिरा ऋषि वहां आए। चित्रकेतु के प्रार्थना करने पर उन्होंने यज्ञ का प्रसाद सम्राट की बड़ी पत्नी कृतद्युति को दिया और कहा कि—'इस प्रसाद से रानी को सुख व दुःख दोनों ही देने वाला एक पुत्र होगा।' समय आने पर उसे पुत्र हुआ, किन्तु

आयुध वज्र से वृत्तासुर का सिर धड़ से अलग करते हुए इन्द्र

सौतों ने जलन के कारण बालक को विष दे दिया, जिससे चित्रकेतु शोकग्रस्त हो गए, तब अंगिरा व नारद वहां आए। अंगिरा ने समझाया—'तुम भगवान के भक्त हो। भक्त को कभी शोक न करना चाहिए। रिश्ते, नाते, सम्बन्ध, सुख, दुःख सब सांसारिक और कृत्रिम हैं, नश्वर हैं। सत्य तो मात्र आत्मा है। वही वास्तविक तथा सनातन है। पहले ही मैं तुम्हें ज्ञानोपदेश करता, किन्तु तब तुम पुत्र पाने को उत्कंठित थे। अतः मैंने पुत्र दिया। पुत्र ने उत्पन्न होकर तुम्हें सुख दिया और फिर मृत होकर दुःख दिया। वास्तव में ये सुख-दुःख तो सामयिक भाव हैं, चिर नहीं, अतः शोक मत करो।'

'हे राजन! जब अंगिरा के शब्दों से चित्रकेतु को कुछ शांति हुई, तब नारद बोले—'मैं तुमको सुपात्र पाकर मंत्रोपनिषद देता हूं। तुम एकाग्र भाव से ग्रहण करो। इससे सात रातों में ही तुम्हें भगवान संकर्षण के दर्शन होंगे और तुमको शीघ्र ही तत्व ज्ञान हो परमपद प्राप्त होगा। ऐसा कह कर नारद ने मृत बालक की जीवात्मा को वहां प्रत्यक्ष ही बुला लिया और कहा, तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे लिए शोकाकुल हो रहे हैं। अतः तुम इस देह में वापस आ जाओ। भोग भोगो व राज़ा बनो।'

तब जीवात्मा बोला,—'देवर्षि, मैं तो कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में भटक रहा हूं। मेरे न जाने कितने ही माता-पिता हुए और कितने ही होंगे? ऐसे में मैं किसको अपना माता-पिता कहूं? भोग तो देह के लिए है। मैं उसमें लिप्त नहीं होता। मैं तो आत्मा हूं, भोग, शोक, हर्ष, भय, क्रोध, अहंकार आदि सब भावों से परे हूं। मेरा कोई अपना नहीं, कोई पराया नहीं, मैं भी किसी का नहीं—यह सब सांसारिक प्रपंच हैं। मैं तो साक्षी मात्र हूं। न मेरी कोई इच्छा है, न आवश्यकता ही है। अतः मैं क्यों राजा बनूं? और क्या भोगूं? मेरी देह के भोग तो जन्म के साथ ही पूरे हो गए थे। अतः मैं मुक्त हो गया हूं। यह कहकर जीवात्मा चला गया। जीवात्मा की बात सुनकर राजा चित्रकेतु का मोह नष्ट हो गया—तब उसने शांत मन में नारद द्वारा 'मंत्रोपनिषद्' ग्रहण किया।

नारद द्वारा चित्रकेतु को दी गई विद्या 'मंत्रोपनिषद्'

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायनिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च।।
नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये।
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये।।
आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः।
हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये।।
वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह।
अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः।।

यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते।
मृण्मयेष्विव्व मृज्जातिस्तस्मै ते ब्राह्मणे नमः।।
यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः।
अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तन्नतोऽस्म्यहम्।।
देहेन्द्रिय प्राणमनोधियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु।
नैवान्यदा लोहमिवा प्रतप्तं स्थानेषु तद् द्रष्ट्रपदेश मेति।।

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय य महाविभूतिपतये सकलसात्वत परिवृढ निकरकर कमलकुङ्मलोपलालित चरणारविन्दयुगलपरमपरमेष्ठिन्नमस्ते।।

'सात दिन बाद इस विद्या के प्रभाव से चित्रकेतु का मन शुद्ध हो जाने पर उसे संकर्षण भगवान के दर्शन हुए। उसने उनकी स्तुति की। तब संकर्षण भगवान बोले—परब्रह्म और शब्दब्रह्म मैं ही हूं। यह मनुष्य योनि ज्ञान व विज्ञान का मूल स्रोत है, किन्तु मुझे भूलकर जीव जन्म-मरण के बन्धन में पड़ जाता है। जीव का स्वार्थ व परमार्थ इतना ही है कि वो ब्रह्म व आत्मा की एकता का अनुभव कर ले। सब अवस्थाओं में अखण्ड एक रस रहने वाला ज्ञान ही ब्रह्म है। ज्ञान व विज्ञान से सम्पन्न होकर सिद्ध हो जाओगे—इस प्रकार आशीर्वाद व उपदेश देकर प्रभु अन्तर्धान हो गए।''

शुकदेव जी ने आगे कहा—''महायोगी चित्रकेतु करोड़ों वर्ष तक सुमेरु पर्वत की घाटियों में विहार करते रहे। एक दिन भगवान द्वारा दिए गए विमान से वे आकाश में विचरण कर रहे थे, तब भगवान शंकर को महामुनियों व सिद्धों की सभा में पार्वती जी को अंक में बिठाए आलिंगन किए देखा। तब चित्रकेतु ने हंसकर इस प्रकार कहा—'अरे! साधारण स्त्री पुरुष भी एकांत में ही इस प्रकार बैठा करते हैं और ये जगत् गुरु महादेव इतने बड़े व्रतधारी होकर भी पत्नी को सबके सामने गोद में लिए बैठे हैं।' चित्रकेतु जितेन्द्रिय होने के गर्व में थे और शंकर के विषय में ठीक प्रकार से जानते न थे। अतः अगाध बुद्धि वाले शंकर तो यह सुनकर केवल हंस कर रहे गए, किन्तु पार्वती को यह सुनकर अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने उसे असुर-योनि में जाने का शाप दिया। चित्रकेतु प्रायश्चित करते हुए वहां से चले गए, तब शिव ने पार्वती से कहा—''चित्रकेतु भगवान विष्णु का परम भक्त है, विष्णु मेरे भी आराध्य हैं। भगवान के भक्त किसी का भय नहीं खाते, चित्रकेतु को दिया तुम्हारा शाप उसके प्रारब्धानुसार मिलने वाले फल की पूर्व सूचना मात्र है, अतः चित्रकेतु इसे स्वीकार कर चुपचाप चला गया है। तुम्हें इस विषय में आश्चर्य नहीं करना चाहिए।''

'हे राजन! यही चित्रकेतु दानव योनि का आश्रय लेकर शापवश वृत्तासुर के रूप में उत्पन्न हुआ तो विष्णु के प्रति भक्ति ज्ञान के स्वरूप, उनके ज्ञान से पूर्ण ही रहा, इसीलिए भगवान विष्णु ने स्वयं इसका वध नही किया। महात्मा चित्रकेतु का यह वृत्तांत समस्त बन्धनों से मुक्त कराने वाला है। श्रद्धा सहित नित्य प्रातःकाल

इसका पाठ करने से परम गति प्राप्त होती हैं। अब अदिति के पुत्रों का जो वृत्तांत त्वष्टा के वर्णन के बाद बीच में ही रह गया था, उसे तथा दिति के पुत्रों के वृत्तांत को भी कहता हूं।'

'अदिति पुत्र सविता की आठ सन्तानें—सावित्री, व्याहृति, त्रयी, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य व पंचमहायज्ञ—पृश्नि के गर्भ से हुए। भग नामक अदिति पुत्र की पत्नी सिद्धि ने तीन पुत्र—विभु, प्रभु व महिमा तथा आशिष नामक पुत्री को जन्म दिया। भग के भाई धाता की चार पत्नियां कुहू, सिनीवाली, राका व अनुमति से एक-एक पुत्र क्रमशः सायं, दर्श, प्रातः और पूर्णमास तथा छोटे भाई विधाता की पत्नी क्रिया से पुरीष्य नामक पांच अग्नि उत्पन्न हुए। अदिति के पुत्र वरुण के चर्षणी से भृगु जी ने पुनः जन्म लिया (पहले वे ब्रह्मापुत्र थे)। वाल्मीकि भी वरुण के पुत्र थे। उर्वशी नामक अप्सरा को देख वरुण और मित्र दोनों का वीर्यस्खलन हो गया था, जिसे उन्होंने घड़े में रख दिया था—उसी से महर्षि अगस्त्य व ब्रह्मर्षि वशिष्ठ का जन्म हुआ। मित्र ने अपनी पत्नी रेवती द्वारा—उत्सर्ग, अरिष्ट, पिप्पल इन तीनों पुत्रों को उत्पन्न किया। अदिति पुत्र देवराज इन्द्र ने पुलोम दानव की पुत्री शची से विवाह कर—जयन्त, ऋषभ व मीढ्वान—इन तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। अदिति पुत्र वामन के रूप में स्वयं भगवान अवतरित हुए। उन्होंने कीर्ति नामक पत्नी से बृहच्छलोक नामक पुत्र उत्पन्न किया, जिसके सौभग आदि कई सन्तानें हुईं।' (आठवें स्कन्ध में वामनावतार के विषय में पाठक पढ़ सकेंगे।)

'अदिति के बारह पुत्र 'आदित्य' कहे गए। दनु के पुत्र 'दानव' और 'दिति' के पुत्र 'दैत्य'—यह सब बता ही चुका हूं। अब दिति के पुत्रों की भी कथा सुनो। दिति के दो पुत्र हुए—हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष। ये दोनों दैत्यों और दानवों में वन्दनीय हुए। हिरण्यकशिपु ने जम्भ दानव की पुत्री कयाधु से—हूलाद, सहूलाद, अनुहूलाद और प्रह्लाद-ये चार पुत्र उत्पन्न किए तथा सिहिंका नामक एक पुत्री उत्पन्न की। (जो राहू की मां बनी)। इनमें सहूलाद ने कृति से पन्चजन नामक पुत्र को तथा ह्लाद ने धर्मान से वातापि व इल्वल नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। इस इल्वल ने ही वातापि को पकाकर आतिथ्य के समय महर्षि अगस्त्य को खिला दिया था। अनुहूलाद ने सूर्म्या बाष्कल और महिषासुर को जन्म दिया। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन हुआ, जिसने देवी के गर्भ से बलि को उत्पन्न किया। बलि ने अशना के गर्भ से बाण आदि सौ पुत्रों को उत्पन्न किया। बाणासुर ने शंकर को प्रसन्न कर उनके गणों के मुखिया का पद लिया और अपने नगर की रक्षा का उत्तरदायित्व उनको सौंप दिया। दिति के उन्चास पुत्र और भी हुए जो मरुद्गण के नाम से जाने गए और इन्द्र ने उन्हें अपने ही समान देवता बना लिया था।''

परीक्षित ने पूछा—''हे मुने! मरुद्गणों को देवता बना लेने का क्या कारण था?

और वे अपना आसुरी स्वभाव त्यागकर कैसे देवता बन पाए? कृपापूर्वक यह भी बताइए।''

तब शुकदेव जी बोले—''दिति पुत्रों हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष को विष्णु भगवान ने इन्द्र का पक्ष लेकर मार डाला था। अतः दिति इन्द्र के प्रति क्रोधित हो उठी। इन्द्र का दर्प चूरकर देने वाला पराक्रमी पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से दिति ने सेवा और चतुराई से अपने पति कश्यप का हृदय जीत लिया और उन्हें ऐसे विशिष्ट पुत्र को दिति के गर्भ में स्थापना के लिए राजी कर लिया, तब कश्यप जी ने कहा—'मेरे बताए गए व्रत का एक वर्ष तक विधिपूर्वक पालन करने पर तुम्हें ऐसा पुत्र प्राप्त होगा, किन्तु नियमों में त्रुटि हुई तो वह देवताओं का मित्र बन जाएगा।' दिति के सहमत हो जाने पर कश्यप जी बोले—इस व्रत का नाम 'पुंसवन' है। फिर उन्होंने व्रत की सावधानियां बता दी और दिति दृढ़तापूर्वक व्रत पालन करने लगी।'

'हे परीक्षित! इन्द्र को जब यह ज्ञात हुआ तो वह कपटवेश में दिति की सेवा करने लगा, लेकिन वह दिति की त्रुटि पकड़ने के प्रयास में ही रहता था। दिति व्रत के नियमों से दुर्बल होकर एक दिन झूठे मुंह, बिना आचमन किए और बिना पैर धोए सो गई। व्रत में त्रुटि पाते ही इन्द्र योग बल से दिति के गर्भ में घुस गए और वज्र से गर्भ के सात टुकड़े कर दिए। तब गर्भ के टुकड़ों ने इन्द्र से कहा—'हमें मत मारो! हम तो तुम्हारें भाई मरुद्‌गण हैं। तब इन्द्र उनकी बात मानकर रुक गए। हे राजन! वह गर्भ दिति की वर्षभर की नारायणाराधना व व्रत के तप से नष्ट नहीं हुआ। इंद्र भी गर्भ के टुकड़ों का निवेदन मान उनका भाई बन कर गर्भ में ही रुक गए और गर्भ इस प्रकार 50 भागों में हो गया। दिति की आंख खुली और उसने गर्भ में इन्द्र सहित गर्भ के 49 भाग और देखे। तब उसने इन्द्र को सब सच कहने को कहा। इन्द्र ने सच-सच बता दिया—उसने गर्भ के 7 टुकड़े किए, तो गर्भ नष्ट नहीं हुआ और टुकड़े किए तो वे सात गुने होकर 49 हो गए। फिर इन्द्र ने अपने कृत्य के लिए दिति से क्षमा मांगी। दिति ने इन्द्र के शुद्धभाव और सत्यता से सन्तुष्ट हो उसे क्षमा कर दिया। इस प्रकार 49 मरुद्‌गण उत्पन्न हुए, जिन्हें इन्द्र ने अपना भाई स्वीकार कर लिया और देवताओं में ले लिया। मरुद्‌गण इन्द्र के साथ स्वर्ग चले गए।''

परीक्षित द्वारा पूछे जाने पर शुकदेव जी ने पुंसवन व्रत की विधि भी बताई और कहा—''पुंसवन व्रत का विधिपूर्वक अनुष्ठान करने से मनचाही वस्तु मिल जाती है। स्त्री इस व्रत का पालन करके सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, यश व गृह आदि प्राप्त करती हैं तथा उनका पति चिरायु हो जाता है तथा भगवान नारायण इससे प्रसन्न होते हैं, किन्तु इस व्रत के नियम अत्यंत कठोर और कठिन हैं।''

❑❑

सप्तम स्कन्ध

परीक्षित बोले—"नारायण तो निर्गुन, पक्षपात रहित तथा समदर्शी हैं। फिर उन्होंने इन्द्र या देवताओं के पक्ष में दैत्यों का वध क्यों किया? उनका तो किसी से साख्य या वैरभाव हो नहीं सकता?"

शुकदेव बोले—"तुम्हारा प्रश्न सर्वथा उपयुक्त व श्रेष्ठ है। हे राजन्! भगवान सत्यसंकल्पा हैं। समयानुसार वे सत-रज-तम अलग-अलग गुणों को धारण करते हैं। वास्तव में मरने वाले भी वही हैं और मारने वाले भी वही हैं। दैत्य और देवता उन्हीं के अंश हैं। जब वे सत्व गुण की वृद्धि करते हैं, तब देवताओं का बल बढ़ाते व दैत्यों का नाश करते हैं, किन्तु रज व तम की वृद्धि के समय वही दैत्यों का बल बढ़ाकर देवताओं को पराजित भी कराते हैं। अतः वे किसी का पक्ष न लेते हुए सम ही रहते हैं तथापि काल, गुण व प्रारब्धानुसार जीवों को कर्मफल देते समय वे देवताओं के सहयोगी और दैत्यों के विरोधी प्रतीत होते हैं। मायावश ऐसा भ्रम होता है, नारायण तो तटस्थ, एकरस और सम रहते हैं। सुनो! तुम्हारें दादा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया शिशुपाल जब कृष्ण ही में समा गया। तब युधिष्ठिर और नारद में जो वार्तालाप हुआ, वह तुमसे कहता हूं। इससे तुम्हारी शंका का उचित समाधान हो जाएगा—

'युधिष्ठिर ने वह अद्‌भुत दृश्य देखकर नारद से पूछा—'यह क्या चमत्कार है प्रभो? भगवान से द्वेष रखने वाले शिशुपाल को यह अनन्य भक्तों के लिए भी दुर्लभ परम गति किस प्रकार मिली?' तब नारद ने समस्त सभा को सुनाते हुए युधिष्ठिर से कहा—'राजन! सत्कार, तिरस्कार, निन्दा या प्रशंसा—शरीर की होती है। उसमें रहने वाला जीवात्मा तो इन भावों व व्यवहारों से सर्वथा परे है। मूल बात भगवान या परमात्मा में जीवात्मा को मन बुद्धि के प्रयासों से जोड़ने की है। तन्मयता की है। भक्ति में प्रायः उतनी तन्मयता उत्पन्न नहीं हो पाती, जितनी वैरभाव में होती है, किन्तु वैर या साख्य वह भाव तो मन के हैं आत्मा के नहीं। अतः दोनों ही भावों का परिणाम एक ही है। मन व आत्मा का तन्मय हो जाना। तन्मयता से उत्पन्न प्रभावों

(साख्य में प्रसन्नता या आमोद और वैर में घृणा या क्रोध) को भी शरीर या मन ही अनुभव करता है, आत्मा नहीं—उसके लिए तो तन्मयता ही सत्य है। कारण जो भी हो, प्रभाव या परिणाम जो भी हो। कृष्ण से वैर के कारण शिशुपाल कृष्ण में इतना तन्मय रहता था, जितना भक्त भी प्रायःनहीं रह पाते, यही उसकी परम गति का कारण है। वास्तव में तुम्हारें मौसेरे भाई दन्तवक्त्र और शिशुपाल पहले भगवान के ही मुख्य पार्षद विजय और जय थे, जो ब्राह्मणों के शाप से पदच्युत हुए थे।'

'हे राजन! युधिष्ठिर द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर उन्हें नारद ने यह वृत्तांत सुनाया—'एक बार जय-विजय ने सनकादि ऋषियों को बालक समझ वैकुण्ठ में जाने से रोक दिया था, तब ऋषियों ने क्रुद्ध होकर उन्हें असुर योनि में जाने का शाप दिया था। जब वे वैकुण्ठ से नीचे गिरने लगे तो कृपालु ऋषियों ने शाप को तीन जन्मों तक सीमित कर दिया। सो पहले जन्म में वे दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष हुए, जिनका भगवान ने नरसिंह व वाराह अवतार लेकर उद्धार किया। दूसरे जन्म में वे विश्रवा मुनी की पत्नी केशिनी/(कैकसी) के गर्भ से रावण व कुम्भकर्ण के रूप में प्रकट हुए। उनका उद्धार भगवान ने श्रीराम का अवतार लेकर किया। इस बार वे क्षत्रियकुल में तुम्हारी मौसी के लड़के शिशुपाल व दन्तवक्त्र हुए और भगवान ने श्रीकृष्ण अवतार लेकर उनका उद्धार किया है। अब वे शाप मुक्त होकर फिर से श्री विष्णु के पार्षद हो गए हैं। तब युधिष्ठिर द्वारा पूछे जाने पर नारद जी ने हिरण्यकशिपु व प्रह्लाद की कथा सुनाई।'

नारद जी ने कहा—'अपने भाई हिरण्याक्ष विष्णु के वाराह अवतार द्वारा मारे जाने के बाद हिरण्यकशिपु अत्यंत क्रुद्ध हो गया और उसने ब्राह्मणों, वेदों, यज्ञों, गायों व धर्म का विध्वंस करने का आदेश अपने अनुचरों को दिया, क्योंकि धर्म, यज्ञ और ब्राह्मणों का धर्म-कर्म विष्णु के ही स्वरूप हैं। तब उसके अनुचर ऐसा ही करने लगे। अपनी माता और भाभी को भी हिरण्यकशिपु ने धैर्य बंधाया, क्योंकि वे हिरण्याक्ष की मृत्यु से दुःखी हो रही थीं। हिरण्यकशिपु ने समझाया कि—शरीर तो आत्मा का अस्त्र मात्र है, उसके लिए शोक उचित नहीं और आत्मा अनश्वर है सो उसके लिए शोक का प्रश्न ही नहीं। लोग शरीर को प्यार करते हैं, आत्मा तो दीख ही नहीं पाती। मृत्यु के बाद शरीर वहीं रहता है, आत्मा तब भी नहीं दीखती। अतः शोक व्यर्थ है। तब जाकर दिति और दिति की पुत्रवधू ने धैर्य धारण किया।

'हे युधिष्ठिर! फिर अमर होने की इच्छा से हिरण्यकशिपु ने मंदराचल की घाटी में एक पैर के अंगूठे पर खड़ा होकर और दोनों हाथ ऊपर उठाकर कठोर तप किया। क्योंकि तप से कुछ भी असम्भव नहीं है और मनोवांछित फल प्राप्ति का यह सीधा और निश्चित उपाय है। हिरण्यकशिपु की तपाग्नि से देवता व समस्त लोक जलने लगे, तब उन्होंने ब्रह्मा से शरण मांगी। तब ब्रह्मा ने देवताओं को आश्वासन दिया और हिरण्यकशिपु को तप से निवृत्त करने के लिए दर्शन दिए। ब्रह्मा के कहने पर

हिरण्यकशिपु ने कहा—'प्रभो! मुझे यह वर दीजिए कि मैं आपके बनाए किसी भी प्राणी से—वह मनुष्य हो या पशु, देवता हो या दानव, प्राणी हो या अप्राणी मृत्यु को प्राप्त न होऊं। भीतर, बाहर, दिन में, रात में, अस्त्र से, शस्त्र से, पृथ्वी या आकाश में—कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। मैं इन्द्र के समान महिमावान एकछत्र सम्राट बनूं तथा तपस्वियों व योगियों का अक्षय ऐश्वर्य मुझको प्राप्त हो।' तब ब्रह्मा ने हिरण्यकशिपु को वह दुलर्भ वर भी दे दिया और उसको स्वस्थ भी कर दिया, क्योंकि दीर्घ व कठोर तप से उसने पात्रता उत्पन्न कर ली थी, किन्तु दीमक आदि उसका शरीर चाट गए थे।

'ब्रह्मा के वरदान से निर्भय व स्वस्थ हो उस शक्तिशाली महादैत्य ने त्रिलोकी पर अधिकार कर लिया। कोई उसे युद्ध में पराजित न कर पाया। उसने लोकपालों की शक्ति छीन ली। इन्द्रादि देवताओं को भी दासत्व में ले लिया। वह यज्ञों की आहुतियां तक छीनने लगा। पृथ्वी, आकाश, सब उससे भय खाकर उसे इच्छानुसार मन चाहे पदार्थ देने लगे, परन्तु इन्द्रियों का दास होने से, उसकी फिर भी तृप्ति न हुई। देवता जब बहुत उद्विग्न हो गए तो भगवान विष्णु का स्मरण किया। तब आकाशवाणी द्वारा विष्णु ने उन्हें आश्वासन दिया—'चिन्ता मत करो! प्रतीक्षा करो। कुछ समय बाद मैं इस दैत्य का वध कर दूंगा। देवता, वेद, गाय, ब्राह्मण, साधु, धर्म, और मुझसे द्वेष करने वाला शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होता है।'

'हे युधिष्ठिर! हिरण्यकशिपु के चार पुत्रों में सबसे छोटा प्रह्लाद बड़ा गुणी, सौम्य, जितेन्द्रिय तथा भक्त था। उसके सद्गुणों को लोग आज भी अपनाते हैं। वह दैत्य होते हुए भी, कुलीन वंश का होते हुए भी बड़ा निराभिमानी और दयालु था। सबसे बड़ी बात वह भगवान विष्णु में अनन्य भक्ति रखता था। यह एक ही गुण उसकी महिमा दर्शाने के लिए बहुत है। हिरण्यकशिपु ऐसे साधु पुत्र को भी अपराधी बना कर उसके अनिष्ट का प्रयास करने लगा।'—युधिष्ठिर जी ने पूछा कि पिता होते हुए भी वह पुत्र का अनिष्ट क्यों करना चाहता था'—तब नारद जी ने बताया—

'दैत्यों के गुरु व पुरोहित शुक्राचार्य के दो पुत्र—शण्ड व अमर्क दैत्य बालकों को अध्ययन कराते थे। प्रह्लाद भी उनसे ही पढ़ता था। एक बार हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पूछा कि—'बेटा! बताओ तो तुम्हें क्या अच्छा लगता है? किस बात को तुम उचित समझते हो? तब प्रह्लाद ने कहा- 'प्राणी! 'मैं' और 'मेरे' के झूठे आग्रह में उद्विग्न होते हैं। अतः वे इन सबको छोड़कर भगवान विष्णु की शरण लें—मैं यही अच्छा व उचित समझता हूं।' तब दैत्यराज ने उसके गुरुओं को डांट लगाकर उसे गुरुकुल भेज दिया व कहा कि वे प्रह्लाद की शिक्षा पर उचित ध्यान दें।'

'गुरुकुल में गुरुओं ने प्रह्लाद से पूछा—'बेटा सत्य कहो। तुम्हारी बुद्धि विपरीत कैसे हो गई? क्या तुम को किसी ने बहका दिया है?' तब प्रह्लाद ने कहा—'आपको, मुझे और सभी को बुद्धि देने वाले नारायण हैं। उनमें आस्था रखने वाले को कौन बहका सकता है? आपको मेरी बुद्धि विपरीत जान पड़ती है, मुझे आपकी।' तब गुरुओं
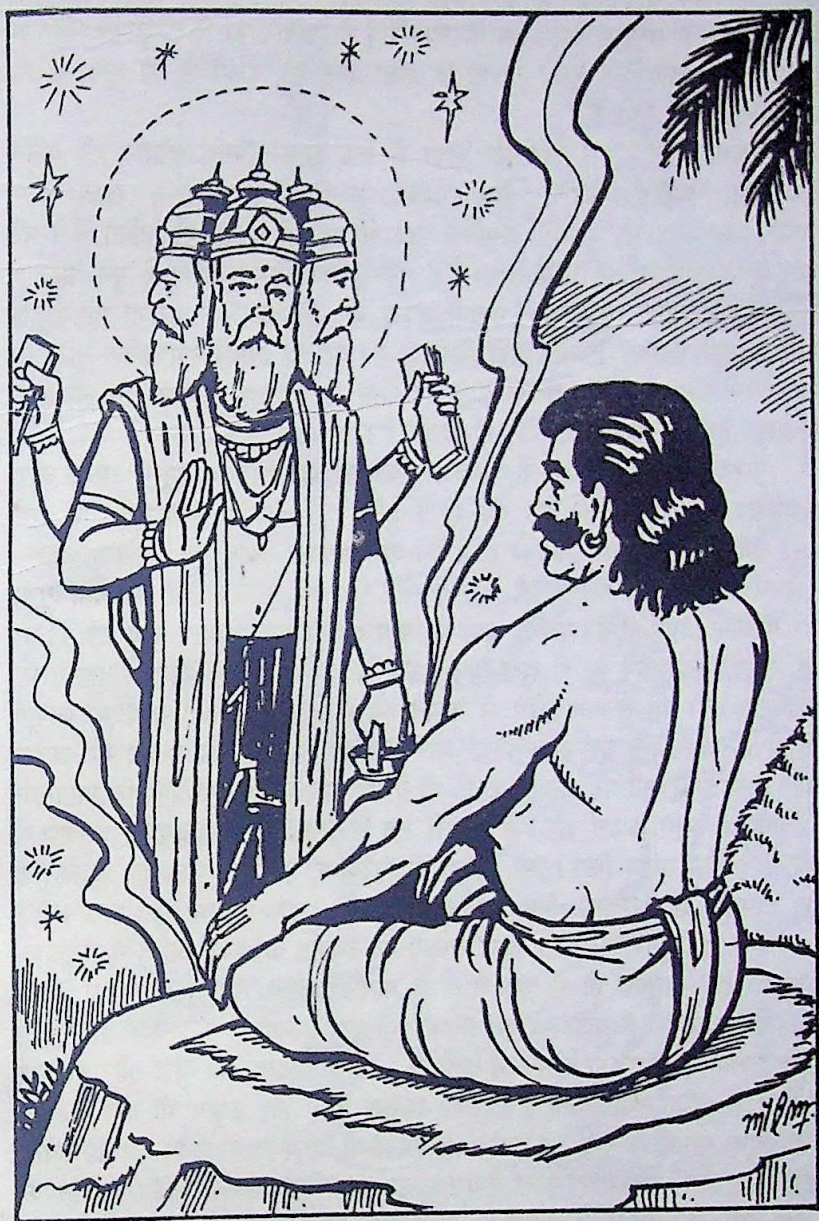
हिरण्यकशिपु द्वारा भगवान ब्रह्मा की आराधना करना तथा ब्रह्मा
हिरण्यकशिपु को वरदान देते हुए

ने प्रह्लाद को डांटा। डरा-धमका कर उसे अपने अनुसार—अर्थ, धर्म व काम सम्बन्धी शिक्षा दी। जब वे अपनी दी हुई शिक्षा से संतुष्ट हो गए तो प्रह्लाद को पुनः हिरण्यकशिपु के सम्मुख लाए। तब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद का सिर चूमकर प्यार से पूछा—'बेटा! इतने दिनों तुमने गुरुजी से शिक्षा प्राप्त की, उसमें से जो तुम्हें अधिक अच्छा लगा, वह क्या है?'

प्रह्लाद बोले—'इस व्यर्थ की शिक्षा से क्या लाभ? विष्णु भगवान की भक्ति के—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, अर्चन/पूजन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—यह नौ भेद हैं। समर्पित भाव से यह नौ प्रकार की भक्ति कैसे की जाए?—यह सिखाना ही उत्तम शिक्षा है।' यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने पुनः प्रह्लाद के गुरुओं को डांटा, तब उन्होंने अपनी सफाई देते हुए कहा—'महाराज! यह इसको किसी ने नहीं पढ़ाया? किसीने नहीं सिखाया है। यह तो इसकी स्वाभाविक बुद्धि है, अतः इसके लिए हम किस प्रकार दोषी हैं? पानी को कितना ही गरम कर लें, आग से उतर कर वह स्वभावतः ठंडा हो जाता है।'

नारद जी ने आगे कहा-'हे धर्मराज युधिष्ठिर! तब हिरण्यकशिपु ने अत्यंत क्रोध से प्रह्लाद से पूछा—'सत्य कह यह खोटी बुद्धि तुझे कहां से प्राप्त हुई?'

तब प्रहूलाद बोला—'सबको बुद्धि देने वाले भगवान वासुदेव हैं। अविद्या, अज्ञान व आसक्ति के कारण मनुष्यों को शुद्ध व सत्य बात भी खोटी मालूम होती है। स्वार्थ और परमार्थ विष्णु ही हैं। उनकी कृपा के बिना अज्ञान का अंधकार नष्ट नहीं होता। अतः उनकी कृपा पाने का ही सदा यत्न करना चाहिए—यही सब शास्त्रों व अध्ययनों का निचोड़ है। यह सुनकर क्रोध से कांपते हुए हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को अपनी गोद से उठाकर भूमि पर पटक दिया और सैनिकों को उसे मार डालने का आदेश दिया। प्रह्लाद के मर्मों पर आघात करके भी वे उसे मार न पाएं, क्योंकि वह ध्यानमग्न हो विष्णु का नाम जपता रहा। हे राजन! तब हिरण्यकशिपु ने दृढ़पूर्वक प्रह्लाद के हत्या के अनेक उपाय किए। उसे पहाड़ों से गिरवाया, हाथी के पैरों तले कुचलवाया गया, विषधरों से डसवाया, विष पिलाया, समुद्र में डुबोया। शम्बरासुर द्वारा अनेक मायाओं का तथा पुरोहितों द्वारा कृत्या राक्षसी का उपयोग करवाया, अग्नि में जलवाया, किन्तु भगवान वासुदेव ही में रमे रहने के कारण प्रहल्लाद सुरक्षित रहा।'

हिरणयकशिप ने थक-हार कर प्रह्लाद को पुनः गुरुओं के पास पढ़ने भेज दिया, क्योंकि उसके गुरु शण्ड व अमर्क ने कहा कि—'प्रायः अवस्था की वृद्धि और गुरुजनों की सेवा से बुद्धि सुधर जाती हैं। इसके अलावा और कोई उपाय भी क्या था? सो प्रह्लाद पुनः गुरुओं के पास आ गया। वह गुरुओं से अध्ययन के समय चुपचाप उनकी शिक्षा लेता और बाद में खेल के समय अन्य असुर बालकों को भक्ति व ज्ञान का उपेदश देता। वह कहता—'आत्मविद्या, कर्मकाण्ड, न्याय (तर्कशास्त्र), दण्डनीति आदि सब वेदों के प्रतिपाद्य विषय हैं, परन्तु यदि ये श्रीहरि के सम्मुख आत्मसर्मपण में

क्रोध से भरा हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लाद से प्रश्न पूछता हुआ

सहायक हैं तभी सार्थक हैं, अन्यथा निरर्थक और भ्रामक हैं क्योंकि मनुष्य जन्म का एक मात्र उद्देश्य ही माया व अविद्या को हटाकर अहं के आवरण को गिराकर आत्म साक्षात्कार करना तथा आत्मा को परमात्मा से मिलाना है। उपाय जो भी हो, लक्ष्य यही है और भगवान को प्रसन्न करने के लिए विशेष परिश्रम की भी आवश्यकता नहीं है, केवल अहं को त्याग देने की आवश्यकता है। यह ज्ञान ही भागवत धर्म है जो मुझे देवर्षि नारद के श्रीमुख से प्राप्त हुआ था।'

'जिज्ञासा प्रकट करने पर नारद जी ने अपने द्वारा प्रह्लाद को उपदेश देने का वृत्तांत भी सुनाया। जब हिरण्यकशिपु मंदराचल में भीषण तप द्वारा दिशाओं को भयभीत कर रहा था। उस समय इन्द्र ने प्रह्लाद की माता कयाधु को बन्दी बना लिया था। जब इन्द्र कयाधु को ले जा रहे थे, तब नारद उधर आ निकले और उनसे छोड़ देने को कहा। तब इन्द्र ने बताया कि उस कयाधु के गर्भ में हिरण्यकशिपु का प्रभावशाली वीर्य है। अतः प्रसव हो जाने के बाद वह बालक को मारकर कयाधु को छोड़ देगा। तब नारद ने बताया कि कयाधु के गर्भ में भगवान विष्णु का परमभक्त है। इस पर इन्द्र ने ससम्मान कयाधु को छोड़ दिया। तब हिरण्यकशिपु के तप निवृत्त होने तक कयाधु नारद जी के कहने पर उन्हीं के आश्रम में रही। उस समय नारद द्वारा कयाधु को दिए गए उपदेश को प्रह्लाद ने गर्भ में सुना। ऐसा ही नारद चाहते थे, अतः उन्होंने उपदेश दिया था।'' शुकदेव जी ने बताया—''जब हिरण्यकशिपु को गुरुओं द्वारा यह समाचार ज्ञात हुआ कि प्रह्लाद अन्य बालकों को भी उपदेश कर रहे हैं। तब वह अत्यंत क्रोधित हो उठा और प्रह्लाद को बुला कर कहा—'अरे उद्दण्ड! मेरी आज्ञा का उल्लंघन तूने किस बलबूते पर किया? समस्त त्रिलोक मेरा भय खाता है। मैं तुझको अभी यमराज के पास भेज दूंगा।'

'प्रह्लाद विनम्रता से बोले—'पिताजी! यह सब उसी के बलबूते पर सम्भव है, जो आपमें, मुझमें, हर किसी में, हर कहीं से व्याप्त है। वही एक मात्र परमशक्ति है, जिनको किसी का भय नहीं। अब आप भी अपना अहं व अज्ञान छोड़कर उन परमशक्ति विष्णु को पहचानिए और समता का भाव ले आइए। हिरण्यकशिपु यह सुनकर आग बबूला हो उठा—अरे! मन्दबुद्धि! तेरा वह हर जगह व्याप्त रहने वाला विष्णु भी अब तुझे मुझसे नहीं बचा सकता। बता क्या वह यहां है, जो तेरी रक्षा करेगा? अच्छा—अगर वह सर्वत्र है तो इस स्तम्भ में क्यों नही दीखता?—यह कहते हुए खड्ग हाथ में लिए प्रह्लाद की ओर बढ़ते हुए हिरण्यकशिपु ने उस स्तम्भ में जोर से मुक्का मारा। तब स्तम्भ में ब्रह्माण्ड को कंपा देने वाला बड़ा भयंकर शब्द हुआ और स्तम्भ से भगवान, नरसिंह के रूप में प्रकट हुए। हिरण्यकशिपु ने उनसे युद्ध करना चाहा, किन्तु नरसिंह ने उसे क्षणभर में पकड़कर उसे अपनी गोद में लिटाकर वज्र समान नाखूनों से फाड़ डाला। इस प्रकार हिरण्यकशिपु अपने महल की ड्योढ़ी पर (न बाहर न भीतर), सिंह की गोद में (न अस्त्र से, न शस्त्र से),

संध्याकाल में (न दिन में, न रात में), नरसिंह भगवान द्वारा (न पशु, न मानव, न देवता न राक्षस) (स्तम्भ से उत्पन्न होने के कारण वे न प्राणी थे, न अप्राणी और न ही ब्रह्मा से बनाए गए जीव थे) मार डाला। तब देवताओं, गंधर्वों आदि ने पुष्प वर्षा की। ब्रह्मा, रूद्र, पितरों, इन्द्र, ऋषियों, सिद्धों, नागों, विद्याधरों, चारणों, यक्षों, प्रजापतियों, मनुष्यों, किम्पुरुषों, किन्नरों, वैतालिको तथा भगवान के पार्षदों ने पृथक-पृथक उनकी स्तुति की।'

नारद जी ने कहा—'सब मिलकर भी अपनी स्तुतियों से नरसिंह प्रभु का क्रोध शांत न कर पाए। तब ब्रह्मा जी के कहने पर प्रह्लाद ने उनकी प्रेम. भाव से उनके स्वरूप भूतगुणों का वर्णन करते हुए स्तुति की और उनके चरणों में सिर झुका लिया। इस पर नरसिंह भगवान का क्रोध शांत हो गया और प्रसन्न होकर उन्होंने प्रह्लाद से वर मांगने के लिए कहा, किन्तु वरदान के लोभ को भक्ति में बाधक समझ कर प्रह्लाद ने ऐसा नहीं किया और कहा—'प्रभो! वर देना ही है तो यही वर दीजिए की आपके चरणकमलों से प्रेम के अलावा किसी कामना का बीज मेरे मन में अंकुरित ही न हो, क्योंकि कामना के उदय होते ही—इन्द्रिय, प्राण, मन, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, श्री, तेज, स्मृति, और सत्य ये सब नष्ट हो जाते हैं और कामनाओं के परित्याग से ही प्राणी आपके भगवत्स्वरूप को प्राप्त होता है।'

तब नरसिंह भगवान बोले—'प्रह्लाद तुम मेरे अनन्य भक्त हो और रहोगे। मेरे कहने से तुम एक मन्वन्तर तक दैत्याधिपति के भोगों को स्वीकार करो, तत्पश्चात प्रारब्ध कर्मों का क्षय करके तुम मुझको प्राप्त होगे। तुम्हारी निर्मल कीर्ति का देवता भी गान करेंगे। तुम्हारे द्वारा की गई स्तुति से मेरा कीर्तन करके तुम्हारा स्मरण करने वाले मनुष्य कर्मबन्धन से मुक्त हो जाएंगे' (लम्बी स्तुति होने के कारण स्थानाभाव से यहां उसे संग्रहित नहीं किया गया है। इच्छुक पाठक इसे मूल ग्रन्थ में देखें।)

तब प्रह्लाद ने कहा—'हे प्रभो! आप कृपापूर्वक यदि दे ही रहे हैं तो यह वरदान और दीजिए कि मेरे पिता के दोष नष्ट हो जाएं और वे शुद्ध हो जाएं। तब नरसिंह बोले—'तुम्हारे जैसे पुत्र के पिता होने से वे स्वयं पवित्र होकर तर गए हैं। उनकी 21 पीढ़ियों के पितर भी होते तो वे भी तर जाते।' तब प्रह्लाद के राज्याभिषेक के बाद बह्मा की स्तुति स्वीकार करके और स्वभाव में ही क्रूर असुरों को इस प्रकार का वर न देने का निर्देश देकर भगवान नरसिंह अन्तर्धान हो गए। इस आख्यान की श्रद्धा सहित सुनने वाला कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है तथा वैकुण्ठ को प्राप्त होता है। इस प्रकार तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैंने दे दिया। तुम्हारा सौभाग्य है कि भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण तुम्हारे साथ हैं। यही एकमात्र आराध्य देव हैं। पूर्व काल में मयासुर ने जब रूद्रदेव की कीर्ति में कलंक लगाना चाहा था, तब श्रीकृष्ण ने ही उनकी रक्षा व विस्तार किया था।'

'नारद जी से ऐसा सुनकर युधिष्ठिर ने यह प्रसंग सुनने की भी इच्छा व्यक्त

की थी।' तब नारद जी ने इस प्रकार कहा—'हे परीक्षित! एक बार समस्त असुर युद्ध में देवताओं से पराजित होकर मायावियों के परम गुरु मयदानव की शरण में आए। मयदानव ने लोहे, चांदी और सोने के तीन पुर बनाए जो समस्त सुविधाओं से सम्पन्न और विमानों की भांति आ-जा सकते थे। उन विमानों/पुरों के आने-जाने का पता तक न चलता था। दैत्य सेनापति उन विमानों के द्वारा, उनमें छिपे रहकर सबका नाश करने लगे। तब लोकपालों सहित समस्त प्रजा शंकर जी की शरण में आ गई। तब शंकर जी ने उनकी रक्षा के लिए त्रिपुरों पर बाण चलाया। उस एक ही बाण से कई बाण निकले, जिनसे तीनों पुर ढक गए और पुरवासी निष्प्राण हो कर नीचे गिर गए। महामायावी मय उन दैत्यों को उठा लाया और अपने बनाए हुए अमृत कुण्ड में डाल दिया, जिससे वे सब जीवन, स्वास्थ्य, तेज से युक्त हो कर खड़े हो गए। श्रीकृष्ण ने जब देखा कि शंकर भगवान का संकल्प पूरा नहीं हो पाया है। तब वे गाय के रूप में और ब्रह्मा बछड़े के रूप में त्रिपुर में गए और अमृतकुण्ड का सारा अमृत पी गए। कृष्ण की माया से कुण्ड के रक्षक उन्हें देख न पाए। फिर श्रीकृष्ण ने शंकर जी के धर्म से रथ, ज्ञान से सारथि, वैराग्य से ध्वजा, ऐश्वर्य से घोड़े, तपस्या से धनुष, विद्या के कवच क्रिया से बाण आदि बना कर दिए। तब शंकर भगवान ने रथ पर सवार होकर अभिजित मुहूर्त में बाण का संधान किया और तीनों दुर्भेध विमानों को एक ही बाण में भस्म कर दिया। इस प्रकार शिव ने 'पुहारि' व त्रिपुरारि' की पदवी प्राप्त की। सिद्धों गंधर्वों आदि ने पुष्प वर्षा की। इस प्रकार भगवान कृष्ण विभिन्न लीलाएं करते हैं और क्या सुनना चाहते हो?—सो कहो?''

'हे राजन! नारद जी के ऐसा कहने पर तुम्हारे दादा युधिष्ठिर ने वर्णाश्रमों के आचार तथा मनुष्यों के धर्म का निरूपण सुनना चाहा, क्योंकि धर्म से ही मनुष्य ज्ञान व भगवान को प्राप्त करता है और इस विषय में ब्रह्मपुत्र नारद से श्रेष्ठ उपेदश करने वाला उन्हें कौन मिलता। तब नारद जी ने जो कहा, वह सावधानी पूर्वक सुनो—शुकदेव जी बोले—

''नारद जी ने कहा—'अजन्मा भगवान सब धर्मों के मूल कारण है। जगत् कल्याण के लिए वे धर्म और मूर्ति के द्वारा अपने अंशावतार से बद्रिकाश्रम में तप कर रहे हैं। हे राजन! तत्ववेत्ता महर्षियों की स्मृतियां, आत्मग्लानि के स्थान पर आत्मप्रसाद की उपलब्धि कराने वाले कर्म और भगवान विष्णु यह तीन धर्म के आधार हैं। धर्म के तीस लक्षण हैं—सत्य, दया, तप, शौच, त्याग, संयम, सरलता, सेवा, सांसारिक भोग चेष्टाओं से शनैः शनैः निवृत्ति, अभिमान का त्याग, मौन, आत्मचिंतन, प्राणियों को अन्नादि का उचित विभाजन या उत्तरदायित्व तथा उनमें अपने इष्ट का भाव, भगवत् लीला का श्रवण, कीर्तन स्मरण आदि नौ प्रकार की भक्ति एवं आत्मसमर्पण। यह तीस लक्षण वाला परम धर्म है जो भगवान को प्रसन्न करता है।'

'जिन्हें ब्रह्मा संस्कार के योग्य स्वीकारते हैं, उन्हें द्विज या ब्राह्मण कहते हैं।
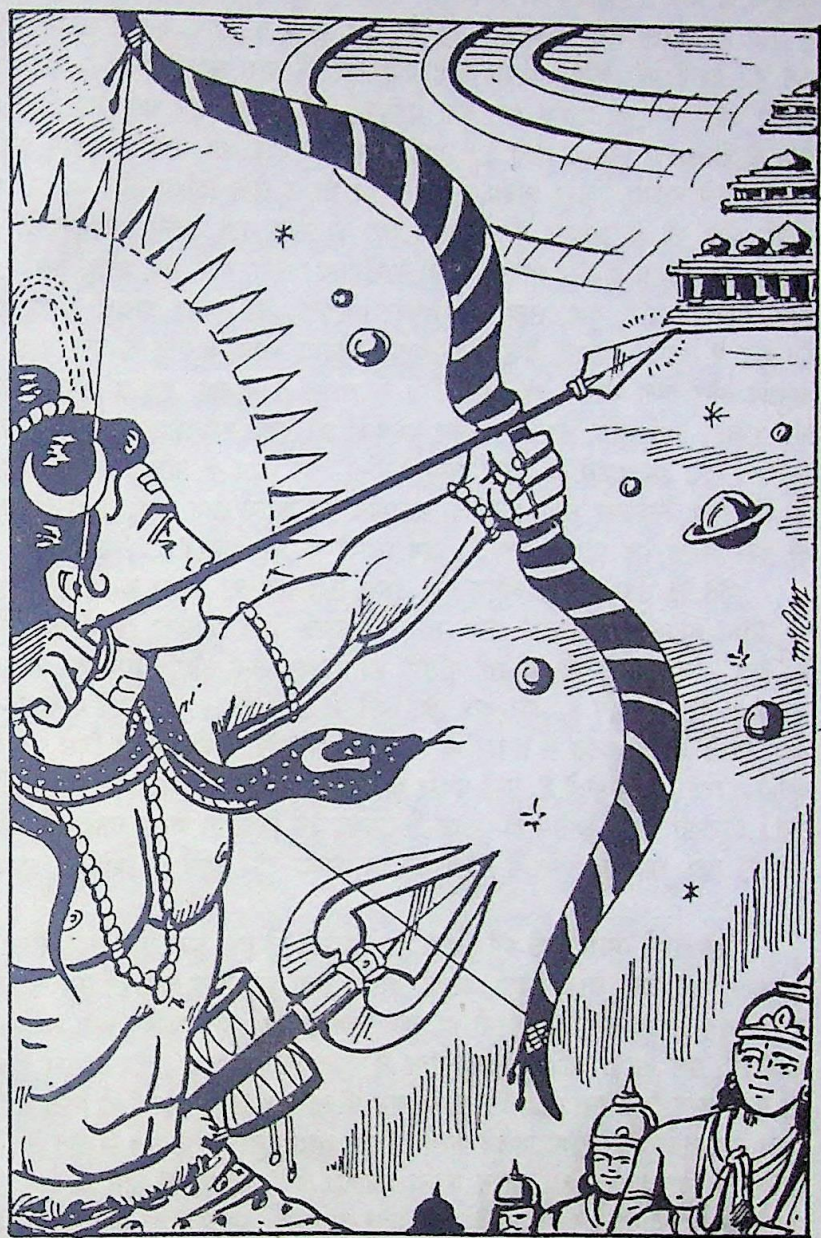
त्रिपुरासुर के महल को ध्वस्त करते भगवान शंकर

यज्ञ करना, दान देना, ब्रह्मचर्य, अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ कराना, दान लेना—यह ब्राह्मणों के कर्म हैं। क्षत्रिय को दान देना चाहिए, लेना नहीं चाहिए। ब्राह्मणों, राज्य व प्रजा की सुरक्षा तथा व्यवस्था, स्वयं को युद्ध योग्य व समर्थ बनाना क्षत्रियों के कर्म हैं। वैश्यों को—कृषि, व्यापार तथा पशुपालन के द्वारा अपनी जीविका चलानी चाहिए और लाभ का दशांश दान देना चाहिये। शूद्रों का एकमात्र धर्म सेवा ही है। सेवा से ही उनका निस्तार होता है। आपत्ति काल को छोड़ कर सभी को अपने कर्म पालन करने चाहिए, किन्तु क्षत्रिय को दान तब भी न लेना चाहिए और ब्राह्मण व क्षत्रिय दोनों को ही आपत्ति में भी निम्न वर्ण की सेवा नहीं करनी चाहिए क्योंकि ब्राह्मण—सर्ववेदमय है और क्षत्रिय (राजा) सर्वदेवमय। साम, दाम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, सत्य तथा भगवत्परायणता—यह ग्यारह ब्राह्मण के लक्षण है। युद्ध में उत्साह, वीरता, धैर्य, तेज, त्याग, मनोजय, क्षमा, ब्राह्मणों के प्रति भक्ति, अनुग्रह और प्रजा रक्षण—यह दस क्षत्रिय के लक्षण हैं। देवता, गुरु व भगवान के प्रति भक्ति, अर्थ, धर्म, काम इन तीन पुरुषार्थों की रक्षा उद्योगशीलता, व्यावहारिक निपुणता तथा ईमानदारी से उचित लाभ कमाना—यह वैश्य के पांच लक्षण हैं। शुद्र के—विनम्रता, निष्कपट सेवा, पवित्रता, मन्त्रहीन यज्ञ करना तथा सत्य, गौ व ब्राह्मण की रक्षा करना यह पांच लक्षण हैं। अब स्त्रियों के धर्म सुनो।'

'पति की सेवा, उसकी अनुकूलता, उसके रिश्तेदारों को प्रसन्न करना तथा घर की उचित व्यवस्था एवं उसके साथ सहवास, शुद्धता आदि पतिव्रता स्त्रियों का धर्म है। कुल परम्परा से चली आ रही वृत्तियों का आश्रय लेना और स्वधर्म का पालन करना ही विकास मार्ग है। बार-बार बोए जाने से जिस प्रकार खेत स्वयं शक्तिहीन हो जाता है अथवा बहुत से प्रकार के बीज एक ही भूमि में बो देने से जिस प्रकार वर्ण-संकरता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार वृत्ति या वर्ण विरुद्ध आचरण भी ठीक नहीं होते। उपरोक्त लक्षण जिसमें हों—उसी से उसका वर्ण निर्धारण करना चाहिए, उसके जन्म से नहीं, यह बात और है कि कीकर पर कीकर और आम पर आम ही आता है।'

'अब तुमसे आश्रमों के धर्म कहता हूं। ब्रह्मचारी को तप, पूजा, गुरु सेवा, संयम, स्वाध्याय, धर्म/ज्ञान चर्चा, भिक्षा, आज्ञा, विनीत तथा दृढ़ होना चाहिए। उसे शृंगार व स्त्री संग से बचना चाहिए। स्त्री या काम चर्चा से दूर रहना चाहिए तथा सात्विक भावों की रक्षा करनी चाहिए। अनुशासन में रहना चाहिए तथा शिक्षा समाप्त होने पर गुरुदक्षिणा देकर गुरु आज्ञा से गृहस्थाश्रम में आना चाहिए। गृहस्थ को नित्य यज्ञ, पूजन तथा धर्मपूर्वक जीविकोपार्जन करके परिवार तथा कुटुम्ब व समाज के प्रति अपने कर्तव्यों व उत्तरदायित्वों का पालन करना चाहिए। उत्तरदायित्वों की पूर्ति के बाद ही मनोरंजन या स्वाध्याय करना चाहिए। व्यवहार कुशलता, आश्रितों की आवश्यकताओं की पूर्ति, अतिथि सत्कार, भिक्षा व सार्मथ्यानुसार दान देना, सन्तानोत्पत्ति ऋतुमति

होने या पत्नी की इच्छा होने पर सहवास, मर्यादाओं की रक्षा आदि धर्म, गृहस्थाश्रम के लिए हैं। वानप्रस्थी को भूमि में उत्पन्न होने वाले अन्न नहीं खाने चाहिए। आग से पकाना या कच्चा अन्न भी न खाएं कन्द, मूल, फल आदि का सेवन करें। ऋतुप्रभावों को सहन करने की आदत डाले, केश-दाढ़ी व मूछं न कटवाएं, शृंगार छोड़ दें। परिवार के मोह को त्याग ईश्वर के मार्ग पर अधिकाधिक मन लगाएं। पुत्र द्वारा पूछे जाने पर ही परामर्श दें। पारिवारिक समस्याओं में लिप्त न हों, वृत्तों की आदत डालें, संयम करें और शनैः शनैः वैराग्य धारण करें। संन्यासी को गृह त्याग कर सर्वत्र विचरण करना अथवा वन या पर्वतों में चले जाना चाहिए। उसे एक ही स्थान पर अधिक समय नहीं ठहरना चाहिए। कन्द, मूल या भिक्षा द्वारा पेट भरना चाहिए। विरक्त और निरासक्त हो ईश्वर चिंतन में ही अधिकाधिक समय व्यतीत कर अन्त में पन्चमद्यभूतों को पन्चमहाभूतों में लौटा कर ईश्वर को ध्यान में रखते हुए परमात्मा में आत्मा को लीन कर देना चाहिए। संन्यासी को कम से कम वस्त्र पहनने चाहिए तथा समस्त का हितैषी होना चाहिए, भूमि शयन करना चाहिए।

'हे युधिष्ठिर! ऐसा ही उपदेश प्रह्लाद को दत्तात्रेय जी ने भी दिया था जो अवधूत रूप में उन्हें मिले थे। संसार मधुमक्खी की भांति संचय करता रहता है, किन्तु समय आने पर संचित मधु को कोई और ले जाता है। अतः बुद्धिमान को मधुमक्खी की भांति संचयी वृत्ति नहीं अपनानी चाहिए। अजगर की भांति सन्तोषी व सीमित आवश्यकता वाला होना चाहिए। जब जो मिल गया, जितना मिल गया खा लिया, नहीं मिला तो नहीं भी खाया। कम से कम वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम वालों को तो ऐसा करना ही चाहिए। सत्य का अनुसंधान करने वाले को भेद बुद्धि और अंहकार—इन दो को अवश्य ही त्याग देना चाहिए, क्योंकि यही दो माया के मूल हैं।'

''तब राजा युधिष्ठिर बोले—'देवर्षि जी! मेरे जैसा गृहासक्त गृहस्थ भी जिस प्रकार परम पद को प्राप्त कर सकता है? कृपया मुझसे वह उपाय कहिए, क्योंकि गृहस्थ में व्यावहारिकता के कारण भेदबुद्धि का त्याग व अहंत्याग तो प्रायः असम्भव-सा है।'

नारद जी ने कहा—'ऐसे में गृहस्थ को गृहस्थधर्मानुसार ही सब कार्य करने चाहिए, किन्तु उन्हें भगवान को समर्पित कर देना चाहिए तथा महात्माओं की सेवा करनी चाहिए। अवकाशानुसार विरक्त पुरुषों का संग करें और शनैः शनैः आसक्ति छोड़ता जाए। बुद्धिमानपुरुष घर और शरीर की उतनी ही सेवा करते हैं, जितना आवश्यक हो। भीतर से विरक्त रहते हुए बाहर से सभी के समान आचरण करें। उतने ही धन पर मनुष्य का अधिकार है जो उसकी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति कर दे। इससे अधिक धन सहजने वाला चोर ही है। गृहस्थ को भी धर्म, अर्थ व काम के लिए अधिक कष्ट नहीं उठाना चाहिए, प्रारब्धानुसार जो मिल जाए उसी में संतोष करना चाहिए। पन्चयज्ञ से बचे अन्न से ही जीवन निर्वाह करें। ब्राह्मण, अतिथि

व भगवान की पूजा करें। पितृगणों का समय पर श्राद्ध करें। इस प्रकार कर्मों में से कर्त्ताभाव हटा लें—और संदेह होते हुए भी विदेह के समान रहें।'

'अधर्म की पांच शाखाएं हैं। विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा और छल। अतः अधर्म की ही भांति इन पांच का अभित्याग करें। संकल्पों के परित्याग से काम को, कामनाओं के त्याग से क्रोध को, तत्व के विचार से भय को, 'अर्थ' को अनर्थ समझ कर लोभ को, आत्मविद्या से शोक और मोह को, संतोपासना से दम्भ को, मौन द्वारा योग के विघ्नों को तथा हिंसा को जीतना चाहिए। दुःख, निद्रा, तम, रज, सत्व आदि को भी जीतें। हे राजन! पांचों इन्द्रियां व मन अथवा काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ व मत्सर इन छह को जीत लेने पर भगवान अवश्य मिलते हैं। प्राणायाम—मन व प्राणों को संयमित करने का प्रभावशाली उपाय है। व्रत त्यागी ब्रह्मचारी, कर्मत्यागी ग्रहस्थ, गांव में रहने वाला तपस्वी/वानप्रस्थी और इन्द्रियलोलपु संन्यासी—ये चारों ही आश्रमों पर कलंक हैं। अतः इस विषय में सतर्क रहें। वैदिक कर्म—निवृत्ति व प्रवृत्ति परक दो है। प्रवृत्ति परक कर्म संसार में उलझाए रखते हैं, निवृत्ति परक मोक्ष की ओर ले जाते हैं। इसी प्रकार पितृयान और देवयान दो विरक्ति मार्ग हैं। द्वैत तीन प्रकार है—भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैत। मोक्ष चाहने वाले को द्वैतभाव छोड़ देने चाहिए। सत्संग अवश्य करना चाहिए, क्योंकि बिना सत्संग के विवेक नहीं होता, किन्तु सत्संग भी प्रभु की कृपा से ही सुलभ होता है।'

'हे युधिष्ठिर! संग के प्रभाव को मुझसे अधिक और कौन जान सकता है; क्योंकि मैं पहले महाकल्प में उपबर्हण नामक गंधर्व था और सदा स्त्रियों में ही रमा रहता था। देवताओं के यहां हुए ज्ञानसत्र में मैं स्त्रियों को सत्य लौकिक गीतों का गान करता हुआ जा पहुंचा। तब देवताओं के शाप से मेरा वैभव व सौंदर्य नष्ट हो गया और मैं शूद्र हो गया। किन्तु उस शूद्र जन्म में सन्तों महात्माओं की सेवा व संग के कारण मैं दूसरे जन्म में ब्रह्मा जी का पुत्र नारद हुआ। इस प्रकार संतों की अवहेलना और सेवा का प्रभाव मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। संत सेवा से भगवान सदा प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार तुम्हें गृहस्थों का पापनाशक धर्म बताया—जिसके आचरण से गृहस्थ भी सन्यासियों को मिलने वाले परमपद को अनायास ही प्राप्त कर लेता है। तुम पाण्ड़वों का अन्य मनुष्यों सहित बड़ा सौभाग्य है कि श्रीकृष्ण यहां निवास करते हैं। बड़े-बड़े ऋषि-महात्मा, जिन्हें खोजते फिरते हैं, वही तुम्हारें प्रिय, हितैषी, ममेरे भाई, गुरु और पूज्य हैं। शंकर तथा ब्रह्मा भी श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन नही कर सकतें।''

शुकदेव जी बोले—''इस प्रकार नारद का उपदेश सुनकर युधिष्ठिर को अत्यंत आनन्द हुआ और उन्होंने नारद व कृष्ण की पूजा की और श्रीकृष्ण को परब्रह्म जान आश्चर्यपूर्वक अत्यंत प्रेम से उनका सत्कार किया। हे परीक्षित! इस प्रकार तुमसे दक्ष पुत्रियों के वंशों का सब वर्णन मैंने किया। अब जो सुनना चाहते हो, सो कहो।''

□□

अष्टम स्कन्ध

परीक्षित ने कहा—"महामुने! आपने स्वायम्भुव मनु का वंश विस्तार तथा सृष्टि के विषय में सुनाया। अब आप हमसे अन्य मनुओं का वर्णन भी कीजिए। बीते हुए मन्वन्तरों में जो लीलाएं भगवान ने की, वर्तमान में जो कर रहे हैं तथा आगामी मन्वन्तरों में जो कुछ करेंगे, वह सब भी सुनाइए।"

शुकदेव जी बोले—"इस कल्प में छह मन्वन्तर बीत चुके हैं। इनमें से पहले स्वायम्भुव मनु के मन्वन्तर का वर्णन तुमसे कर चुका हूं। इनकी पुत्री देवहूति से कपिल मुनि भगवान हुए थे और आकूति नाम की पुत्री से यज्ञपुरुष। मनु फिर राजपाठ छोड़कर अपनी पत्नी शतरूपा के साथ तप को चले गए थे। तब तप की स्थिति में उन्हें खाने को असुर व राक्षस वहां आ धमके। यज्ञपुरुष ने अपने पुत्रों-याम नामक देवताओं के साथ वहां आकर असुरों का संहार किया और उनकी रक्षा की। फिर वे इन्द्र के पद पर शासन करने लगे।'

'दूसरे मनु अग्नि पुत्र स्वारोचिष हुए। उनके पुत्र—द्युमान, सुषेण व रोचिष्मान् आदि हुए। उनके मन्वन्तर में इन्द्र का नाम रोचन था तथा तुषित तथा प्रधान देवता थे। ऊर्जस्तम्भ व वेदवादीगण सप्तऋषि थे। उस मन्वन्तर में वेदशिरा ऋषि की पुत्री तुषिता से भगवान विभु नाम से अवतरित हुए। वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे। तीसरे मनु राजा प्रियव्रत के पुत्र उत्तम हुए। उनके पुत्र—यज्ञहोत्र, पवन व सृन्जय आदि थे। उस मन्वन्तर में प्रमद आदि वशिष्ठ पुत्र सप्तऋषि, सत्य, वेदश्रुत व भद्र नामक प्रधान देवता और सत्यजित् नामक इन्द्र था। तब धर्म की पत्नी सूनृता के गर्भ से भगवान सत्यसेन नाम से अवतरित हुए थे। उनके साथ सत्यव्रत नाम के देवगण थे। तब सत्यजित् के सखा बनकर उन्होंने राक्षसों, भूतगणों व दुष्ट यक्षों का संहार किया था।'

'चौथे मनु उत्तम के सगे भाई तामस थे। उनके दस पुत्र पृथु, ख्याति, नर व केतु आदि थे। उस मन्वन्तर में इन्द्र का नाम त्रिशिख था तथा सत्यक, हरि और

वीर नामक प्रधान देवता थे। तब ज्योतिर्धाम आदि सप्तऋषि थे। उस मन्वन्तर मे विधृति के पुत्र वैधृति नाम के और भी देवता हुए थे। उन्होंने समय के फेर से नष्टप्रायः, वेदों की रक्षा की थी। तभी हरिमेधा ऋषि की पत्नी हरिणी के गर्भ से भगवान ने हरि नाम से अवतार लिया था और ग्राह से गजेन्द्र की रक्षा की थी।" परीक्षित ने जिज्ञासा प्रकट करने पर शुकदेव ने ग्राह-गजेन्द्र प्रसंग सुनाया—शुकदेव जी ने कहा—"क्षीर सागर में त्रिकूट नामक एक पर्वत था। त्रिकूट की तलहटी में वरुण जी का ऋतुमान नामक उद्यान था, जिसमें बहुत से सरोवर थे। उस पर्वत और उद्यान की छटा निराली थी। देवांगनाएं और गंधर्व वहां क्रीड़ा करते थे। उस पर्वत के घोर वन में बहुत-सी हथिनियों के साथ बहुत शक्तिशाली हाथियों का राजा गजेन्द्र रहता था। एक दिन वह जल पीने के बाद सरोवर में क्रीडा कर रहा था, तब वहां रहने वाले ग्राह (मगरमच्छ) ने उसका पैर पकड़ लिया और उसे जल के भीतर खींचने लगा। गजेन्द्र बहुत शक्तिशाली था, पर ग्राह भी कम न था और फिर जल में ग्राह की शक्ति और भी बढ़ जाती है। अतः बहुत संघर्ष के बाद भी हाथी अपना पांव न छुड़ा सका। हथिनियां व उनके बच्चे यह देखकर बहुत दुःखी हुए। कई दिन की खींचतान के बाद गजेन्द्र शिथिल हो गया। उसकी शक्ति का गर्व चूर हो गया। ग्राह उसे बराबर पानी में खींच रहा था। कोई आसरा न देख और स्वयं को असहाय पाकर उसने समस्त आश्रयदाताओं को भी आश्रय देने वाले भगवान विष्णु का स्मरण किया। हृदय को एकाग्र करके उसने पूर्वजन्म में सीखे श्रेष्ठ स्तोत्र के जप द्वारा विष्णु की स्तुति की।' यह स्तुति 'गजेन्द्र स्तोत्र के नाम से विख्यात है।

'हे राजन! गजेन्द्र की स्तुति सुनकर भगवान विष्णु गरुड़ पर सवार होकर वहां आए। उनकी स्तुति करते हुए बहुत से देवता भी वहां आ पहुंचे। गजेन्द्र ने भगवान के दर्शन पाकर बड़े कष्ट से सरोवर से एक कमल तोड़कर सूंड द्वारा उनको अपर्ण कर प्रणाम किया। उसे अति कष्ट में देखकर भगवान गरुड़ से कूद पड़े और शीघ्रतापूर्वक उसे जल से निकाल लिया। सुदर्शन चक्र से भगवान ने ग्राह का मुंह चीर दिया। उस समय ब्रह्मा, शंकर आदि देवताओं व ऋषियों ने विष्णु जी की प्रशंसा की और पुष्पवर्षा की। इधर वह ग्राह भी सुदर्शन चक्र से मारा जाकर दिव्य शरीर से सम्पन्न हो गया, क्योंकि वह पहले 'हूहू' नाम का गंधर्व था। देवलऋषि के शाप से ग्राह रूप को प्राप्त हो गया था। शाप मोचन का उद्धार हो जाने से उसने भी भगवान के चरणों में प्रणाम किया और अपने लोक को चला गया। भगवान के स्पर्श से गजेन्द्र भी अज्ञानबंधन से मुक्त हो गया। वह पूर्व जन्म में द्रविण देश का पाण्ड्यवंशी राजा इन्द्रद्युम्न था, जो राजपाठ छोड़कर बाद में संन्यासी हो गया था। जब वह मलयपर्वत पर मौनव्रत धारण करके तप कर रहा था—तब वहां आए अगस्त्य ऋषि ने उसे देखा

भगवान विष्णु ग्राह से गजेन्द्र की रक्षा करते हुए

और कुद्ध हो गए। उन्होंने कहा—'यह राजा प्रजापालन, गृहस्थोचित, अतिथि सेवा आदि धर्मों का परित्याग कर यहां एकान्त में अभिमान वश (बिना गुरु से दीक्षा लिए मनमाने ढंग से) तप कर रहा है। अतः यह जड़बुद्धि अज्ञानमयी हाथी हो जाए।'

'इस प्रकार शापवश इन्द्रद्युम्न हाथी हो गया, किन्तु उपासना के कारण उसे भगवान की स्तुति का स्मरण हो गया। गजेन्द्र का उद्धार करके भगवान ने उसे पार्षद बना लिया। यह गजेन्द्र उद्धार की कथा यश उन्नति व स्वर्ग दिलाने वाली, दुःस्वप्न विपत्ति से छुटकारा दिलाने वाली है। भगवान ने गजेन्द्र से स्वयं कहा था—'जो ब्रह्ममुहूर्त में जागकर तुम्हारें स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा, उन्हें अन्त समय में मैं निर्मल बुद्धि प्रदान करूंगा।' (लम्बा होने के कारण स्थानाभाववश यह स्तोत्र यहां नहीं दे रहे हैं। इच्छुक पाठक इसे मूलग्रन्थ में या इसी प्रकाशन की अन्य पुस्तक 'स्तोत्र-सागर' में देखें।)

'अब रैवत मन्वन्तर के विषय में सुनो, क्योंकि पांचवें मनु का नाम रैवत था। ये चौथे मनु तामस के भाई थे। उनके अर्जुन, विन्ध्य, बलि आदि कई पुत्र थे। तब विभु नामक इन्द्र था। भूतरय आदि प्रधान देवगण तथा ऊर्ध्वबाहु, वेदशिरा व हिरण्यपरोमा आदि सप्तऋषि थे। इन्हीं में शुभ्र नामक ऋषि की पत्नी विकुण्ठा के गर्भ से भगवान वैकुण्ठ नामक अवतार के रूप में वैकुण्ठ देवताओं सहित अवतरित हुए और लक्ष्मी देवी की प्रार्थना पर उन्हें प्रसन्न करने के लिए समस्त लोकों में श्रेष्ठ वैकुण्ठ धाम की रचना की। छठा मन्वन्तर चाक्षुष मन्वन्तर कहा गया, क्योंकि चक्षुपुत्र चाक्षुष इसके मनु हुए—जिनके पुरु, पुरुष तथा सुद्युम्न आदि कई पुत्र थे। मन्त्रद्रुम उस समय इन्द्र और आप्य आदि प्रधान देवता हुए। हविष्यमान् तथा वीरक आदि तब सप्तऋषि थे। इस मन्वन्तर में वैराज की पत्नी—सम्भूति के गर्भ से भगवान अजित् नाम से अवतरित हुए। इन्होंने समुद्र मंथन कर देवताओं को अमृत पिलाया था। कच्छप रूप धारण कर समुद्र मंथन के लिए मथनी बने मंदराचल का वे ही आधार बने थे।''

राजा परीक्षित ने कहा—''यह समुद्र मंथन की कथा तो बड़ी अद्‌भुत मालूम पड़ती है, जिसमें मंदराचल जैसे विशाल पर्वत को ही मथनी बनाया गया और भगवान को कछुए का रूप धारण कर उस मथनी का आधार बनना पड़ा। उन्होंने किस प्रकार अमृत निकाला? अमृत के अलावा भी मंथन से और क्या-क्या प्राप्त हुआ? यह प्रसंग सुनने की बड़ी उत्कंठा हो रही है। कृपापूर्वक हमें यह भी सुनाइए।''

सूत जी बोले—''हे शौनक आदि ऋषियों! श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित की इस उत्कंठा और प्रश्नों का अभिनंदन किया और उनको समुद्र मंथन लीला का वर्णन सुनाते हुए कहा—'पूर्वकाल में जब देवता असुरों से हार गए और बहुत से रणभूमि में गिरकर उठ न सके—तब इन्द्र भी त्रिलोकी सहित दुर्वासा ऋषि के शाप

के कारण श्रीहीन हो गये तो वे अन्य देवगणों के साथ ब्रह्मा जी की शरण में गए। ब्रह्मा जी उन सबके साथ भगवान की शरण में वैकुण्ठ पहुंचे। स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किए तब भगवान ने प्रकट होकर कहा—'यह समय दैत्यों के उत्कर्ष का है। अतः अपना अभ्युदय काल आने तक तुम उनसे सन्धि कर लो। सन्धि कर तुम अमृत निकालने का प्रयत्न करो। उसे पीने से अमरत्व प्राप्त होता है। दैत्यों के सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव नहीं होगा। अतः उनसे सन्धि कर उन्हें समुद्र मंथन करने को राजी करो। क्षीरसागर में सब प्रकार की औषधियां आदि डालो। मंदराचल को मथनी बना कर, नागराज वासुकी को रस्सी की भांति प्रयुक्त करके, मेरी सहायता से मंथन करो। अमृत तुम्हें ही मिलेगा, दैत्यों को केवल श्रम प्राप्त होगा, क्योंकि वे उसके अधिकारी नहीं हैं। अमृत से पूर्व कालकूट विष निकलेगा, किन्तु तुम भयभीत न होना। अन्य और भी निकलने वाली वस्तुओं का लोभ नहीं करना। अब मेरे कहे अनुसार कार्य करो। तुम्हारा कल्याण होगा।'

'हे परीक्षित! तब देवताओं ने ऐसा ही किया। अमृत के लोभ से दैत्य सन्धि कर मंथन को तैयार हो गए। उन्होंने अपनी शक्ति से मंदराचल को उखाड़ दिया और दैत्यराज बलि के नेतृत्व में उसे ले चले, किन्तु वह स्वर्णिम मंदराचल पर्वत अत्यंत भारी था। बलि व इन्द्र आदि दैत्य-देवता उसे उठाकर अधिक दूर न ले जा पाए। तब भगवान गरुड़ पर उस पर्वत को एक हाथ से उठाकर अत्यंत ही सरलता से क्षीरसागर ले आए। नागराज वासुकी को अमृत प्राप्ति के बाद हिस्सा देने की शर्त पर सुरासुरों ने रस्सी बनने को मना लिया। समुद्र मंथन आरम्भ करने के लिए भगवान ने युक्ति अनुसार देवों को वासुकी के मुख की ओर भेज दिया। तब असुरों ने कहा कि वे पूंछ नहीं पकड़ेगे, क्योंकि सांप का अशुभ अंग है। अतः वे वासुकी के फन की ओर देवता पूंछ की ओर आ गए, ऐसा ही भगवान चाहते थे। भगवान स्वयं कछुए के रूप में मंदराचल का आधार बने और मंथन आरम्भ हुआ। तब भगवान ने देवताओं में उत्साह के लिए देवरूप से प्रवेश किया, असुरों में शक्तिवर्धन के लिए असुर रूप से तथा मंदराचल में दृढ़ता के रूप से प्रवेश किया और वासुकी में कष्ट न होने के लिए निद्रा रूप से प्रवेश किया। सहस्रबाहु रूप से वे मंदराचल को ऊपर से दबाकर खड़े हुए। इस प्रकार मंथन कार्य आरम्भ हुआ। मंथन से समुद्र के जीव क्षुब्ध हो गए। वासुकी के हजारों मुखों, नेत्रों व श्वास से विषाग्नि निकलने लगी (इसी कारण युक्ति से भगवान ने देवताओं को पूंछ की ओर रखा था)। उस विषाग्नि के धुएं व तपिश से—पौलोम, कालेय, बलि तथा इल्वल आदि असुर निस्तेज हो गए। मंथन क्रिया बढ़ने पर बढ़ी विषाग्नि के प्रभाव से देवता भी निस्तेज होने लगे, तब भगवान की प्रेरणा से बादल देवताओं पर शीतल जल की वर्षा करने लगे।'

'मंथन से सर्वप्रथम हलाहल नामक उग्र विष निकला। वह समस्त दिशाओं में फैलने लगा। उससे बचने का कोई उपाय न देखकर भयभीत प्रजा सदाशिव की शरण में गई। प्रजापतियों ने उनकी स्तुति की तब शिव जी ने प्रसन्न कर सती से कहा—'प्रिये! मैं सबके कल्याणार्थ प्रजा का संकट दूर करने के लिए इस कालकूट विष का पान करूंगा।' इस प्रकार कहकर उन्होंने जल के पाप/मल उस हलाहल को पी लिया। उस विष को कण्ठ में ही धारण कर लेने से उनका गला नीला पड़ गया और वे नीलकण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके इस अद्भूत कर्म की ब्रह्मा व अन्य देवताओं और प्रजा सहित स्वयं भगवान विष्णु ने भी बड़ी प्रशंसा की। विषपान के समय जो कुछ बूंदें नीचे गिर गईं, उनसे बिच्छु-सर्प आदि विषैले प्राणी और विषैली औषधियां उत्पन्न हुए।"

शुकदेव ने आगे कहा—"इस प्रकार समुद्र मंथन का कार्य शिव कृपा से फिर आरम्भ हुआ। तब समुद्र से कामधेनु प्रकट हुई, जिसे ब्रह्मवादी ऋषियों ने ग्रहण किया। फिर श्वेत वर्ण का उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला, जिसे दैत्यराज बलि ने ले लिया। तदुपरांत चार दांत वाला श्वेत हाथी ऐरांवत निकला—जिसे इन्द्र ने ले लिया। फिर कौस्तुभ मणि निकली, जिसे हृदय पर धारण करने के लिए स्वयं अजित (विष्णु) भगवान ने ले लिया। इसके बाद स्वर्गलोक की शोभा बढ़ाने वाला कल्पवृक्ष निकला। (कल्पवृक्ष और कामधेनु—इच्छित वस्तु दे देने वाले कहे गए हैं)। देवताओं को सुख पहुंचाने वाली अप्सराएं निकलीं, फिर लक्ष्मी देवी निकलीं—जिन्हें लेने के लिए सबने उत्सुकता दिखाई, किन्तु लक्ष्मी जी ने स्वेच्छा से अपने योग्य एक मात्र वर भगवान विष्णु का वरण कर लिया। तत्पश्चात् कमलनयनी वारूणी देवी प्रकट हुईं, जिन्हें दैत्यों ने ले लिया। इसके बाद मंथन से विष्णु भगवान ने अंशावतार भगवान धन्वन्तरी अमृतकलश लेकर प्रकट हुए। (मंथन द्वारा चन्द्रमा के निकलने की कथा भी कुछ पुराणों में आती हैं, जिसे कण्ठ मस्तक पर धारण किए विष की अग्नि को शांति के लिए भगवान शिव ने लेकर मस्तक पर धारण किया था। इस प्रकार कुल 14 रत्न मंथन से प्रकट हुए थे।) अमृतकलश पर दृष्टि पड़ते ही दैत्यों ने कलश झपट लिया।

'देवता यह देख उदास हो गए, तब भगवान ने कहा—"तुम लोग निश्चिंत रहो, मैं अपनी माया से इनमें फूट डालकर अभी तुम्हारा काम बना देता हूं। इधर दैत्यों में पहले कौन अमृत पिए इस बात पर झगड़ा होने लगा? तब भगवान अत्यंत कामोत्तेजक व मोहक स्त्री का रूप लेकर मोहिनी बनकर दैत्यों को लुभाने लगे। तब दैत्यों ने अमृत कलश मोहिनी को वितरण के लिए सौंप दिया। वे उसकी बातों में आ गए और रूप जाल में फंस गए। मोहिनी के रूप में भगवान ने सुरों व असुरों को अलग-अलग पंक्तियों में बैठा दिया और जन्म से ही क्रूर स्वभाव वाले असुरों

को अमृत देना सांप को दूध पिलाने के समान घातक समझ कर देवताओं को ही केवल अमृत पिलाने लगे। दैत्य सेनापति राहू यह चाल भांप गया और देवताओं के भेष में देवपंक्ति में जा बैठा। उसने अमृत पिया ही था कि उसकी अगल-बगल बैठे सूर्य व चन्द्रमा ने उसे पहचान कर उसकी पोल खोल दी। भगवान ने तुरन्त सुदर्शन चक्र से राहू की गर्दन काट डाली। अमृत के प्रभाव से राहू मरा नहीं, किन्तु भगवान के चक्र के आघात से अछूता भी न रह पाया। अतः उसका सिर धड़ से जुड़ा नहीं—अलग होकर भी जीवित रहा। (कुछ पुराण उसके धड़ को 'केतु' कहते हैं। यहां केवल सिर का ही वर्णन किया गया है।) ब्रह्मा जी ने तब उसे ग्रह बना दिया। वह पूर्णिमा व अमावस में चांद-सूरज पर 'ग्रहण' रूप में हमला करता है।

'हे राजन!' इस प्रकार एक ही स्थान पर, एक ही समय में, एक ही कर्म करने के बाद भी, एक ही लक्ष्य होने के और एक ही उपाय होने के बाद भी परिणाम में बड़ा भेद हो गया। भगवान के चरण कमलों का आश्रय लेने के कारण देवताओं को बड़ी सुगमता से अमृत प्राप्त हो गया। परन्तु उससे विमुख होने के कारण असुरगणों को अमृत मिल कर भी नहीं मिला। अतः मनुष्य को सबकर्म भगवान का आश्रय लेते हुए करने चाहिए।''

शुकदेव जी आगे बोले—''कार्य सम्पन्न हो जाने पर भगवान वहां से चले गए। दैत्य शत्रुओं की सफलता सह न पाए और उन्होंने देवताओं पर आक्रमण कर दिया। (किन्तु देवता तो अमर हो चुके थे।) क्षीरसागर के तट पर हुआ वह भयंकर संग्राम 'देवासुर संग्राम' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बलि से इन्द्र, तारकासुर से स्वामी कार्तिक, हेति से वरुण, प्रहेति से मित्र, कालनाभ से यमराज, मय से विश्वकर्मा, शम्बरासुर से त्वष्टा, विरोचन से सविता, वृषपर्वा से अश्विनी कुमार, बाण से सूर्य, पुलोमा से वायु, राहू से चन्द्रमा, शम्भु व निशम्भु से भ्रदकाली, जम्भासुर से शिव, महिषासुर से अग्नि, वातापि और इल्वल से मरीचि आदि ब्रह्मापुत्र, दुर्मर्ष से कामदेव, उत्कल से मातृगण, शुक्राचार्य से बृहस्पति, नरकासुर से शनैश्चर, निवात कवचों से मरुद्गण, कालेयों से वसुगण, पौलोमों से विश्वेदेवगण तथा क्रोधवशों से रूद्रगण भिड़ गए। भंयकर युद्ध हुआ। यद्यपि यह सब दैत्य देवताओं को युद्ध में कई बार हरा चुके थे, किन्तु उस युद्ध में उनकी दाल न गली। विवश होकर तब दैत्यों ने मायायुद्ध का आश्रय लिया। बहुत बड़ी माया की काट न कर पाने से इन्द्रादिदेवता जड़वत हो गए। तब उन्होंने भगवान विष्णु का स्मरण किया। विष्णु जी गरुड़ पर वहां आ पहुंचे। उनके चक्र घुमाते ही असुरों की माया नष्ट हो गई। कालनेमि दैत्य ने उन पर त्रिशूल फेंका, जिसे भगवान ने खेल-खेल में पकड़कर उसी को दे मारा। कालनेमि को मरता देख माली व सुमाली दैत्य भगवान पर झपटे, किन्तु वे भी मारे गए। तब माल्यवान दैत्य

ने अपनी प्रचण्ड गदा का प्रहार गरुड़ पर करना चाहा, किन्तु उससे पूर्व ही सुदर्शन चक्र ने उसकी गर्दन काट डाली। इससे देवताओं में उत्साह छा गया तब जोश में आकर इन्द्र ने बलि पर वज्र प्रहार करने के लिए वज्र उठा लिया, इससे सारी प्रजा में हा-हाकर मच गया।'

'बलि ने निर्भयतापूर्वक इन्द्र पर बाण छोड़े। इन्द्र ने आहत हो कर वज्र प्रहार किया। बलि पंख कटे पर्वत की भांति चोट खाकर गिरा तो उसका जम्भासुर उसकी मृत्यु का बदला लेने आ पहुंचा। उसने इन्द्र की हंसली पर गदा मारी और ऐरावत पर भी वार किया। ऐरावत गदा के प्रहार से मूर्च्छित हो गया। तब इन्द्र का सारथी मातलि रथ ले आया। जम्भ ने मातलि पर त्रिशूल से वार किया जिसे वह सह गया। तब इन्द्र ने क्रोधित होकर वज्र से जम्भ का सिर काट लिया। नारद द्वारा जम्भ की मृत्यु का समाचार पाकर उसके भाई बन्धु—नमुचि, बल और पाक भी रणभूमि में आ गए। उन्होनें अपने बाणों से मातलि व इन्द्र के रथ के घोड़ों को घायल कर दिया और उसने रथ को बाणों के पिजरें में घेर लिया किन्तु इन्द्र ने पाक और बल का भी वज्र से वध कर दिया। तब नमुचि क्रुद्ध होकर कर त्रिशूल लिए लपका। इन्द्र ने वज्रप्रहार किया, लेकिन नमुचि को कोई असर न हुआ, जिससे इन्द्र भयभीत हो गया। तब आकाशवाणी हुई कि नमुचि को वरदान प्राप्त है—वह न सूखी वस्तु से मरेगा न ही गीली से। तब इन्द्र ने विचार करके समुद्र फेन से नमुचि का सिर काट डाला। तब उस समय ऋषियों आदि ने इन्द्र पर पुष्प वर्षा की। अन्य देवताओं ने भी अमृत के प्रभाव से स्वयं सुरक्षित रहते हुए अपने-अपने प्रतिद्वन्दियों को मार गिराया। ब्रह्मा ने देखा कि दैत्यों का सर्वथा नाश होने वाला है। अतः नारद को भेज कर उन्होंने युद्ध बन्द करवा दिया।'

'युद्ध बन्द होने पर देवता स्वर्ग लौट गए और बचे-खुचे दैत्य बलि आदि के शवों के साथ अस्ताचल को चले गए। वहां दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने मृत संजीवनी विद्या द्वारा सभी मरे हुए असुरों को फिर से जीवित कर दिया। इस प्रकार पराजित हो जाने पर भी दैत्यों व असुरों को कोई खेद नहीं हुआ।'

'हे राजन! जब भगवान शिव को इस घटना का पता चला तो उन्होंने विष्णु जी का वह मोहिनी रूप देखने की इच्छा व्यक्त की, जिसे देखकर असुरों ने विमोहित होकर अमृत कलश उन्हें सौंप दिया था। विष्णु जी बोले—'हे महादेव! कामभाव को अत्यंत उत्तेजित कर देने वाला वह रूप यद्यपि कामी पुरुषों को ही आदरणीय है तो भी आपने इच्छा प्रकट की है। अतः आपको मैं वह रूप अवश्य दिखाऊंगा और अन्तर्धान हो गए।' कुछ समय बाद उन्होंने एक अत्यंत मनमोहक स्त्री को गेंद से खेलते हुए देखा। उछल कूद में उसके सुघड़ स्तनों पर लटके हार हिलते और स्तनों

भगवान विष्णु के मोहिनी रूप पर मुग्ध होते हुए भगवान शंकर

में बड़ा कामुक स्फुरण होता। पतली कमर मानो स्तनों के बोझ से लचक-लचक जाती। विस्तृत, दीर्घ, और सुडौल नितम्बों में उसके चलते समय कुछ इस प्रकार का आंदोलन होता है कि पूरा ब्रह्मांड कंपकंपा जाता। होंठ, नाक, कपोल, ग्रीवा, नेत्र, केश उसके सभी अंग कमनीय थे, उस पर वायु के झोकों से उसका रेशमी वस्त्र उन्नतकुच मण्डलों से सरक-सरक जाता था। शिव उसे देख ऐसे मग्न हुए कि पास बैठे गणों व सती का भी स्मरण न रहा। वे अपने आपको वश में न रख सकें और उसे बाहुपाश में भरने को उसके पीछे दौड़ने लगे। उनका अमोघ वीर्य उस मोहिनी की माया से स्खलित हो गया। जहां-जहां वह वीर्य गिरा-वहां सोने-चांदी की खानें बन गई। वीर्यपात होकर शिव का विवेक जागृत हुआ और उन्हें वास्तविकता का ज्ञान हुआ। तब भगवान विष्णु के प्रति उन्हें बहुत आन्नद हुआ। उन्होंने लज्जा का नहीं, आमोद का अनुभव किया और वह उस प्रसंग से अलग हो गए।'

'तब भगवान ने पुरुष रूप में आकर कहा—'मेरी मोहिनी रूप की माया से विमोहित होकर भी आप स्वयं अपनी निष्ठा में स्थित हो गए हैं—यह बड़े आनन्द की बात है। आपके सिवा ऐसा जितेन्द्रिय पुरुष और कौन हो सकता है, जो मेरी माया के फंदे में फंस कर भी स्वयं निकल सकें। तब शिव ने हंसते हुए भगवान की माया और मोहिनी रूप का प्रभाव स्वीकार करते हुए कहा, जो भी हो, आपका मोहिनी रूप वास्तव में वशीभूत कर विमोहित कर देने वाला था। अब मुझे विश्वास हुआ कि असुर इस रूप को देख कर किस प्रकार विमोहित हो गए थे। फिर उन्होंने सती से कहा—'देवी! तुमने अभी भगवान विष्णु की माया देखी। मैं समस्त कलाकौशल, विद्या आदि का स्वामी और स्वतंत्र हूं, फिर भी हरिमाया से मोहित हो गया, फिर परतन्त्र जीवों का तो कहना ही क्या है? जब मैं 1000 वर्षों की समाधि से उठा था, तब तुमने पूछा कि मैं किसकी उपासना करता हूं? हे देवी! मैं इन्हीं भगवान विष्णु के चरण विंदों के परागकणों का रसिक हूं—जिन्हें न काल अपनी सीमा में बांध सकता है, न वेद ही अपने वर्णन में सम्पूर्ण कर सकता है।'

'हे परीक्षित! समुद्र मंथन का यह प्रसंग संसार के समस्त क्लेश व श्रम को मिटा देना वाला तथा उद्योगों को सफल करने वाला है। इसका बार-बार श्रवण-कीर्तन करना चाहिए।'

'यह वर्तमान मन्वन्तर सातवां है, विवस्वान पुत्र श्राद्धदेव इसके मनु हैं। इनके दस पुत्र—इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, करुष, पृषध और वसुमान। इस मन्वन्तर के देवता व आदित्य, वसु, रूद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनी कुमार और ऋभु आदि हैं। इन्द्र पुरन्दर है। कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भारद्वाज सप्त ऋषि हैं। इस मन्वन्तर में ही कश्यप की पत्नी अदिति

के गर्भ से भगवान ने वामन रूप से अवतार लिया था। अब आने वाले सात मन्वन्तरों को कहता हूं। भगवान द्वारा प्रदत्त योगशक्ति से उनका वर्णन करूंगा।''

शुकदेव जी आगे बोले—''विवस्वान की संज्ञा व छाया नामक दो पत्नियों के विषय में बताया था। दोनों विश्वकर्मा की पुत्रियां थीं। कुछ विद्वान उनकी बड़वा (घोड़ी) नामक तीसरी पत्नी भी मानते हैं। मेरे विचार में संज्ञा ही घोड़ी का रूप धारण करने से बड़वा हो गई है। (वैसे विष्णु आदिपुराण में संज्ञा ही सूर्यताप को न सह पाने के कारण अपना प्रतिबिम्ब सूर्य के पास छोड़ आई थी, जिसे छाया कहा गया था। इस प्रकार संज्ञा ही छाया और संज्ञा ही बड़वा है।) उनके पुत्रों व पुत्रियों के विषय में भी मैंने बता दिया था। (यम, यमी, श्राद्धदेव, शनैश्चर, सावर्णि, तपती और अश्विनी कुमार)। विवस्वान पुत्र सावर्णि ही आठवें मन्वन्तर के मनु होंगे और निर्मोक, विरजस्क आदि पुत्र उत्पन्न करेंगे। विरोचन पुत्र बलि तब इन्द्र और सुतपा, अमृतप्रभ और विरजा आदि प्रधान देवता होंगे। तब सप्तऋषि—गालव, दीप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यश्रग व मेरे पिता व्यास होंगे। तब देवगुह्य की पत्नी सरस्वती के गर्भ से भगवान सार्वभौम नाम से अवतरित होंगे। ये ही पुरन्दर इन्द्र से स्वर्ग छीन कर बलि को देंगे।'

'नवें मनु वरुण पुत्र दक्षसावर्णि होंगे, जिनके पुत्र भूतकेतु-दीप्तकेतु आदि होंगे। तब अद्‌भुत नामक इन्द्र तथा पार व मरीचिगण आदि देवता होंगें। उस मन्वन्तर में द्युतिमान् आदि सप्तऋषि होंगे। आयुष्मान् की पत्नी अम्बुधारा के गर्भ से भगवान तब ऋषभ नाम से अवतरित होंगे, उन्हीं के द्वारा दी गई त्रिलोकी का इन्द्र उपभोग करेंगे।' उपश्लोक पुत्र ब्रह्मसावर्णि दसवें मनु होंगे, जो भूरिषेण आदि पुत्रों को जन्म देंगे। तब शम्भु इन्द्र होंगे। सुवासन, विरुद्ध आदि देवतागण और सुकृति , सत्य, जय, मूर्ति व हविष्मान् आदि सप्तऋषि होंगे। विश्वसृज की पत्नी विषूचि के गर्भ से उस मन्वन्तर में भगवान विष्वक्‌सेन नाम से अवतार लेंगे और शम्भु नामक इन्द्र से मित्रता करेंगे।'

'हे राजन! सत्य, धर्म आदि दस पुत्रों के पिता धर्मसावर्णि ही ग्याहरवें मनु होंगे। तब अरुण आदि सप्तऋषि और वैधृत नामक इन्द्र होगा। विहंगम, निर्वाणरुचि, कामगम आदि प्रधान देवता होंगे। इस मन्वन्तर में आर्यक पत्नी वैधृता के गर्भ से धर्मकेतु के रूप में भगवान का अवतार होगा, जो त्रिलोकी की रक्षा करेंगे। बारहवें मनु रूद्रसावर्णि होंगे जो देववान् देवश्रेष्ठ व उपदेव आदि के पिता होंगे। तब हरित आदि देवता, तपोमूर्ति, तपस्वी, आग्नीध्रक आदि सप्तऋषि तथा ऋतुधामा नामक इन्द्र होंगे। सत्यसहा की पत्नी सूनृता के गर्भ से स्वधाम के रूप में भगवान का अवतार होगा, जो इस मन्वन्तर का पालन करेंगे।'

'देवसावर्णि तेरहवें और इन्द्रसावर्णि चौदहवें मनु होंगे। देवसावर्णि के पुत्र

चित्रसेन व विचित्र आदि तथा इन्द्रसावर्णि के उरू व गंभीर, बुद्धि आदि पुत्र होंगे। तेरहवें इन्द्र दिवस्पति और चौदहवें शुचि होंगे। तेरहवें मन्वन्तर में सुकर्म व सुत्राम आदि देवगण और निर्मोक व तत्वदर्श आदि सप्तऋषि होंगे। चौदहवें में अग्नि, बाहु, शुचि, शुद्ध और मागध आदि सप्तऋषि और पवित्र व चाक्षुष आदि प्रधान देवता होंगे। देवहोत्र की पत्नी बृहती के गर्भ से तेरहवें मन्वन्तर में भगवान योगेश्वर रूप में अवतरित होकर दिवस्पति को इन्द्र पद दिलाएंगे। चौदहवें मन्वन्तर में सत्रायण की पत्नी बिताना के गर्भ से बृहद्भानु के नाम से अवतरित होकर कर्मकाण्ड का विस्तार करेंगे। यही 14 मन्वन्तर—भूत, वर्तमान व भविष्य दोनों कालों में चलते हैं। इन्हीं से सहस्र चतुर्युगी वाले कल्प के समय की गणना होती है।''

राजा परीक्षित बोले—''भगवन आपने कृपाकर अगले-पिछले सभी मन्वन्तरों का वृत्तांत संक्षेप में कहा। प्रत्येक मन्वन्तर में पृथक-पृथक मनु, सप्तऋषि, इन्द्र आदि किसके द्वारा नियुक्त होकर कौन-कौन-सा कार्य करते हैं —यह बताने की कृपा कीजिए, क्योंकि कृपालु गुरु शिष्य की जिज्ञासा के अनुसार उससे सभी कुछ कह दिया करते हैं।''

तब शुकदेव जी बोले—''राजन! इन सबकी नियुक्ति करने वाले स्वयं भगवान हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में वे अवतरित होकर मनु आदि को विश्व व्यवस्था के संचालन की प्रेरणा व निर्देश देते हैं। चतुर्युगी के अन्त में काल प्रभाव से जब श्रुतियां प्रायः नष्ट हो जाती हैं। तब सप्तऋषि अपने तप से पुनः श्रुतियों का साक्षात्कार करते हैं, (क्योंकि मंत्र दृष्टा या मंत्र का साक्षात्कार करने वाला ही ऋषि कहा जाता है।) जिससे सनातन धर्म की रक्षा होती है। मनु भगवत्प्रेरणा से सावधानीपूर्वक चारों चरणों से पूर्ण धर्म का अनुष्ठान कराते हैं। मनुपुत्र काल व देश का विभाग कर प्रजा व धर्म का पालन करते हैं। देवता पन्चमहायज्ञों में यज्ञ का भाग स्वीकार करते हैं तथा इन्द्र के सहयोगी होते हैं। इन्द्र भगवान द्वारा दी गई त्रिलोकी का उपभोग व प्रजापालन करते हैं। अतः संसार में यथेष्टवर्षा कराना उन्हीं के अधिकार में होता है। युग-युग में भगवान सिद्धों व ऋषियों के रूप में योग व ज्ञान का उपदेश तथा प्रजापतियों के रूप में सृष्टि का विस्तार करते हैं। सम्राटों के रूप में न्याय व व्यवस्था को जीवित रखते तथा काल के रूप में सबको संहार की ओर ले जाते हैं। इस प्रकार मैंने तुम्हें महाकल्प तथा अवान्तर कल्प का परिमाण बता दिया और सबके कर्तव्य भी कह दिए। प्रत्येक अवान्तर कल्प में विद्वान चौदह मन्वन्तर ही बताते हैं।''

राजा परीक्षित बोले—''गुरुदेव! आपने बताया था कि भगवान ने वामन अवतार लेकर दैत्यराज बलि से तीन पग पृथ्वी मांगी थी और फिर दो पगों में ही त्रिलोकी नाप ली थी, किन्तु भगवान होते हुए भी उन्हें याचना क्यों करनी पड़ी? यह मुझे

समझाइए।''

शुकदेव जी ने कहा—''हे राजन! जब देवासुर संग्राम में इन्द्र ने बलि का वध कर उसकी समस्त सम्पत्ति छीन ली थी, तब शुक्राचार्य ने मृतसंजीवनी विद्या से बलि को पुनर्जीवित कर दिया था। तब बलि ने कृतज्ञ हो शुक्राचार्य को सर्वस्व भेंट किया और तन मन धन से उनकी सेवा करने लगे। इससे भृगुपुत्र शुक्राचार्य व भृगुवंशी ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। सो उन्होंने बलि को महाभिषेक की विधि से विश्वजीत यज्ञ करवाया और बलि ने शक्ति एकत्र कर अमरावती (देवताओं की नगरी) पर चढ़ाई कर दी। दैत्यों की भीषण तैयारी से आतंकित होकर इन्द्र ने देव गुरु बृहस्पति से परामर्श किया। तब बृहस्पति बोले—'इन्द्र! इस समय बलि यज्ञशक्ति से सुरक्षित है। भृगुंवशियों ने उसे महान तेज से सम्पन्न किया है, अतः सिवाए भगवान के इस समय उसे कोई नहीं जीत पाएगा, सो तुम अभी स्वर्ग छोड़ कर कहीं छिपे रहो और समय की प्रतीक्षा करो। जब इसका भाग्य चक्र पलटेगा, तब वह अपने को तेजस्वी बनाने वाले ब्राह्मणों का ही तिरस्कार करेगा और इस कारण परिवार सहित नष्ट हो जाएगा।' इन्द्र ने बृहस्पति के कहे अनुसार ही आचरण किया, जिससे बलि का स्वर्ग पर अधिकार हो गया। तीनों लोकों को जीत वह विश्वजीत यज्ञ के प्रभाव से विश्वविजयी हुआ। तब भृगुवंशियों ने उससे 100 अश्वमेध यज्ञ भी कराए, जिससे उसकी कीर्ति त्रिलोकी से बाहर भी फैल गई ।'

'देवमाता अदिति को यह जान बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने पति कश्यप जी से ऐसा उपाय पूछा, जिससे देवता फिर से सम्पन्न व विजयी हों। तब कश्यप जी ने ब्रह्मा का बताया हुआ—फाल्गुन के शुक्लपक्ष में केवल दूध पीकर बारह दिन तक किया जाने वाला भगवान विष्णु का 'पयोव्रत' स्तुति के साथ करने को कहा। यह व्रत विष्णु जी को सन्तुष्ट करने वाला होने से 'सर्वयज्ञ' व 'सर्वव्रत' भी कहा जाता है और समस्त तपों का सार है। तब अदिति ने उसी व्रत द्वारा भगवान को प्रसन्न किया। तब भगवान ने प्रकट होकर कहा कि वे 'वामन' रूप में अदिति के पुत्र बनकर उत्पन्न होंगे और अदिति की कामना पूर्ण कर देवोद्धार करेंगे, किन्तु अदिति को उस रहस्य को गुप्त रखना होगा।'

'तब समयानुसार वामनावतार हुआ। जब भृगुवंशी बलि को 100 अश्वमेध यज्ञ पूरे करवा रहे थे, तब नर्मदा नदी के तट पर वामन बलि के सम्मुख पहुंच गए। बलि बोले कि उनका यज्ञ सफल हो गया, अतः दान में वामन उनसे जो चाहे मांग लें। वामन बोले—'आपके वंश में किसी ने भी ब्राह्मण को खाली हाथ नहीं लौटाया। मैं जानता हूं। आपके लिए दान में कुछ भी देना असम्भव नहीं है, किन्तु विद्वान को अपनी आवश्यकता से अधिक दान स्वीकार नहीं करना चाहिए। अतः मैं आपसे केवल
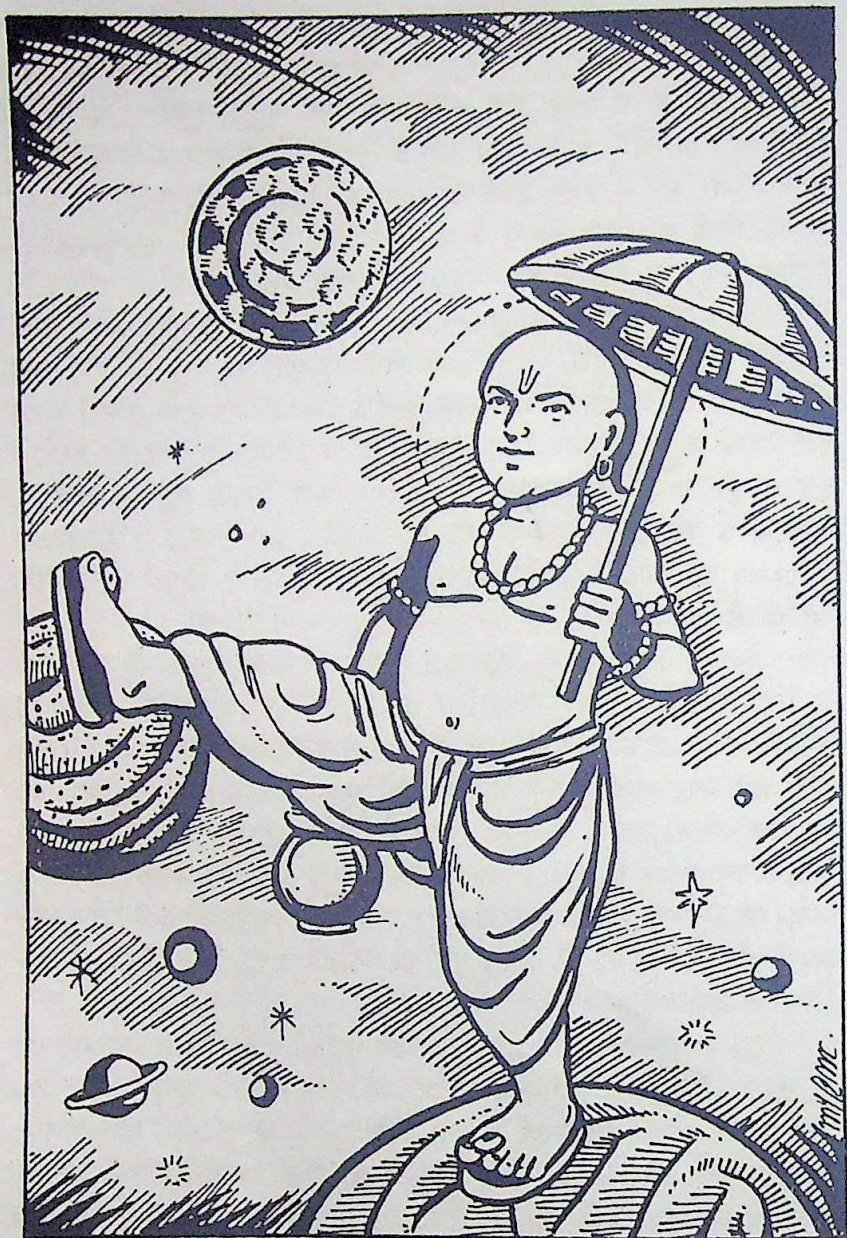
वामन रूप में तीन डग से तीनों लोक नापते भगवान विष्णु

अपने तीन डग पैरों की भूमि मांगता हूं। तब बलि बोले—'ब्राह्मण व्यक्ति से उसकी सामर्थ्यनुसार ही मांगना चाहिए। सुनार से हीरा मांगना ही शोभा देता है, ठीकरा नहीं। मैं त्रैलोक्यपति हूं। मुझसे केवल तीन डग भूमि की ही मांग कर रहे हो, वह भी अपने बौने शरीर के पैरों के डग! मुझसे तो तुम सातों द्वीपों का अखण्ड राज्य मांग सकते थे। तब वामन बोले—'राजन! धन की तीन ही गतियां हैं—दान, भोग, और नाश। यदि उसे भोग न लिया जाए अथवा दान न कर दिया जाए तो वह नष्ट हो जाता है। अतः आवश्यकता से अधिक धनसंग्रह किस काम का है? मेरा कार्य तो तीन डग भूमि से ही हो जाएगा, वही मैं आपसे मांगता हूं। हे राजन! नदी में बहुत जल होने के बाद भी प्राणी अपनी प्यास के अनुसार ही उसमें से पानी पीते हैं, जबकि जल जीवन के लिए अनिवार्य है, फिर धन तो अनिवार्य भी नहीं है—सो उसे अधिक लेकर बोझा ही ढोना है और एक चिन्ता मोल लेनी है। आप तो मुझे बस तीन डग भूमि ही दे दीजिए।'

'तब बलि ने वामन को तीन डग भूमि देने का संकल्प करने के लिए जलपात्र उठाया—तब शुक्राचार्य जो वामनावतार में विष्णु जी को पहचान चुके थे। बलि को सावधान करने लगे, किन्तु वास्तविकता जान लेने के बाद भी बलि बोले—'गुरुदेव मैं प्रह्लाद जी का पौत्र हूं। प्रतिज्ञा करने के बाद तोड़ नहीं सकता। अब परिणाम जो भी हो, मैं दान देने से मना नहीं करूंगा। मेरे लिए यही बहुत है कि भगवान स्वयं मुझसे दान मांग रहे हैं।' तब अपनी आज्ञा की अवहेलना होते देख शुक्राचार्य कुद्ध हो गए। बोले—'मूर्ख! अज्ञानी, तू अपने यश के लिए गुरु आज्ञा की अवहेलना कर रहा है। अतः मेरा शाप है कि तू शीघ्र ही अपनी लक्ष्मी खो बैठेगा।' हे राजन! बलि ने गुरु का शाप स्वीकार किया और जल हाथ में लेकर संकल्प किया (कुछ पुराणों में शुक्राचार्य जी के बलि के संकल्प न कर पाने के लिए जलपात्र की नलकी में बैठ जाने का भी वर्णन है, तब वामन द्वारा पात्र की नलकी का अवरोध साफ करने के लिए घुसाए गए तीले से शुक्राचार्य की एक आंख जाती रही थी।) बलि को दृढ़ प्रतिज्ञ देख देवताओं, गंधर्वो आदि ने उन पर पुष्प वर्षा की।'

'हे राजन! तब वामनदेव ने अपना आकार अत्यंत बड़ा कर लिया और एक डग में सारी पृथ्वी नाप ली। शरीर से आकाश तथा भुजाओं से दिशाएं घेरते हुए दूसरे डग में स्वर्ग को भी नाप लिया। यही पैर महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक तक पहुंच गया। तब उस ऊपर बढ़े चरण को ब्रह्मा ने अपने कमण्डल के जल से पखारा। भगवान के चरणों का स्पर्श पाकर वह जल गंगा में परिवर्तित हुआ। तब दो ही डगों में बलि का पूरा साम्राज्य छीन लेने से कुद्ध हुए दैत्य बलि की इच्छा न होते हुए भी वामनदेव को मारने के लिए टूट पड़े। तब विष्णु भगवान

के पार्षद उन्हें रोककर उनसे युद्ध करने लगे।"

शुकदेव आगे बोले—"बलि द्वारा रोके जाने पर दैत्य वापिस लौट गए और युद्ध बन्द हुआ। तब गरुड़ ने वरुणपाश से बलि को बांध लिया और भगवान ने बलि से तीसरे डग के लिए स्थान मांगा और कहा कि दान का संकल्प पूरा न होने पर उसे नरक मे जाना पड़ेगा। तब बलि ने कहा—"न तो मुझे नरक का भय है, न पाश मे बंधने का, मुझे केवल अपयश का भय है। अतः मैं प्रतिज्ञा अपूर्ण नहीं रखना चाहता। आप कृपापूर्वक तीसरा डग मेरे सिर पर रख दें।' तब प्रह्लाद जी भी वहां आ गए और भगवान को प्रणाम किया। ब्रह्मा तथा बलि की पत्नी विन्धयावली ने भी बलि को छोड़ देने की प्रार्थना की। तब भगवान ने कहा—'मैं जिस पर कृपा करता हूं, उसका धन छीन लेता हूं, क्योंकि धनोन्मत्त होकर व्यक्ति मेरा तिरस्कार करता है। मैं बलि की दृढ़ प्रतिज्ञा से प्रसन्न हूं। सावर्णि मन्वन्तर में यह मेरा परमभक्त इन्द्र होगा। तब तक यह विश्वकर्मा द्वारा बनाए सुतल लोक में रहे—वहां रोग, तन्द्रा, शैथिल्य, विघ्न आदि नहीं है। ऊपर के लोक दान कर देने से इसे वहां रहने का अधिकार नहीं है।' तब बलि उन्हें प्रणाम कर परिवार व बान्धवों सहित सुतल लोक में चला गया। (कहीं-कहीं बलि के सिर पर तीसरा डग रखकर उसे पाताल भेजने की भी कथा आती है।) प्रह्लाद ने तब भगवान की स्तुति की। भगवान ने उन्हें भी बलि के साथ रहने का आदेश दिया। फिर शुक्राचार्य से कहा—'आपके शिष्य बलि के यज्ञ में जो भूल-चूक रह गई हो, हे ब्राह्मण, उसे अपनी कृपा दृष्टि से पूरा करें।' तब शुक्राचार्य ने उनके आदेश का पालन किया। इस प्रकार इन्द्रादि देवताओं का अभ्युदय हुआ और अदिति को 'पयोव्रत' का फल मिला। यह प्रसंग मनुष्यों को परमगति प्राप्त कराने वाला तथा कर्मानुष्ठानों को सफल करने वाला है।"

तब परीक्षित बोले—"आपने भगवान के वाराह, कच्छप, नरसिंह, वामन आदि अवतारों की लीला कथा कही। कृपया उनके द्वारा लिए गए मत्स्यावतार के विषय में भी कहिए।" इस पर शुकदेव जी ने मत्स्यावतार का वर्णन करते हए कहा—"पिछले कल्पान्त में ब्रह्मा जी के सो जाने पर ब्रह्मा नामक नैमित्तिक प्रलय हुई थी—तब समस्त लोक जलमग्न हो गए थे। नींद के वेग से जम्हाई लेने में वेद ब्रह्मा जी के मुख से निकल गए जिन्हें हयग्रीव नामक दैत्य ने योगबल से चुरा लिया। श्रीहरि ने हयग्रीव की यह चेष्टा जान ली थी, इसीलिए उन्होंने वेदों की रक्षा के लिए मत्स्यावतार लिया था।"

शुकदेव जी ने आगे बताया—"उस समय सत्यव्रत नामक राजर्षि केवल जल पीकर तप कर रहे थे। कृतमाला नदी मे जल तर्पण के समय उनकी अंजलि में एक छोटी सी मछली आ गई। तब सत्यव्रत ने उसे जल में वापस छोड़ दिया। मछली ने

कहा कि वह जलजन्तुओं से भयभीत है। अतः वे उसे जल में न छोड़ें। तब दया कर उन्होंने मछली को अपने जलपात्र में रख लिया। उनके आश्रम में आने के बाद एक रात में मछली बड़ी हो गई और बोली कि कमण्डल उसे छोटा पड़ता है। अतः उसके रहने के लिए बड़े स्थान का प्रबन्ध होना चाहिए। तब राजर्षि ने उसे मटके में रखा, किन्तु मछली फिर बढ़ गई। इस प्रकार छोटे-बड़े सरोवरों में डाले जाने पर मछली उसी अनुपात में बढ़ कर महामत्स्य बन गई। तब वे उसे समुद्र में छोड़ने गए। मछली ने निवेदन किया कि वे उसे समुद्र में न छोड़ें, समुद्र के बड़े जीव उसे खा लेंगे। तब राजर्षि ने कहा—"एक ही दिन में अपना आकार चार सौ-कोस तक कर लेने वाले स्वयं श्रीहरि ही हैं, आपको किसका भय है?' तब मत्स्यरूपी भगवान बोले—"आज से सातवें दिन तीनों लोक प्रलय जल में डूबेंगे, तब समस्त प्राणियों के सूक्ष्म शरीरों, वनस्पतियों के बीजों व सप्तऋषियों आदि के साथ तुम मेरी प्रेरणा से भेजी हुई बड़ी नौका पर चढ़ जाना और वासुकी नाग द्वारा उस नौका को मेरे सींग से बांध देना। तब मैं तुम सबको सुरक्षित रखता हुआ तैरता रहूंगा और मैं तुम्हें उपदेश करूंगा। बाद में ऐसा ही हुआ। इस प्रकार वह मत्स्य सत्यव्रत ही सबका रक्षक हुआ और उपदेश करने से गुरु हुआ। उनके द्वारा दिया गया आत्मतत्व का उपदेश 'मत्स्यपुराण' कहा जाता है। वही सत्यव्रत ज्ञान-विज्ञान से युक्त होकर इस कल्प में वैवस्वत मनु हुए। प्रलयान्त में ब्रह्माजी के जागने पर भगवान ने हयग्रीव का वधकर उससे वेद लेकर ब्रह्माजी को दे दिए। तब ब्रह्मा जी ने उन्हें प्रणाम किया।'

'हे राजन! राजर्षि सत्यव्रत और मत्स्यावतारी विष्णु भगवान का वह संवाद (मत्स्यपुराण) सब प्रकार के पापों से मुक्त करने वाला तथा नित्य कीर्तन श्रवण करने से सब संकल्पों को सिद्ध करने वाला है एवं परम गति को देने वाला है। ज्ञान, भक्ति व कर्मयोग से परिपूर्ण हैं।"

❑❑

नवम स्कन्ध

राजा परीक्षित बोले—''हे महामुने! वैवस्वत मनु तथा उनके इक्ष्वाकु आदि पुत्रों के वंशों की कथा भी कहिए। हमारा हृदय कथाएं सुनने के लिए सदा आतुर रहता है। उन सब पवित्र कीर्तिवान पुरुषों का पराक्रम बताइए।''

तब शुकदेव बोले—''हे राजन्! मनुवंश का सम्पूर्ण विस्तृत वर्णन तो सैकड़ों वर्षों में भी सम्भव नहीं है। मैं संक्षेप में तुम्हें सुनाता हूं। दक्षपुत्री अदिति से विवस्वान और उनसे श्राद्धदेव मनु का जन्म हुआ था। मनु के—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि ये दस पुत्र हुए थे। मनु पहले निःसंतान थे। वशिष्ठ जी ने उन्हें संतान प्राप्त कराने के लिए मित्रावरुण यज्ञ किया, किन्तु यज्ञारम्भ में ही मनु पत्नी श्रद्धा ने कन्या की कामना की थी। अतः प्रथम इला नामक कन्या उत्पन्न हुई क्योंकि होता बने ब्राह्मणों ने श्रद्धा की कामनापूर्ति के लिए वषट्कार उच्चारण के साथ आहुति देने का विपरीत कर्म किया था, किन्तु मनु को उससे प्रसन्नता न हुई। (उसे पुत्रेच्छा थी) तब वशिष्ठ जी ने अपने तप द्वारा भगवान नारायण को प्रसन्न कर इला को सुद्युम्न नामक पुरुष बनवा दिया।'

'सुद्युम्न एक बार शिकार खेलने उत्तर दिशा के वन में गया। हिरणों के पीछे वह बहुत आगे निकल गया। अन्त में वह मेरुपर्वत की तहलटी के उस वन में चला गया, जहां शंकर और पार्वती विहार करते हैं। वन में प्रवेश करते ही सुद्युम्न स्त्री और उसका घोड़ा घोड़ी बन गया। उसके सब अनुचर भी स्त्री हो गए। (परीक्षित के प्रश्न करने पर उन्होंने आगे बताया)—क्योंकि एक बार जब कुछ ऋषि शिवदर्शन को पहले कभी उस वन में आए थे। तब मां अम्बिका वस्त्र हीन थीं। अतः वे बहुत लज्जित हो गईं। तुरन्त शिव के अंक से उठकर उन्होंने वस्त्र पहना। ऋषि भी गलत अवसर पर आ जाने से शर्मिंदा हो वापस चले गए। तब शिव ने पार्वती को प्रसन्न करने के लिए यह कहा कि उनके अतिरिक्त कोई भी पुरुष उस वन में आते ही

स्त्री हो जाएगा। पुरुषों के लिए निषिद्ध उस वन में आ जाने से सुद्युम्न भी स्त्री हो गया। हे राजन! स्त्री बना हुआ सुद्युम्न अपने अनुचरों सहित वन-वन भटकने लगा, तब बुध सुद्युम्न को देख मोहित हो गया। उसने सोचा कोई सुंदरी अपनी सखियों के साथ घूम रही है। स्त्री बन गए सुद्युम्न ने भी चन्द्रमा के पुत्र बुध को पसन्द किया। उन दोनों के सम्मिलन से पुरुखा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।'

'एक बार स्त्री बने सुद्युम्न को अपना पूर्वकाल स्मरण होने से अपने स्त्री रूप पर दुःख हुआ और उसने वशिष्ठ जी का स्मरण किया। तब वशिष्ठ ने सुद्युम्न को फिर से पुरुष बना देने के लिए शिवाराधना की। शिव जी ने प्रसन्न होकर वशिष्ठ की उपासना और अपनी वाणी दोनों का मान रखा और कहा—'सुद्युम्न एक महीने स्त्री रहेगा, एक महीने पुरुष।' तब सुद्युम्न उसी व्यवस्था से रहता हुआ प्रजा पालन करने लगा। उसके उत्कल, गय और विमल नामक तीन पुत्र हुए। वृद्ध होने पर अपने प्रथम पुत्र पुरुखा को राजा बना कर वह तप के लिए चला गया।'

'मनु को इला के जन्म से विशेष संतोष न हुआ था। अतः उसके वन गमन के बाद उसने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से यमुना तट पर 100 वर्ष तप किया और श्रीहरि को प्रसन्न कर पूर्व वर्णित दस पुत्र प्राप्त किए। पृषध्र नामक मनुपुत्र को वशिष्ठ जी ने गौरक्षा के लिए नियुक्त किया था। एक रात गायों के झुण्ड में आ घुसे बाघ को मारने के प्रयास में अंधेरे के कारण पृषध्र द्वारा गाय की हत्या हो गई। यद्यपि गौहत्या में पृषध्र का जाना-बूझा प्रयास न था तो भी वशिष्ठ ने उसे शूद्र हो जाने का शाप दिया। पृषध्र ने शाप स्वीकार किया और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया तथा वासुदेव में ही ध्यान लगाने लगा। एक दिन वन में लगे दावानल की आग में अपनी इन्द्रियों को भस्म कर वह परमात्मा को प्राप्त हो गया।'

'करूष नामक मनुपुत्र से कारूष नामक क्षत्रिय हुए जो बड़े ब्राह्मण भक्त व धर्म रक्षक थे। धृष्ट नामक मनुपुत्र के धार्ष्ट नामक पुत्र हुए, जो क्षत्रिय शरीरों से ही बाद में ब्राह्मण बन गए। नृग नामक मनुपुत्र का पुत्र सुमति, पौत्र भूतज्योति व प्रपौत्र वसु हुआ। वसु का पुत्र ओधवान् तथा ओधवान् का पुत्र भी ओधवान् हुआ—साथ ही उसके ओधवती नामक पुत्री भी हुई जो सुदर्शन से ब्याही गई। मनुपुत्र नरिष्यन्त के पुत्र, पौत्रादि का क्रम इस प्रकार है—चित्रसेन, ऋक्ष, मढिवान्, कूर्च, इन्द्रसेन, वीतिहोत्र, सत्यश्रवा, उरुश्रवा, देवदत्त, अग्निवेश्य (जो स्वयं अग्निदेव थे और कालान्तर में महर्षि ज्ञातूकर्ण्य व कानीन नाम से विख्यात हुए)। ब्राह्मणों का 'अग्निवेश्यायन' गोत्र इन्हीं अग्निवेश्य से चला था। अब मनु पुत्र दिष्ट की वंशावली भी सुनो।'

'दिष्ट का पुत्र नाभाग अपने कर्मों से वैश्य हुआ। नाभाग का पुत्र भलनन्दन

व पौत्र वत्सप्रीति हुआ। वत्सप्रीति का पुत्र प्रांशु, पौत्र प्रमति और प्रपौत्र खनित्र हुआ। खनित्र के दो पुत्र विविंशति व चाक्षुष हुए। विविंशति का पुत्र रम्भ व पौत्र खनिनेत्र था। खनिनेत्र के करन्धम, करन्धम के अवीक्षित, अवीक्षित के मरुत्त हुआ। अंगिरा के पुत्र संवर्त्त ऋषि ने मरुत्त से बड़ा अद्वितीय यज्ञ भी कराया। मरुत्त के पुत्र-पौत्रादि का क्रम इस प्रकार है—दम, राज्यवर्धन, सुधृति, नर, केवल, बन्धुमान्, वेगवान, बन्धु, तृणबिन्दु। तृणबिन्दु का विवाह अप्सराओं में श्रेष्ठ अलम्बुषा से हुआ, जिससे उसके कई पुत्र तथा इडविडा नामक कन्या हुई। इडविडा ने पुलस्त्य पुत्र विश्रवा से विवाह करके कुबेर को जन्म दिया। तृणविन्दु की दूसरी पत्नी (जो धर्म पत्नी थी) से विशाल, शून्यबन्धु और धूमकेतु तीन पुत्र हुए—जिनमें से विशाल ने वैशाली नगर बसाया। विशाल के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः हेमचन्द्र, धूम्राक्ष, संयम व कृशाश्व हुए। कृशाश्व का एक भाई देवज भी था। कृशाश्व पुत्र सोमदत्त सुमति का पिता तथा जनमेजय का दादा हुआ। यह सब विशालवंशी कहलाए।'

मनुपुत्र शर्याति वेदविज्ञ थे। उसने अंगिरा गोत्रीय ब्राह्मणों को यज्ञ में दूसरे दिन का कर्म बताया था। एक दिन अपनी पुत्री सुकन्या के साथ वन में घूमता हुआ वह च्यवन ऋषि के आश्रम पर पहुंचा। वहां घूमकर जब सुकन्या वृक्षों का सौंदर्य देख रही थी, तब एक स्थान पर एक बड़ी बांबी में छेद में उसने दो जुगनू से चमकते देखे। चंचलता वश सुकन्या ने उनको एक कांटे से बेध दिया। तब वहां से बहुत-सा खून बहने लगा। उस समय शर्याति के साथ आए सैनिकों का मलमूत्र अवरुद्ध हो गया। तब शर्याति ने किसी से आश्रम पर अपराध हो जाने की शंका व्यक्त की और उसे सुकन्या से सब ज्ञात हुआ। शर्याति सुनकर घबरा गए और प्रार्थना करके बांबी में बैठे च्यवन ऋषियों को प्रसन्न किया। तब मुनि का अभिप्राय जानकर अपनी पुत्री मुनि को समर्पित कर उस संकट से छूटकर सैनिकों सहित वापस लौट आए। सुकन्या आश्रम पर ही क्रोधी च्यवन ऋषि की सावधानी से सेवा करने लगी। कुछ समय बाद अश्विनी कुमारों का वहां आना हुआ। तब च्यवन ऋषि बोले—बढ़ती आयु व कठिन तप के कारण में वृद्ध हो गया हूं। अपनी पत्नी को प्रसन्न रखने के लिए पुनः युवा होना चाहता हूं। आप कृपापूर्वक मुझे युवा बना दीजिए। आप लोग सोमपान के अधिकारी नहीं हैं तो भी मैं आपको यज्ञ में सोमरस का भाग दूंगा।' तब अश्विनीकुमार ने मान लिया और च्यवन ऋषि के साथ सिद्ध कुण्ड में स्नान किया। उस कुण्ड में से तीन युवा व सुन्दर पुरुष निकले। सुकन्या ने पति को न पहचान अश्विनी कुमारों की शरण ली, तब उन्होंने उसके पति को बताया और स्वर्ग चले गए। इस प्रकार च्यवन फिर से युवा हो गए।'

'कुछ समय बाद यज्ञेच्छा से शर्याति वहां आए तो अपनी पुत्री को एक युवा

पुरुष की सेवा करते देख गलतफहमी के कारण क्रुद्ध हो गए। फिर सुकन्या ने बताया कि वह च्यवन ऋषि ही हैं, कोई पर पुरुष नहीं है। महर्षि च्यवन ने तब शर्याति से सोमयज्ञ का अनुष्ठान कराया और अधिकारी न होते हुए भी अपने तप के प्रभाव से अश्विनी कुमारों को सोमपान करवाया। इन्द्र ये देख क्रुद्ध हो गए और च्यवन के यजमान शर्याति को मारने के लिए वज्र साधा, लेकिन तपोबल से च्यवन ने इन्द्र के हाथ को वज्र सहित स्तम्भित कर दिया। तब देवताओं ने भविष्य में भी अश्विनी कुमारों को सोमरस का अधिकार देना स्वीकार करते हुए इन्द्र को स्वस्थ कराया, क्योंकि वैद्य होने के कारण पहले अश्विनी कुमारों को सोमरस का अधिकार नहीं दिया गया था।'

'राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या के अतिरिक्त—उत्तानबर्हि , आनर्त, भूरिषेण, ये तीन पुत्र भी थे। आनर्त के पुत्र रेवत ने समुद्र के ही भीतर कुशस्थली नामक नगर बसाया था, वहीं उन्होंने अपनी राजधानी बनाई। उनके ककुद्मी आदि 100 पुत्र हुए। ककुद्मी की पुत्री रेवती थी। जब ककुद्मी रेवती के लिए वर पूछने ब्रह्मा के पास गए—तब वहां चल रही सभा के कारण कुछ समय वहीं ठहर गए। तब ब्रह्मा जी हंसकर बोले—'जिन लोगों के विषय में सोचकर मुझसे परामर्श लेने आए थे, अब तो उनके गोत्र और उनके वंश तक समाप्त हो गए, क्योंकि इस बीच 27 चतुर्युगी समय बीत गया है। इस समय पृथ्वी पर द्वापर युग चल रहा है और इस समय रेवती के लिए सुयोग्य वर श्रीकृष्ण भगवान के बड़े भाई शेषावतार बलराम ही हैं। अतः तुम उन्हीं नररत्न को यह कन्यारत्न अर्पित करो।' तब ककुद्मी ने यही किया।''

शुकदेव जी आगे बोले—''मनुपुत्र नभग, नाभाग का पिता हुआ। नाभाग के और भाई भी हुए। नाभाग जब लम्बे समय के बाद ब्रह्मचर्य का पालन करके लौटा, तब आपस में पिता की सम्पत्ति बांट लेने वाले भाइयों ने नाभाग को हिस्से में सिर्फ पिता ही दिए, किन्तु पिता ने उसे समझाया कि वो उनकी बात न माने और अंगिरस गोत्रीय ब्राह्मणों को यज्ञ के छठे दिन का कर्म समझाएं, क्योंकि वे उसमें ही भूल करते हैं, तब वे यज्ञ समाप्त होने पर बचा हुआ सारा धन उसे दे देंगे। विद्वान नाभाग ने वैसा ही किया, जिससे स्वर्ग जाते समय उन ब्राह्मणों ने उसे यज्ञ से बचा धन दिया, किन्तु उसी समय उत्तर दिशा से आए एक काले पुरुष ने उस धन पर अपना अधिकार बताया। तब उसी के कहने पर नाभाग निर्णय के लिए अपने पिता नभग के पास गए। नभग ने बताया कि दक्ष प्रजापतियों के यज्ञ में उन ब्राह्मणों ने ऐसा निश्चय किया था कि यज्ञ का बचा धन रूद्रदेव को देंगे, अतः वह धन उस काले पुरुष रूद्रदेव का ही है। तब वापस लौट कर क्षमा मांगते हुए नाभाग से सारा धन रूद्रदेव को दे दिया। प्रसन्न होकर रूद्रदेव ने कहा—'वेदों का अर्थ तो तुम पहले ही जानते हो,

में तुम्हें सनातन ब्रह्मज्ञान देता हूं और यह धन भी तुम्हीं को देता हूं।'—हे राजन! इस प्रसंग को प्रातः-सायं एकाग्रता से स्मरण करने वाला प्रतिभावान तथा वेदज्ञ हो अपने स्वरूप को जान लेता है। इन्हीं नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए, जिन्हें धर्मात्मा होने से ब्रह्म शाप भी न छू सका।"

तब परीक्षित के जिज्ञासा प्रकट करने पर शुकदेव ने अम्बरीष का चरित्र सुनाते हुए कहा—"अम्बरीष पृथ्वी के सातों द्वीपों के सम्राट होते हुए भी उसे स्वप्नतुल्य समझते थे। उन्होंने अनेक अश्वमेध यज्ञ किए थे और वे बड़े भक्त और धर्मात्मा थे। उनकी भक्ति के कारण भगवान ने सुदर्शन चक्र को उनकी रक्षा में नियुक्त किया था। अम्बरीष की पत्नी भी उन्हीं के समान भक्त और विरक्त थी। एक बार उन पति-पत्नी ने श्रीकृष्ण का एक वर्ष तक चलने वाला द्वादशी प्रधान एकादशी व्रत किया। व्रत का पारण करने से पूर्व उन्होंने भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को 60 करोड़ गाय तथा अन्य बहुत-सी वस्तुएं दान दी। अन्त में जब वे व्रतपारण की तैयारी में थे, तब वहां महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि आए। अम्बरीष ने उन्हें उचित सत्कार देकर भोजन पर आमंत्रित किया। दुर्वासा जी ने आमंत्रण स्वीकार किया और स्नान के लिए यमुना पर चले गए। वहां ब्रह्म का ध्यान करते हुए उनको स्नान में देर लगी। इधर द्वादशी केवल दो घड़ी शेष रह गई। तब अम्बरीष धर्मसंकट में पड़ गए, क्योंकि आमंत्रित किए गए ब्राह्मण को भोजन कराए बिना स्वयं भोजन करने में दोष होता और द्वादशी समाप्त होने से पहले व्रत का पारण करने के लिए भोजन न करने में भी दोष होता था। सो उन्होंने अन्य ब्राह्मणों से परामर्श किया और जल पी लेने का निश्चय किया। जल पीने का अर्थ भोजन कर लेना भी है और नहीं भी है—ऐसा श्रुतियों का मत है। दुर्वासा जी वापस लौटे तो उन्हें भूख लगी हुई थी, किन्तु अनुमान ही से उनको यह आभास हो गया कि राजा ने पारण कर लिया है। अतः उन्होंने क्रोधित होकर अपनी जटा से अम्बरीष वध के लिए कृत्या उत्पन्न करते हुए कहा—'अरे क्रूर! तूने अतिथि को भोजन कराए बिना ही खुद खा लिया। मैं तुझे अभी मजा चखाता हूं। कृत्या ने अम्बरीष पर आक्रमण किया, किन्तु वह सुदर्शन चक्र के तेज से भस्म हो गई और चक्र दुर्वासा के पीछे लग गया। दुर्वासा ऋषि आकाश, पाताल, जहां भी भागे, चक्र पीछे पड़ा रहा। तब वे ब्रह्मा की शरण में गए। ब्रह्मा ने असमर्थता प्रकट की। तब वे शिव की शरण में गए। शिव ने भी कहा कि विष्णु भक्त के द्रोही की रक्षा मैं भी नहीं कर सकता। तब दुवार्सा जी विष्णु जी की शरण में जाकर क्षमा मांगने लगे। विष्णु जी ने कहा कि वे सदा भक्तों के अधीन हैं, अतः उनकी रक्षा तो अम्बरीष ही कर सकते हैं।'

'हे राजन! ब्राह्मणों के लिए विद्या और तप परम कल्याणकारक हैं, किन्तु ब्राह्मण

सुदर्शन चक्र के भय से भगवान शिव की शरण में भागते दुर्वासा ऋषि

उद्दण्ड हो जाए तो ये उल्टा फल भी देने लगती है। वही दुर्वासा जी के साथ हुआ। तब उन्होंने अम्बरीष से क्षमा मांगी और अम्बरीष की प्रार्थना पर चक्र शान्त हुआ। तब दुर्वासा बोले—'आज मैंने भगवत प्रेम और भगवान की भक्ति का प्रताप देखा। हे अम्बरीष अपना अहित करने वाले मुझ दुवार्सा को भी क्षमा कर देने वाले तुम धन्य हो। तब अम्बरीष ने विनयपूर्वक दुर्वासा जी के चरण पकड़े और कहा—'प्रभो! आप मेरे पूज्यनीय हैं, आमंत्रित अतिथि हैं। सब भुलाकर पहले भोजन करें, क्योंकि आपके जाने के बाद से आपकी प्रतीक्षा में मैं भी भूखा ही बैठा हूं। तब दुवार्सा जी ने भोजन किया और अम्बरीष को भी भोजन कराकर कहा कि उनकी कीर्ति अमर होगी—इस प्रकार कभी व्यर्थ न होने वाले ब्रह्म शाप से भी वे धर्मात्मा सुरक्षित रहे। बाद में अपने पुत्रों को राज्य सौंप उन्होंने संन्यास लिया और मोक्ष प्राप्त किया। अम्बरीष का यह आख्यान कीर्तन व स्मरण करने से भगवत्भक्ति प्रदान करने वाला है।''

शुकदेव जी ने आगे कहा—''अम्बरीष के विरूप, केतुमान और शम्भु नामक पुत्र हुए। विरूप का पुत्र रथीतर हुआ। सन्तानहीन होने से उसने अंगिरा ऋषि से प्रार्थना की। अंगिरा ने उसकी पत्नी से ब्रह्मतेज द्वारा कई पुत्र उत्पन्न किए। अंगिरा द्वारा उत्पन्न होने से वे सब आंगिरस कहलाए और क्षत्रिय व ब्राह्मण दोनों गोत्रों से सम्बन्धित होने से रथीतरवंशियों में कुलर्क सर्वश्रेष्ठ पुरुष कहे गए।' अब मनु के अन्य पुत्रों का वंश सुनो।'

'मनुपुत्र इक्ष्वाकु (जो मनु की छींक से, नासिका मार्ग से पैदा होने के कारण इक्ष्वाकु कहा गया)—विकुक्षि, निमि और दण्डक आदि 100 पुत्रों के जनक हुए। ऊपर कहे तीन बड़े पुत्र आर्यावर्त के मध्य भाग के अधिपति हुए। उनके बाद के 25 पूर्वी भाग के। उसके बाद के 25 पश्चिमी भाग के अधिपतिं हुए। शेष 47 दक्षिणी आदि भागों के एक बार इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्ध किया। तब पिता की आज्ञा से विकुक्षि श्राद्धयोग्य पशुओं का मांस लेने शिकार को गया। बीच में भूख लगने पर उसने मारे हुए पशुओं में से एक खरगोश खा लिया। प्रोक्षण के समय गुरु ने लाए मांस को दूषित कहा, क्योंकि श्राद्ध के लिए मारा गया पशु स्वयं नहीं खाया जाता। सब ज्ञात होने पर राजा इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को देश निकाला दे दिया। बाद में गुरु वशिष्ठ से ज्ञान चर्चा के बाद उन्होंने योग द्वारा शरीर त्याग कर परमपद प्राप्त किया। पिता के देहांत के बाद विकुक्षि वापस आकर राजधानी में शासन करने लगा। अनेक यज्ञ व ईश्वराधना के बाद वह शशाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी का पुत्र पुरन्जय हुआ जो 'इन्द्रवाह' तथा 'ककुत्स्थ' नामों से प्रसिद्ध हुआ। जिस कारण उसके यह नाम पड़े, वो भी सुनो—

'सतयुग के अन्त में युद्ध होने पर सुर-असुरों से हारने लगे, तब उनकी सहायता मांगने पर पुरन्जय इस शर्त पर तैयार हुए कि युद्ध में इन्द्र उनके वाहन बनें। पहले तो इन्द्र ने मना किया, लेकिन भगवान के समझाने पर वे एक बैल के रूप में पुरञ्जय के वाहन बन गए। भगवान की शक्ति व कृपा से युक्त पुरन्जय ने धनुष से बैल के ककुद् (डिल्ल) पर बैठकर युद्ध किया और विजयी हुए। ककुद् पर बैठने के कारण उन्हें ककुत्स्थ कहा गया। इन्द्र को वाहन बनाने से इन्द्रवाह कहा गया। पुरजीत लेने के कारण उन्हें पुरन्जय कहा गया। इस प्रकार देवताओं का खोया ऐश्वर्य व राज्य जीतकर (दैत्यों से) पुरन्जय ने इन्द्रादि को वापस लौटा दिया। इन्हीं पुरन्जय का पुत्र अनेना हुआ जो पृथु का पिता, विश्वरन्धि का दादा और चन्द्र का परदादा और युवनाश्व का लकड़ दादा बना। युवनाश्व का पुत्र शावस्ती पुरी बसाने वाला शावस्त हुआ, जो बृहद् का पिता तथा कुवलयाश्व का दादा हुआ। कुवलयाश्व बहुत बलवान था। उसने अपने 21 हजार पुत्रों के साथ उतंक ऋषि को सुखी करने के लिए 'धुन्धु' नामक महादैत्य का वध किया। अतः कुवलयाश्व को 'धुन्धुमार' कहा गया। इस युद्ध में धुन्धुदैत्य की मुखाग्नि का शिकार होकर उसके सब पुत्र भस्म हो गए थे। केवल—दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व शेष बचे। दृढाश्व के पुत्र-पौत्र आदि क्रमशः हर्यश्व, निकुम्भ, बर्हणाश्व, कृशाश्व, सेनजित, युवनाश्व हुए। युवनाश्व संतानहीन होने से अपनी 100 रानियों सहित वन को चला गया। वन में ऋषियों ने दयाकर युवनाश्व के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किया। रात को प्यास लगने के पर जब कहीं पानी न मिला तो युवनाश्व यज्ञकलश में रखे अभिमंत्रित जल को पी गए। जिससे प्रसव के समय उसकी दाईं कोख फाड़कर एक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ। पिता के पेट से उत्पन्न होने के कारण उस रोते हुए बालक को दूध न मिला। तब इन्द्र ने उसके मुख में अपनी उंगली डालकर उसे दिलासा दिया और ऋषियों के यह पूछने पर कि 'वह बालक किसका दूध पीएगा?' इन्द्र ने कहा 'मां धाता' (अर्थात् मेरा पियेगा/मैं मां हूं)। अतः उसका नाम मान्धाता भी हुआ।'

'ऋषियों व इन्द्र के प्रभाव से मान्धाता और युवनाश्व दोनों ही जीवित रहे। इन्द्र ने मान्धाता का नाम त्रसदस्यु रखा था—क्योंकि रावण आदि दस्यु उससे भयभीत रहते थे। मान्धाता चक्रवर्ती सम्राट, आत्मज्ञानी तथा अनेक यज्ञ करने वाले तपस्वी हुए। सूर्य जहां से उदय और जहां अस्त होता है—वह सारा भूभाग मान्धाता के अधिकार में था। शशबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से इनका विवाह हुआ, जिससे पुरुकुत्स, अम्बरीष (द्वितीय) तथा मुचुकुन्द ये तीन पुत्र और पचास पुत्रियां उत्पन्न हुए। उन पचासों ने सौभरि ऋषि से विवाह किया (स्वेच्छा से)। इसकी भी एक कथा है। सौभरि ऋषि अविवाहित वृद्ध थे। एक बार यमुना में डुबकी लगाने पर उन्होंने एक मत्स्य

को परिवार के साथ आनन्दित होते देखा तो उन्हें भी विवाह कर परिवार बसाने की इच्छा हुई। उन्होंने मान्धाता से एक पुत्री मांगी। मान्धाता श्राप भय से मना न कर सके, किन्तु एक दुर्बल वृद्ध को अपनी जवान पुत्री देने की इच्छा न हुइ, अतः उन्होंने कहा—'हे ऋषि! मेरी 50 पुत्रियों में से जो आपको स्वयं वरण करे उसी से आप विवाह कर लें। सौभरि ऋषि समझ गए—कोई जवान स्त्री उन्हें स्वयं वरण नहीं करेगी, सो मान्धाता ने टालने के लिए ऐसा किया है। अतः वे बहुत सुन्दर रूप योगबल से बनाकर उनकी पुत्रियों के सामने आ गए। तब सबने यह कहते हुए कि 'यह वर तेरे योग्य नहीं इसे मैं वरण करूंगी'—सौभरि ऋषि का वरण कर लिया। तब सौभरि ऋषि ने तपोबल से समस्त ऐश्वर्य एकत्रित कर उन सबसे कई वर्ष भोगकर एक दिन सोचा—'एक मछली के संसर्ग के कारण मुझमें लालसा उत्पन्न हुई और मेरा ब्रह्मतेज नष्ट हो गया। अतः प्राणी को अकेला रहना ही उचित है।' तब उन्होंने संन्यास लेकर तपाग्नि में स्वयं को गलाया और परमात्मा में लीन हो गए। उनकी पत्नियां उनके साथ सती हो गईं।'

'मान्धाता के पुत्रों में से अम्बरीष को श्रेष्ठ होने के कारण उनके दादा युवनाश्व ने उन्हें पुत्ररूप में स्वीकारा। अतः अम्बरीष का पुत्र यौवनाश्व कहा गया। यौवनाश्व का पुत्र हारीत हुआ। ये तीनों अवान्तर गोत्र के प्रवर्तक हुए। नागों की बहन नर्मदा का विवाह पुरुकुत्स से हुआ, अतः नागराज वासुकी की आज्ञा से वे विवाहोपरांत रसातल में चले गए। यहां पुरुकुत्स ने वध योग्य गंधर्वों को मार डाला, जिससे नागराज ने यह वरदान दिया कि इस प्रसंग का स्मरण करने से वह सर्पों से निर्भय हो जाएगा। पुरुकुत्स का पुत्र त्रसदस्यु (द्वितीय), पौत्र अनरण्य, प्रपौत्र हर्यश्व तथा हर्यश्व के पुत्र अरुण, पौत्र त्रिबन्धन, प्रपौत्र सत्यव्रत हुए। यही सत्यव्रत कालांतर में त्रिशुंक कहे गए क्योंकि अपने पिता व गुरु के शाप से चाण्डाल होकर वे महातपस्वी विश्वामित्र की शरण में गए। विश्वामित्र ने त्रिशुंक की इच्छा पर उसे तपोबल से सदेह स्वर्ग भेज दिया। देवताओं ने उसे वहां से धकेला किन्तु विश्वामित्र ने अपने प्रभाव से उसे नीचे न गिरने दिया। इस प्रकार बीच में ही लटका रहने के कारण त्रिशुंक कहा गया (जहां उसे स्थिर कर दिया था वहीं विश्वामित्र ने अपने तेज से उसके लिए नए स्वर्ग की सृष्टि की थी—ऐसा भी कुछ पुराणों में आता है।)'

'त्रिशुंक का पुत्र सत्यवादी हरिश्चन्द्र हुआ—जिसके कारण वशिष्ठ और विश्वामित्र एक दूसरे को शाप देकर पक्षी हो गए थे तथा वर्षों तक आपस में लड़ते रहे थे। हरिश्चन्द्र अत्यन्त धर्मात्मा, दानी व सत्यवादी थे, उनका चरित्र तुमसे कहता हूं।'

'हरिश्चन्द्र निःसंतान होने से उदास हो वरुण देव की शरण में गए और पुत्र

प्राप्ति की कामना की। यह भी कह दिया कि पुत्र होने पर उसी के द्वारा वे वरुण के यज्ञ का यजन करेंगे। तब वरुण की कृपा से उन्हें रोहित नामक पुत्र हुआ। वरुणदेव ने कहा—'अब इसे यज्ञपशु बना कर मेरा यजन करो।' तब हरिश्चन्द्र ने कहा कि रोहित 10 दिन का हो जाए तो बलि योग्य होगा। दस दिन बीत जाने पर हरिश्चन्द्र ने उसके दांत निकलने तक, फिर दूध के दांत टूटने पर फिर पुनः दांत आने तक, कवच धारण करने तक आदि बहाने से पुत्रप्रेम के कारण बात टालते रहे और वरुण उनकी बात मानते गए। जब रोहित को बड़ा होने पर सब ज्ञात हुआ तो वह प्राण रक्षा के लिए धनुष लेकर वन में चला गया। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वरुण ने रुष्ट होकर हरिश्चन्द्र पर आक्रमण कर दिया—अतः हरिश्चन्द्र महोदर रोग से पीड़ित हो रहे हैं तो वह नगर को वापस लौटा, किन्तु मार्ग में इन्द्र ने उसे समझा कर रोक दिया। इस प्रकार प्रतिवर्ष रोहित को इन्द्र ने ब्राह्मण वेश में पांच बार रोका, जब छटे वर्ष रुककर वह सातवें वर्ष में पुनः नगर को लौटा तो उसने अर्जिगर्त से उसके मंझले पुत्र शुनःशेप को (अपने स्थान पर) यज्ञपशु बनाने के लिए मोल ले लिया और हरिश्चन्द्र को सौंप दिया। तब रोग मुक्त हो हरिश्चन्द्र ने यज्ञ किया। उस यज्ञ के होता विश्वामित्र, अध्वर्यु, जमदग्नि, ब्रह्मा, वशिष्ठ और उद्‌गाता अयास्य ऋषि बने। तब इन्द्र ने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्र को स्वर्ण रथ दिया।'

'शुनःशेप के महात्म्य का वर्णन आगे करेंगे। विश्वामित्र जी के परीक्षा लेने पर हरिश्चन्द्र व उसकी पत्नी को सत्य में दृढ़ पाया। अतः प्रसन्न होकर उन्हें अनश्वर ज्ञान का उपदेश दिया। उस ज्ञान के अनुसार हरिश्चन्द्र अपने मन को पृथ्वी में, पृथ्वी को जल में, जल को तेज में, तेज को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को अहंकार में, अहंकार को महतत्व में लीन कर ज्ञानकला का ध्यान किया और अज्ञान को भस्म किया। फिर निर्वाण सुख की अनुभूति से उन्होंने ज्ञान कला का भी त्याग कर मोक्ष प्राप्त किया।' अब रोहित का वंश सुनो—

शुकदेव जी ने आगे कहा—"रोहित का पुत्र हरित प्रपौत्र चम्प हुआ, जिसने चम्पापुरी बसाई। चम्प का पुत्र सुदेव तथा पौत्र विजय हुआ। विजय का पुत्र भरूक, पौत्र वृक, प्रपौत्र बाहुक हुआ। बाहुक शत्रुओं से पराजित होकर वन में भाग गया। वृद्धावस्था के कारण वन में उसकी मृत्यु हुई। तब उसके साथ सती होने को उसकी पत्नी को गर्भवती होने के कारण महर्षि और्व ने रोक दिया। उसकी सौतों को उसके गर्भवती होने का पता चला तो उन्होंने ईर्ष्यावश उसे भोजन के साथ गर (एक विशिष्ट विष) दे दिया, किन्तु भगवान की कृपा से उस विष का गर्भ पर कोई प्रभाव न पड़ा और वह गर के साथ पैदा हुआ। इसी कारण इसका नाम सगर हुआ। सगर बड़े यशस्वी व चक्रवर्ती सम्राट हुए। उनके पहली पत्नी के पुत्रों ने पृथ्वी खोद कर समुद्र

बना दिए थे, क्योंकि इन्द्र ने उनके अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया था, सो घोड़े की खोज में सगर के पुत्रों ने पृथ्वी खोद डाली थी। इन्द्र ने कपटपूर्वक घोड़े को कपिलमुनि के आश्रम में छिपा दिया था। सगरपुत्रों ने कपिल को चोर समझा, तब कपिल मुनि के क्रोध में वे सभी (60,000) पुत्र भस्म हो गए थे। और्वऋषि की आज्ञा से सगर ने—हैहय, शक, यवन, तालजंघ और बर्बर जाति के लोगों को विरूप भी कर दिया था।'

'सगर की दूसरी पत्नी केशनी के असमंजस नामक पुत्र हुआ, जो अशुंमान का पिता हुआ। साठ हजार पुत्रों के न लौटने पर सगर ने अपने पौत्र अंशुमान को भेजा। अंशुमान ने अपने चाचाओं की भस्म व घोड़े को ढूंढ लिया और कपिल मुनि की स्तुति की और चाचाओं की ओर से क्षमा मांगते हुए उनके उद्धार का उपाय पूछा तथा घोड़ा ले जाने की अनुमति मांगी। तब कपिल जी ने बताया कि सगर पुत्रों का उद्धार गंगाजल से होगा। अंशुमान द्वारा लाए गए घोड़ों से सगर ने अपना यज्ञ पूर्ण किया फिर उसे राजा बनाकर संन्यास ले मोक्ष प्राप्त किया, क्योंकि असमंजस को सगर ने किसी गलतफहमी के कारण राज्य से निकाल दिया था। अशुमान ने गंगा को लाने की इच्छा से तप किया, किन्तु सफल न हुआ। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र भगीरथ ने कठोर तप करके गंगा को प्रसन्न कर लिया, किन्तु गंगा ने कहा कि उनके वेग को पृथ्वी पर थामने वाला कोई होना चाहिए वरना यह धरती फोड़कर रसातल में चली जाएगी। तब भगीरथ ने तप द्वारा शिव को प्रसन्न कर गंगा को अपनी जटाओं में धारण करने को मना लिया। शिव ने गंगा को अपनी जटाओं में धारण कर एक लट खोल दी, तब गंगा ने प्रवाहित होकर सगर के 60,000 पुत्रों का उद्धार किया। भगीरथ के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः श्रुत, नाभ, सिन्धुद्वीप, अयुतायु, ऋतुपर्ण (जो नल का मित्र था। पासा फेंकने के विद्या का रहस्य नल को बताकर बदले में उसने नल से अश्वविद्या सीखी थी), सर्वकाम, सुदास, सौदास (जिसे मित्रसह तथा कल्माब पाद भी कहा जाता है) थे। सौदास की पत्नी मदयन्ती हुई। यह सौदास वशिष्ठ ऋषि के शाप से राक्षस हो गया और अपने कर्मों के कारण सन्तानहीन ही रहा।''

राजा परीक्षित के पूछने पर शुकदेव जी ने उन्हें सौदास की कथा सुनाई—''सौदास ने शिकार के दौरान एक राक्षस के मिल जाने पर उसका वध कर दिया, किन्तु उस राक्षस के भाई को छोड़ दिया। तब वह बदला लेने के लिए रसोइए के रूप में सौदास के घर चला गया। एक दिन वशिष्ठ जी जब भोजन करने आए तो अवसर देखकर उस राक्षस ने उन्हें मनुष्य का मांस परोस दिया। सर्वसमर्थ वशिष्ठ जी ने भोजन में मांस पहचान लिया और क्रोध में आकर सौदास को राक्षस होने का शाप दिया। बाद में जब उन्हें ज्ञात हुआ कि असली दोष रसोइए के भेस में राक्षस
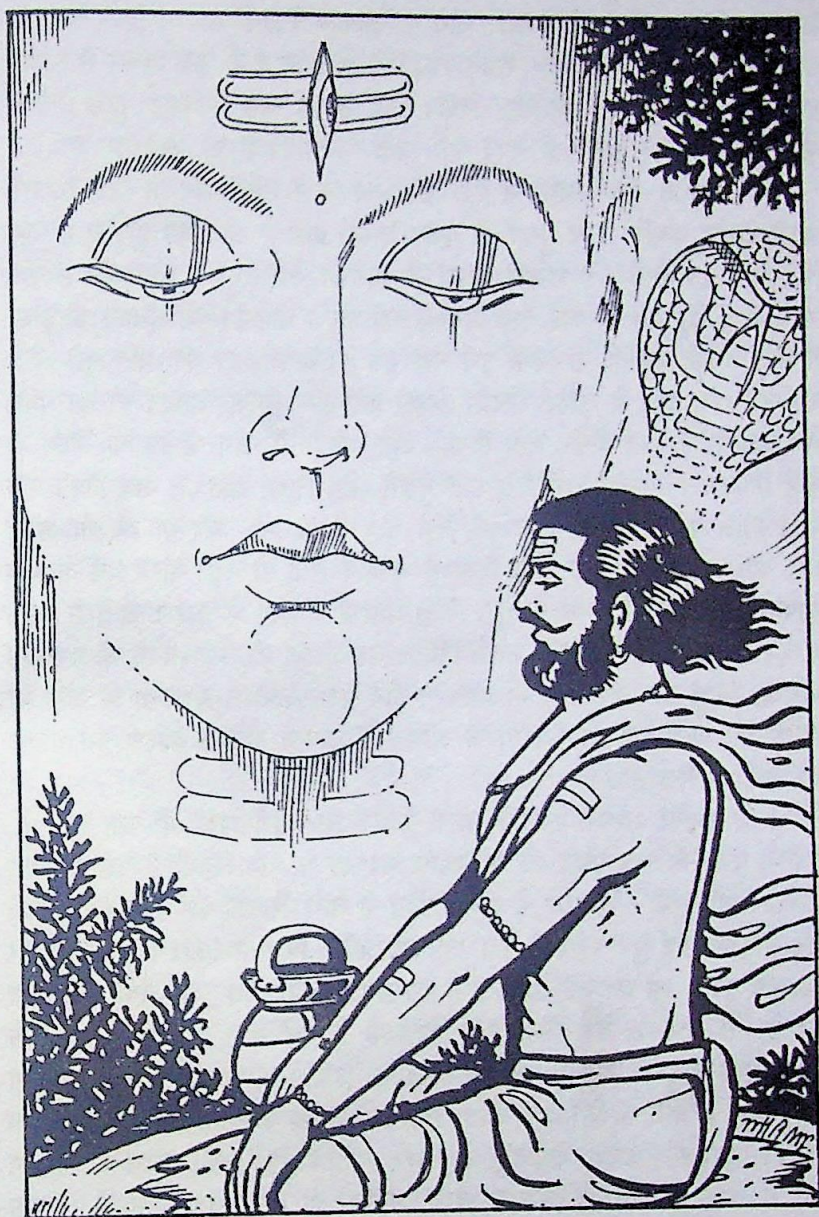
भगवान शंकर की आराधना करते राजा भगीरथ

का है तो उन्होंने सौदास के शाप को बारह वर्ष में सीमित कर दिया। इस बात से क्रुद्ध होकर सौदास ने भी वशिष्ठ जी को शाप देने के लिए जल अंजली में ले लिया किन्तु पत्नी मदयन्ती द्वारा समझाए जाने पर सौदास ने उन्हें शाप न दिया, तब उस अभिमंत्रित जल को, कहीं और फेंकने पर किसी की हानि न हो, इस विचार से उन्होंने वह जल अपने ही पैरों पर डाल दिया। अतः उनका नाम 'मित्रसह' हुआ। तीक्ष्ण जल से उनके पैर काले पड़ गए। अतः उन्हें 'कल्माषपाद' भी कहा गया।'

'राक्षस हो चुके सौदास ने एक बार भूख-प्यास शांत करने के लिए सहवास करते ब्राह्मण दम्पत्ति में से पुरुष को पकड़ लिया। ब्राह्मणी की इच्छा पूरी न हो पाई थी। अतः वह बोली—'हे राजन! आप तो शापवश राक्षस हुए हैं। (आपके संस्कार राजा के ही हैं) अतः आपको ऐसा अन्याय नहीं करना चाहिए। मुझे सन्तान की इच्छा है और इनकी कामना भी अभी पूर्ण नहीं हुई है। अतः आप मेरा पति मुझे लौटा दीजिए, परन्तु शाप से मोहित सौदास उसकी प्रार्थना न सुनकर ब्राह्मण को खा गया। तब ब्राह्मणी ने क्रुद्ध होकर शाप दिया—'अरे!' मैं अभी काम पीड़ित थी, फिर भी मेरी प्रार्थना न मानकर तूने मेरा पति मुझसे छीन लिया, अतः तू जब किसी स्त्री से सहवास करना चाहेगा, उसी क्षण तेरी मृत्यु हो जाएगी। फिर वो ब्राह्मणी अपने पति की बची अस्थियों के साथ चिता में जलकर सती हो गई। बारह वर्ष के बाद सौदास राक्षसयोनि से मुक्त तो हुए, किन्तु ब्राह्मणी के शाप के कारण पत्नी से रमण न कर सके। निःसंतान होने से उनके निवेदन पर वशिष्ठ जी ने मदयन्ती को गर्भाधान कराया, किन्तु सात वर्षों तक भी प्रसव न होने पर वशिष्ठ ने मदयन्ती के उदर पर पाषाणघात किया। पाषाण (अश्म) के आघात से उत्पन्न होने के कारण उस बालक का नाम अश्मक हुआ।'

'हे राजन! अश्मक का पुत्र मूलक हुआ। उसे 'नारीकवच' भी कहा जाता है, क्योंकि परशुराम जब पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर रहे थे, तब स्त्रियों ने उसे छिपाकर उसकी रक्षा की थी और पृथ्वी के क्षत्रिय रहित हो जाने पर वही वंश का मूल (प्रवर्तक) बना। मूलक का पुत्र दशरथ, पौत्र एडविड, प्रपौत्र विश्वसह और उसका भी पुत्र खटवांग हुआ—जो चक्रवर्ती सम्राट तथा रण क्षेत्र में अपराजित हुआ। देवों की प्रार्थना पर उन्होंने दैत्यों का वध किया। जब देवताओं से उन्हें ज्ञात हुआ कि दो घड़ी के बाद उनकी मृत्यु हो जाएगी, तब सब त्याग कर उन्होंने अपना मन भगवान में लगा दिया और दो घड़ी के ही विशुद्ध ईश्वर चिंतन से उनको परमगति प्राप्त हुई। खटवांग के पुत्र-पौत्र आदि क्रमशः दीर्घबाहु, रघु, अज, दशरथ हुए। इन्हीं दशरथ के यहां श्री हरि ने अपने अंशों सहित (लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) श्री राम अवतार लिए थे। श्रीराम की लीलाओं के विषय में आप सभी जानते हैं। ताड़का वध, सीता स्वयवंर, चौदह

वर्ष का वनवास, सुग्रीव मैत्री, लंका पर चढ़ाई, रावण आदि राक्षसों का संहार, शबरी, केवट, अहिल्या आदि का उद्धार आदि उनकी मुख्य लीलाएं हैं। राज तिलक के बाद धोबी के कहने से सीता का त्याग, लव-कुश नामक पुत्रों की प्राप्ति आदि भी उनकी लीला के भाग हैं। राम के पुत्र लव-कुश, लक्ष्मण के अंगद व चित्रकेतु, भरत के तक्ष व पुष्कल तथा शत्रुघ्न के सुबाहु व श्रुतसेन हुए। भरत द्वारा करोड़ों गन्धर्वों का संहार, शत्रुघ्न द्वारा मधु के पुत्र लवण असुर का वध, लक्ष्मण द्वारा रावण पुत्र मेघनाद का वध तथा अपने परमभक्त हनुमान के हृदय में वास आदि सब रामचरित्र के ही प्रसंग हैं। (इस विषय में पाठक जानते ही हैं, अतः स्थानाभाव से उनका विस्तृत वर्णन करना उचित नहीं समझा)।'

'सीता के पृथ्वी में समा जाने के बाद राम ने तेरह हजार वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अग्निहोत्र किया। फिर अपने धाम को वापस चले गए। भगवान राम का निर्मल चरित्र पापों को नष्ट कर देने वाला है, जो श्री राम का चरित्र सुनता है उसे सरलता, कोमलता आदि गुणों की प्राप्ति होती है तथा उसके समस्त कर्मबन्धन नष्ट हो जाते हैं। राम के पुत्र कुश का पुत्र अतिथि, पौत्र निषध, प्रपौत्र नभ, और आगे इसी क्रम में पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, देवानीक, अनीह, पारियात्र, बलस्थल, वज्रनाभ (जो सूर्य का अंश था), खगण, विधृति, हिरण्यनाभ (जो जैमिनी ऋषि का शिष्य व योगाचार्य हुआ। याज्ञवल्क्य ऋषि ने इसी से आध्यात्म योग की शिक्षा ली) पुष्य, ध्रुवसन्धि, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्र, मरू (यह योगसिद्ध होकर अब भी कलाप गांव में रहता है। कलियुग के अन्त में सूर्यवंश के नष्ट हो जाने पर यह उसे फिर से चलाएगा), प्रसुश्रुत, सन्धि, अमर्षण, महस्वान, विश्वसाह्व, प्रसेनजित, तक्षक तथा बृहद्वल हुए। इसी बृहद्वल को तुम्हारे पिता अभिमन्यु ने युद्ध में मार डाला था।'

'इक्ष्वाकु वंश में भविष्य में होने वाले राजा पुत्र-पौत्रादि के क्रम इस प्रकार हैं—बृहद्रण, उरुक्रिय, वत्सदृद्ध, प्रतिव्योम, भानु, दिवाक, सहदेव, बृहदश्व, भानुमान, प्रतीकाश्व, सुप्रतीक, मरुदेव, सुनक्षत्र, पुष्कर, अन्तरिक्ष, सुतया, अमित्रजित, वृहद्राज, बर्हि, कृतन्जय, रणन्जय, सन्जय, शाक्य, शुद्धोद, लांगल, प्रसेनजित, क्षुद्रक, रणक, सुरथ तथा सुमित्र ये सब बृहद्वल के वंशधर होंगे। सुमित्र के बाद कलियुग में यह वंश समाप्त हो जाएगा।' (इसे सूर्यवंश भी कहते हैं)'।

''इक्ष्वाकु के पुत्र विकुक्षि के वंश ऊपर कहा, 'अब निमि नामक दूसरे इक्ष्वाकु पुत्र का वंश सुनो।'' शुकदेव जी ने आगे कहा—''निमि ने यज्ञारम्भ कर वशिष्ठ को ऋत्विज चुना। वशिष्ठ बोले इन्द्र ने उन्हें अपने यज्ञ के लिए पहले ही वरण कर लिया है, अतः उनका यज्ञ पूर्ण करके वे निमि का यज्ञ कराएंगे, वो प्रतीक्षा करे। निमि ने विचारा कि जीवन क्षण भंगुर है। अतः शुभ कार्य को टालना ठीक नहीं, अतः उसने

किसी और से यज्ञ पूरा करा लिया। वशिष्ठ लौटे तो इस बात से क्रुद्ध हो गए। उन्होंने कहा—'तुझे अपने विचारवान होने का गर्व है, अतः तेरा शरीरपात हो जाए। निमि ने उस शाप को अन्यायपूर्ण माना। अतः वशिष्ठ को भी उन्होंने शरीरपात का शाप दिया, तब वशिष्ठ ने शापानुसार शरीर त्यागा और मित्रावरुण द्वारा उर्वशी के गर्भ से जन्म लिया। निमि ने भी आत्मविद्या से शरीर त्यागा, तब निमि के यज्ञ में आए मुनियों ने उसकी देह को औषधियों द्वारा सुरक्षित रखते हुए देवताओं को प्रसन्न कर निमि को पुनर्जीवित करा लिया, किन्तु निमि ने जीवित होकर कहा—'शरीर अनश्वर है—उसको एक दिन त्यागना ही पड़ता है। अतः वे शरीर का बंधन नहीं चाहते। तब देवताओं ने निमि को बिना देह के ही प्राणियों के नेत्रों में जीवित रहते हुए इच्छानुसार वास करने का वर दिया (पलकों को उठना-गिरना निमि के अस्तित्व का सूचक है, अतः इस क्रिया को 'निमेष' कहते हैं)। तब ऋषियों ने बिना राजा के अराजकता न फैल जाए इस विचार से निमि के मृत शरीर का मंथन किया। उससे उत्पन्न हुआ बालक (पिता से ही उत्पन्न होने के कारण) जनक कहलाया। विदेह (बिना शरीर वाले अर्थात निमि) का पुत्र होने से उसे 'वैदेह' और मंथन से उत्पन्न होने के कारण 'मिथिल' भी कहलाया। इसी ने मिथिलापुरी बसाई थी।'

'हे राजन! जनक के पुत्र-पौत्रादि का क्रम इस प्रकार है—उदावसु, नन्दिवर्धन, सुकेतु, देवरात, बृहद्रथ, महावीर्य, सुधृति, धृष्टकेतु, हर्यश्व, मरू, प्रतीपक, कृतिरथ, देवमीढ़, विश्रुत, महाधृति, कृतिरात, महारोमा, स्वर्णरोमा, ह्रस्वरोमा, सीरध्वज (ये सभी जनक के वंशज होने से जनक भी कहे गए, अतः सीरध्वज को सीरध्वज जनक भी कहते हैं। यज्ञहेतु पृथ्वी को जोतते समय हल के अग्रभाग से सीता उत्पन्न हुई, जो जनक पुत्री होने से जानकी, वैदेही और मैथिली भी कही गई।), कुशध्वज, धर्मध्वज, कृतध्वज व मितध्वज (दोनों भाई) हुए। कृतध्वज का पुत्र केशिध्वज और मितध्वज का खाण्डिक्य हुआ। इनमें केशिध्वज आत्मविद्या में और खाण्डिक्य कर्मकांड में प्रवीण था। खाण्डिक्य बाद में केशिध्वज से भयभीत हो भाग गया था। केशिध्वज के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः भानुमान, शतद्युम्न, शुचि, सनद्वाज, उर्ध्वकेतु, अज, पुरुजित, अरिष्टनेमि, श्रुतायु, सुपार्श्वक, चित्ररथ, क्षेमधि, समरथ, सत्यरथ, उपगुरु, उपगुप्त (जो अग्नि का अंशावतार था), वस्वनन्त, युयुध, सुभाषण, श्रुत, जय, विजय, ऋतु, शुनक, वीतहव्य, धृति, बहुलाश्व, कृति, महावशी। ये सभी मिथिल वंश में होने से 'मैथिल' तथा विदेह वंश में होने से 'वैदेह' कहे गए। सभी आत्मज्ञान सम्पन्न थे और याज्ञवल्क्य जैसे योगेश्वरों की कृपा से सभी गृहस्थ होते हुए भी सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से मुक्त थे। यहां तक इक्ष्वाकु पुत्र निमि का वंश चलता है।' अब चन्द्रवंशीय राजाओं के विषय में सुनो—

शुकदेव जी आगे बोले—"ब्रह्मा पुत्र अत्रि के नेत्रों से चन्द्रमा का जन्म हुआ। अमृतमय चन्द्रमा को ब्रह्मा ने औषधियों, वनस्पतियों, नक्षत्रों तथा ब्राह्मण का अधिपति बना दिया। राजसूय यज्ञ कर चन्द्रमा ने त्रिलोकी पर जय प्राप्त की, अतः वे घमण्डी हो गए। उन्होंने बृहस्पति की पत्नी तारा को बलपूर्वक हर लिया। बृहस्पति की याचना पर भी तारा को न लौटाने के कारण युद्ध छिड़ गया। बृहस्पति के पक्ष से देवताओं ने तथा बृहस्पति से द्वेष होने के कारण शुक्राचार्य सहित दैत्यों ने चन्द्रमा के पक्ष में युद्ध किया। तदनन्तर बृहस्पति के पिता विद्यागुरु अंगिरा ने ब्रह्मा से युद्ध बन्द कराने की प्रार्थना की। ब्रह्मा जी ने युद्ध रुकवाया और चन्द्रमा को डांट कर तारा वापस करवायी, किन्तु तारा गर्भवती थी। बृहस्पति ने तारा को उस गर्भ को त्याग देने को कहा। तारा ने गर्भ त्याग दिया, किन्तु उस स्वर्णसम चमकदार व सुन्दर बालक को देखकर बृहस्पति व चन्द्रमा दोनों ही उसे अपनाने को तैयार हो गए। तब तारा पर ही निर्णय छोड़ा गया कि वो बताए—बालक किसका है? तारा ने लज्जावश उन्हें जवाब न दिया किन्तु ब्रह्मा ने पूछने पर उन्हें चुपचाप बता दिया कि वह चन्द्रमा का पुत्र है। तब ब्रह्मा ने वह बालक चन्द्रमा को दिया। गम्भीर बुद्धि होने के कारण उसका नाम 'बुध' हुआ।'

'बुध के द्वारा इला के गर्भ से पुरूखा के जन्म की कथा तुमसे कह आया हूं। स्वर्गलोक में पुरूखा की प्रशंसा सुनकर उर्वशी का हृदय कामासक्त हो गया। उसे मित्रावरुण द्वारा मृत्युलोक में जाने का शाप भी मिला था। अतः वह कामपीड़ित हो पृथ्वी पर पुरूखा के पास आ गई पुरूखा भी उस पर मोहित हो गया, तब उर्वशी इन शर्तों पर उसके साथ रहने को तैयार हो गई—कि वह केवल घी खाएगी। मैथुन के समय के अलावा पुरूखा निर्वस्त्र उसके सामने न आएंगे और उर्वशी की धरोहर के रूप में दिए गए दो भेड़ के बच्चों की वे सदा रक्षा करेंगे। शर्त टूटने पर उर्वशी पुरूखा को त्याग देगी। उधर इन्द्र को उर्वशी के बिना स्वर्ग फीका लगने लगा तो उन्होंने गधर्वों को उर्वशी को लाने भेजा। गन्धर्वों ने युक्तिपूर्वक रात के अंधेरे में उन दो भेड़ के बच्चों को चुरा लिया, जिनकी रक्षा का भार पुरूखा पर था। भेड़ के बच्चों का क्रन्दन सुनकर उर्वशी ने पुरूखा को धिक्कारा तो पुरूखा क्रोध में आकर नग्न ही उनकी रक्षा को भागे। जब वे गन्धर्वों से भेड़ के बच्चे को छुड़ा रहे थे, तब गन्धर्व विद्युत के रूप में चमके, जिससे उर्वशी ने उन्हें निर्वस्त्र देख लिया। इस प्रकार शर्त पूरी न हो पाने के कारण उर्वशी वापस स्वर्ग चली गई। पुरूखा उर्वशी के वियोग में पागलों की भांति भटकने लगे। एक दिन उन्होंने उर्वशी को उसकी पांच सखियों के साथ कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के तट पर देखा और उससे ठहर जाने की याचना की। तब उर्वशी ने हर एक वर्ष के बाद एक रात पुरूखा के साथ बिताने के लिए

हामी भर ली।'

'वर्ष भर बाद मिलने से पुरूखा को सुख तो हुआ, किन्तु प्रातः जब वह जाने लगी तो वे फिर उदास हो गए। तब उर्वशी ने कहा कि वे गन्धर्वों को प्रसन्न करें, यदि वे चाहें तो उर्वशी को उन्हें दे देंगे। पुरूखा ने गन्धर्वों की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया, किन्तु गन्धर्वों ने उनको अग्निस्थापना का पात्र (अग्निस्थली) दे दी। आत्मविस्मृति की स्थिति में उसे ही उर्वशी समझ सीने से लगाए घूमते रहे। होश आने पर उसे वन में ही छोड़ उदास मन महल में लौट आए। त्रेतायुग के आरम्भ होने पर उनके हृदय में तीनों वेद प्रकट हुए, तब वे उस स्थली को लेने वन में गए, किन्तु वहां अग्निस्थली न थी, उसकी बजाय शमीवृक्ष था, जिसके गर्भ से एक पीपल का वृक्ष उग आया था। पुरूखा ने दोनों वृक्षों की लकड़ियों से दो अरणियां (मंथन काष्ठ) बनायीं और नीचे वाली को उर्वशी, ऊपरवाली को पुरूखा मानकर पुत्र चिन्तन करते हुए अग्नि प्रकट करने वाले मंत्रों से उनका मंथन किया। तब 'जातवेद' नामक अग्नि उत्पन्न हुआ। पुरूखा ने त्रयी विद्या से उसे आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि—तीन भागों में विभक्त कर पुत्र रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार पुरूखा द्वारा त्रेता के आरम्भ में वेदत्रयी और अग्नित्रयी का अविर्भाव हुआ। (इससे पूर्व सतयुग में ॐकार ही एकमात्र वेद था और अग्नि भी एक ही थी)। पुरूखा ने अग्नि को सन्तान रूप से स्वीकार कर गन्धर्व लोक की प्राप्ति की।'

'उर्वशी के पुरूखा के साथ रहने तथा वर्ष भर बाद एक रात्रि को मिलने से पुरूखा के छह पुत्र—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, जय और विजय भी हुए थे। श्रुतायु का पुत्र वसुमान, सत्यायु का श्रुतन्जय, रय का 'एक' और जय का पुत्र अमित था। विजय के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः भीम, कान्चन, होत्र, जहु (जो गंगा को अंजली में भरकर पी गए थे और गंगा पुनः जहु से प्रकट होने के कारण 'जाह्नवीं' कही गई थी), पुरु, बलाक, अजक, कुश हुए। कुश के चार पुत्र थे—कुशाम्बु, तनय, वसु व कुशनाभ। इनमें कुशाम्बु के पुत्र गाधि हुए। गाधि की पुत्री सत्यवती का विवाह ऋचीक ऋषि से हुआ। (गाधि उन्हें अपनी पुत्री देना न चाहते थे, अतः उन्होंने बदले में ऋचीक से एक हजार सफेद रंग के ऐसे घोड़े मांगे थे, जिनका एक-एक कान काला हो। ऋचीक ने वरुण को प्रसन्न कर गाधि की यह असम्भव शर्त पूरी की थी।'

'एक बार ऋचीक की पत्नी और सास दोनों ने उनसे श्रेष्ठ पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना की। तब ऋचीक ने अपनी पत्नी के लिए श्रेष्ठ ब्राह्मण के गुण वाला तथा अपनी सास के लिए श्रेष्ठ क्षत्रिय के गुणों वाला चरु मंत्रों के साथ पकाया और स्नान करने चले गए। ऋचीक की सास ने यह सोचकर कि अपनी पत्नी के लिए ऋचीक ने अधिक श्रेष्ठ चरु तैयार किया होगा, उससे उसका चरु ले लिया और अपना उसे दे दिया।

दोनों के चरु खा लेने पर ऋचीक को वास्तविकता पता चली तो वे अपनी पत्नी से बोले—यह बड़ा अनर्थ हुआ। अब तुम्हारे क्षत्रिय गुण वाला घोर दण्डनायक पुत्र उत्पन्न होगा और तुम्हारी मां के महान तपस्वी ब्राह्मण गुण वाला पुत्र होगा।' सत्यवती ने तब क्षमा मांग कर ऋचीक को प्रसन्न किया और कहा—'स्वामी ऐसा कुछ कीजिए कि मेरा पुत्र वैसा न होने पाए।' तब ऋचीक बोले—'मंत्रों से तैयार चरु निष्फल नहीं हो सकता, फिर भी तुम्हारे कहने पर मैं अपने तप से इतना कर सकता हूं कि तुम्हारे पुत्र के स्थान पर तुम्हारा पौत्र वैसा हो जाए।' इस प्रकार गाधि की पत्नी (ऋचीक की सास) के गर्भ से विश्वामित्र का और सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि का जन्म हुआ। बाद में सत्यवती सब लोकों को पवित्र करने वाली 'कौशिकी' नदी बन गई। जमदग्नि का विवाह रेणऋषि की पत्नी रेणुका से हुआ। रेणुका के गर्भ से वसुमान् आदि कई पुत्र हुए, उनमें से सबसे छोटा परशुराम चरु के प्रभाव से घोर क्षत्रीय स्वभाव वाला हुआ। कहा जाता है कि हैहयवंश के अन्त के लिए स्वयं भगवान परशुराम के रूप में अवतरित हुए थे। उन्होंने मर्यादाहीन व उच्छृंखल हो रहे क्षत्रियों को 21 बार पृथ्वी से हीन किया था। इसकी भी एक कथा है। हैहयवंश के अधिपति अर्जुन ने नारायणावतार दत्तात्रेय को प्रसन्न कर सहस्र भुजाओं व युद्ध में मारे न जाने का वर ले लिया था और योग द्वारा बहुत सी सिद्धियां भी प्राप्त कर ली थी। उसने एक बार महाबली रावण तक को बन्दी बना लिया था। जमदग्नि के आश्रम में कामधेनु का प्रताप देख वह बलपूर्वक कामधेनु को छीन ले गया था। तब परशुराम जी ने सेना समेत सहस्रबाहु का अकेले ही वध किया और उसके 1000 पुत्रों को खदेड़कर कामधेनु को लौटा लाए, तब जमदग्नि बोले कि सर्वदेवमय राजा का ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने वध करके ठीक नहीं किया, अतः वे तीर्थयात्रा पर जाकर प्रायश्चित करें।'

'पिता की आज्ञा मान जब वे प्रायश्चित के बाद लौटे। एक बार रेणुका चित्ररथ गंधर्व के प्रति आकृष्ट हो गई, फिर जमदग्नि के भय से उन्होंने स्वयं को संयत कर लिया। जमदग्नि ने अपनी पत्नी के मानसिक व्यभिचार को जान लिया। अतः पुत्रों को उन्होंने रेणुका का सिर काट लेने की आज्ञा दी। पर किसी पुत्र ने न मानी, तब उन्होंने परशुराम को मां के साथ भाइयों की भी हत्या करने का आदेश दिया। परशुराम ने आज्ञा का तुरंत पालन किया। इस पर जमदग्नि ने प्रसन्न होकर उनसे वर मांगने को कहा। तब परशुराम ने अपने भाइयों और माता के जीवन का वर मांगकर पुनर्जीवित कर लिया और यह भी वर मांगा कि उनकी मां व भाई इस घटना को भूल जाएं क्योंकि पिता की सामर्थ्य जानकर ही उन्होंने आज्ञापालन किया था।'

'परशुराम से हार कर सहस्रबाहु के जो पुत्र भाग गए थे, वे सदा अवसर की ताक में रहते थे। एक दिन परशुराम जब भाइयों सहित वन को गए हुए थे। सहस्रबाहु

पिता की आज्ञा से अपनी माता का सिर काटते परशुरामावतार में भगवान विष्णु

के पुत्रों ने अग्निशाला में बैठे हुए जमदग्नि ऋषि को मार डाला, रेणुका के गिड़गिड़ाने के बाद भी वे जमदग्नि का सिर काट ले गए। परशुराम जी को ज्ञात हुआ तो उन्होंने माहिष्मति नगरी के बीचों बीच उन सब सहस्रबाहु के पुत्रों के सिरों का पर्वत-सा खड़ा कर दिया और वहां से उनके रक्त की नदी बह निकली। इस प्रकार उन्होने 21 बार पृथ्वी को क्षत्रियों से विहीन करके कुरुक्षेत्र के समन्तपन्चक में उनके रक्त के पांच तालाब बना दिए। वे आज भी महेंद्र पर्वत पर निवास करते हैं और आगामी मन्वन्तर में सप्तऋषियों में रहकर वेदों का विस्तार करेंगे।'

शुकदेव जी ने आगे कहा—''अब गाधिपुत्र विश्वामित्र की सुनो। उन्होंने चरु प्रभाव से तपमार्ग अपनाया और क्षत्रित्व त्यागकर ब्रह्मतेज प्राप्त किया। विश्वामित्र के 100 पुत्र हुए, वे सभी 'मधुछन्दा' कहलाए। शुनःशेप जो हरिश्चन्द्र के यज्ञ में यज्ञपशु के लिए मोल लाया गया था, को विश्वामित्र ने वरुण की स्तुति कर छुड़ा लिया था, तब देवताओं ने उसे विश्वामित्र को दे दिया। देवताओं द्वारा दिए जाने के कारण यह 'देवरात' नाम से प्रसिद्ध हुआ। विश्वामित्र ने उसे अपने पुत्र रूप में स्वीकारा, किन्तु विश्वामित्र के पुत्र उसे अपना बड़ा भाई मानने को तैयार न हुए। तब उन बड़े 49 पुत्रों को शाप देकर विश्वामित्र ने म्लेच्छ बना दिया। 50वें पुत्र मधुछन्दा ने छोटे पचास भाइयों सहित शुनः शेप को बड़ा भाई मान लिया। अतः विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर उन्हें सुपुत्रों का पिता बनने का आशीष दिया। विश्वामित्र के अष्टक, हारीत, जय, ऋतुमान आदि और भी पुत्र हुए। इस कारण विश्वामित्र की संतानों से कौशिक गोत्र में कई भेद हो गए और देवरात को बड़ा भाई मानने से उसका प्रवर ही दूसरा हो गया। (प्रारम्भ में वशिष्ठ जी संत करार हो जाने के कारण ये—राजर्षि, ऋषि, महर्षि और फिर तप द्वारा ब्रह्मर्षि बने थे)।

'पुरूखा के पुत्र आयु के सन्तानों के विषय में भी कहता हूं, उसके—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, शक्तिशाली रम्भ और अनेजा नामक 5 पुत्र हुए। इनमें क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुहोत्र हुआ तथा पौत्र—काश्य, कुश और गृत्समद हुए। गृत्समद का पुत्र शुनक व पौत्र शौनक हुआ। कश्यप के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः काशि, राष्ट्र, दीर्घतमा और धन्वन्तरी। (धन्वतरी ही आयुर्वेद के प्रवर्तक और शौनक ऋषि हुए जो इस पुराण को सूत जी से सुन रहे हैं।) धन्वन्तरी भगवान विष्णु के ही अंश कहे गए। धन्वन्तरी के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः केतुमान्, भीमरथ, दिवोदास, द्युमान (जो प्रतर्दन, शत्रुजित, वत्स, ऋतुध्वज व कुवलयाश्व के नाम से भी प्रसिद्ध हुए) अलर्क आदि हुए। अलर्क ने इनमें पहली बार 66000 वर्षों तक पृथ्वी का राज्य भोगा। अलर्क का पुत्र सन्तति, पौत्र सुनीथ, प्रपौत्र-सुकेतन तथा उसका भी पुत्र धर्मकेतु, पौत्र सत्यकेतु, प्रपौत्र धृष्टकेतु एवं उसका भी पुत्र सुकुमार, पौत्र दीतिहोत्र, प्रपौत्र भर्ग हुआ। इसी भर्ग से राजा

भर्गभूमि का जन्म हुआ।'

'पुरूखा पुत्र आयु के बेटे रम्भ से रभस, रभस से गम्भीर और गम्भीर से अक्रिय का जन्म हुआ। अक्रिय की पत्नी से ब्राह्मण वंश चला। आयु के अन्य पुत्र अनेजा के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः शुद्ध, शुचि, त्रिककुद्, धर्मसारथि, शान्तरय हुए। शान्तरय ने आत्मज्ञानी होने के कारण संतान उत्पन्न नहीं की। अनेजा के भाई रजि के 500 पुत्र थे। देवताओं की प्रार्थना पर रजि ने दैत्यों को पराजित कर स्वर्ग इन्द्र को वापस दिलाया, किन्तु इन्द्र ने रक्षार्थ स्वर्ग तब उन्हीं के पास रहने दिया। रजि की मृत्यु के बाद इन्द्र के मांगने पर रजि पुत्रों ने स्वर्ग नहीं लौटाया, तब बृहस्पति ने अभिचार विधि ने हवनकर उनको धर्मभ्रष्ट कर दिया, फिर शक्तिहीन हो जाने से वे इन्द्र के हाथों मारे गए। क्षत्रवृद्ध (पुरूखा पुत्र) के पौत्र कुश का वंश बीच में रह गया था, वह सुनो- कुश से प्रति, प्रति से संजय, संयज से जय, जय से कृत, कृत से हर्यवन, हर्यवन से सहदेव, सहदेव से हीन तथा हीन से जयसेन हुआ। जयसेन का पुत्र संकृति तथा पौत्र महारथी जय हुआ। अब पुरूखा के पुत्र नहुष के वंश के विषय में कहूंगा।'

'नहुष के छह पुत्र—यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति व कृति हुए। बड़े पुत्र यति को राजनीति में रुचि न थी। अतः इन्द्रपत्नी शची से सहवास की चेष्टा में जब नहुष सप्तऋषियों के शाप से अजगर हो गए, तब ययाति राजा बने। चारों दिशाओं में चारों भाइयों को नियुक्त कर वे शुक्राचार्य पुत्री देवयानी और दैत्यराज वृषपर्वा पुत्री शर्मिष्ठा को पत्नी बनाकर राज्य करने लगे।'' तब परीक्षित ने पूछा कि क्षत्रिय होते हुए भी ययाति का विवाह ब्राह्मण की पुत्री देवयानी से कैसे हो गया?''—इस पर शुकदेव जी बोले—''शर्मिष्ठा एक बार गुरुपुत्री देवयानी व अन्य सखियों के सहित सरोवर में क्रीड़ा कर रही थी, तब शिव-पार्वती उधर से निकले। उनको देख सबने हड़बड़ा कर अंपने वस्त्र पहने, किन्तु शर्मिष्ठा ने शीघ्रता में देवयानी का वस्त्र पहन लिया। देवयानी ने इस बात पर शर्मिष्ठा को खरी-खोटी सुनाई—तब शर्मिष्ठा ने भी उसका अपमान कर उसे कुंए में धकेल दिया। बाद में ययाति उधर से निकले और उन्होंने देवयानी को कुएं से निकाल कर अपना दुपट्टा (उसके नग्न होने के कारण) उसे दिया। तब ययाति और देवयानी एक दूसरे को दिल दे बैठे। पूर्वकाल में बृहस्पति पुत्र कुच शुक्राचार्य का शिष्य मृतसंजीवनी विद्या सीखने को बना था, तब देवयानी के प्रणय निवदेन को उसने गुरुपुत्री होने से ठुकरा दिया था। इस पर क्रुद्ध होकर देवयानी ने उसे सब विद्या भूल जाने का शाप दिया था और कुच ने बदले में उसे यह शाप दिया था कि उसका विवाह किसी ब्राह्मण से न होगा, सो क्षत्रिय ययाति से प्रेम करने में देवयानी को अड़चन न हुई।'

'हे राजन! बाद में शुक्राचार्य को जब देवयानी से शर्मिष्ठा की करतूत की पता

चली तो वे क्रुद्ध होकर वृषपर्वा का त्याग करने लगे। वृषपर्वा ने शाप और पराजय के भय से उन्हें रोक कर मनाया तब शुक्राचार्य में देवयानी के अपमान की बात कही। वृषपर्वा देवयानी को इस शर्त पर संतुष्ट कर पाए कि शर्मिष्ठा सदा देवयानी की दासी बनकर रहेगी। बाद में देवयानी का विवाह ययाति से हुआ। देवयानी के गर्भवती हो जाने पर एक दिन एकांत में शर्मिष्ठा ने भी ययाति से सहवास की याचना की। पुत्र हेतु की गई प्रार्थना धर्मसंगत है। अतः ययाति ने उसे मान लिया। इस प्रकार देवयानी के—यदु तथा तुर्वसु व शर्मिष्ठा के अनु, द्रह्यु, पुरु हुए। देवयानी को जब वास्तविकता ज्ञात हुई तो वो ययाति के बहुत मनाने के बाद भी अपने मैके लौट गई। शुक्राचार्य को जब सब ज्ञात हुआ तो उन्होंने ययाति को बूढ़ा व कुरूप हो जाने का शाप दे दिया। तब ययाति ने कहा कि उनकी पुत्री का इस शाप से अनिष्ट ही होगा। अतः शुक्राचार्य ने कहा कि जो स्वेच्छा से तुम्हें जवानी दे दे उससे अपना बुढ़ापा बदल लो। तब ययाति ने अपने सब पुत्रों को बुलाकर बारी-बारी से उनसे जवानी देने को कहा। सब पुत्रों ने मना कर दिया किन्तु छोटे पुत्र पुरु ने उनकी बात मान ली। उन्हें प्रसन्नता से अपनी जवानी देकर उनका बुढ़ापा ले लिया।'

'हे परीक्षित! इस प्रकार 1000 वर्षों तक विषयभोग करने पर भी ययाति की तृप्ति न हुई। एक दिन अपने पतन पर विचार कर ययाति ने स्वयं को बकरे और देवयानी आदि को बकरियों की उपमा देते हुए कहा कि अब वे विषयों का त्याग करना चाहते हैं। अतः उन्होंने पुरु को उसकी जवानी वापस कर अपना बुढ़ापा ले लिया और समस्त पुत्रों का यथायोग्य अधिकार, सम्पत्ति व भूमि सौंपकर तथा पुरु को राजा बनाकर उन्होंने संन्यास ले लिया व बाद में भगवत गति प्राप्त की। देवयानी भी आसक्ति त्याग श्रीकृष्ण चरणों में ध्यान लगा, शरीर त्याग कर भगवान को प्राप्त हो गई। इस प्रकार ययाति ने सम्पूर्ण जीवन में यही पाया कि विषयों को भोग कर कभी तृप्ति नहीं होती बल्कि आत्मनाश होता है। भोग तो घी की भांति विषयाग्नि को और भड़का देते हैं। अतः उनका त्यागना ही उचित है।''

शुकदेव जी ने आगे कहा—''पुरु के पुत्र-पौत्रादि का क्रम भी सुनो—जनमेजय, प्रचिन्वान, प्रवीर, नमस्यु, चारुपद, सुद्यु, बहुगव, संयाति, अहंयाति, रौद्राश्व। रौद्राश्व ने घृताची नामक अप्सरा से—ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु, और वनेयु नामक दस पुत्र हुए। ऋतेयु का रन्तिभार और रन्तिभार के तीन पुत्र—सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ हुए। अप्रतिरथ का पुत्र कण्व, पौत्र मेधा तिथि और प्रपौत्र प्रस्कण्व आदि ब्राह्मण हुए।। सुमति का रैभ्यपुत्र तथा पौत्र दुष्यन्त हुआ। इसी दुष्यन्त ने विश्वामित्र द्वारा मेनका के गर्भ से उत्पन्न होने वाली तथा माता द्वारा त्यागी जाकर कण्व ऋषि के आश्रम में रहनेवाली शकुन्तला के साथ

गंधर्व विवाह किया था। शकुन्तला से ही सिंहों को बालपन में ही बांध लेने वाला निडर और बली भरत उत्पन्न हुआ। जो भगवान का ही अंशावतार कहा जाता है। भरत ने दीर्घतमा मुनि को पुरोहित बनाकर गंगासागर से गंगोत्री तक 55 अश्वमेध यज्ञ किए तथा प्रयाग से जमनोत्री तक 78 अश्वमेध यज्ञ किए। इन यज्ञों में उन्होंने इतना दान किया कि 1000 ब्राह्मणों में से प्रत्येक को 13084 गाएं मिलीं। (14 लाख हाथी भी दान किए।) इन यज्ञों से उन्हें बहुत यश और विजय मिली।'

'भरत ने असुरों द्वारा रसातल में बलपूर्वक रखी गई देवांगनाओं को मुक्त कराया और 27 हजार वर्षों तक समस्त दिशाओं पर एकछत्र राज्य किया। भरत ने विदर्भराज की तीन पुत्रियों से विवाह किया, लेकिन उनकी सन्तानों को देखकर भरत ने कहा कि वे उनके अनुरूप नहीं हैं। अतः भरत की पत्नियों ने अपने पुत्रों को स्वयं त्यागे जाने के भय से मार डाला। तब सन्तान के लिए भरत ने 'मरुत्सोम' यज्ञ करके मरुद्गणों से 'भारद्वाज' नामक पुत्र प्राप्त किया। भारद्वाज की उत्पत्ति की भी एक कथा है—एक बार बृहस्पति ने अपने भाई उतथ्य की गर्भवती पत्नी से मैथुन करना चाहा। गर्भ में स्थित बालक (दीर्घतमा) ने मना किया तो बृहस्पति ने उसे अन्धा हो जाने का शाप देकर सम्भोग किया और गर्भ ठहर गया। तब उतथ्य की पत्नी ममता, पति द्वारा त्यागे जाने के भय से उस गर्भ का त्याग करने लगी तो बृहस्पति ने कहा 'यह मेरा और मेरे भाई का क्षेत्रज पुत्र है। (अर्थात् दोनों का/द्वाज है।) सो इसका त्याग न करके इसका भरण-भोषण (भर) कर। तब ममता ने कहा—यह नया गर्भ तो तुम्हारा और मेरा है, मेरे पति का नहीं, अतः तुम्हीं इसका भरण (भार) पोषण करो। इस प्रकार विवाद करते हुए माता-पिता दोनों ही उसे छोड़ गए तो वह पुत्र 'भारद्वाज' कहलाया। मरुद्गणों ने उसका पालन किया और भरत द्वारा यज्ञ किए जाने पर मरुद्गणों ने उसे भरत को दे दिया। यह भरत का दत्तक पुत्र हुआ।'

'मन्यु भारद्वाज का पुत्र हुआ और—बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग—पांच पुत्रों का पिता बना। नर का पुत्र संकृति हुए तथा दो पौत्र गुरु एवं रन्तिदेव हुए। रन्तिदेव सबमें भगवान को देखते थे। एक बार उन्हें 48 दिन तक कुछ खाने पीने को न मिला। 49वें दिन कुछ भोजन मिला तो मारे भूख के वे परिवार सहित कांप रहे थे तभी एक ब्राह्मण अतिथि के आ जाने पर उन्होंने पहले उन्हें भोजन कराया। शेष भोजन करना चाहा तो एक शूद्र अतिथि आ गया, फिर कुत्ते और अन्त में चाण्डाल। तब तक उनके पास केवल एक व्यक्ति के पीने योग्य जल ही बचा था—लेकिन वह भी चाण्डाल को दे दिया। तब भगवान ने प्रत्यक्ष हो कर उन्हें दर्शन दिए। उनका यश लोक-परलोक में पहुंचा।'

'गर्ग से शिनि व शिनि से गार्ग्य हुए जो बाद में ब्राह्मण हुए। महावीर्य का पुत्र

दुरितक्षय व तीन पौत्र त्रय्यारुणि, कवि तथा पुष्करारुणि हुए। ये तीनों भी ब्राह्मण हो गए। बृहत्क्षत्र के पुत्र हस्ति ने हस्तिनापुर बसाया। हस्ति के तीन पुत्र—अजमीढ, द्विमीढ व पुरुमीढ हुए। अजमीढ के पुत्र प्रियमेघ आदि ब्राह्मण हुए। इन्हीं अजमीढ के एक पुत्र बृहदिषु का पुत्र हुआ-बृहद्धनु, जो बृहत्काय का पिता, जयद्रथ का पितामह और विशद का प्रपितामह हुआ। विशद पुत्र सेनजित के चार पुत्र—रुचिराश्व, दृढ़हनु काश्य और वत्स हुए। रुचिराश्व का पुत्र पार तथा पौत्र पृथुसेन व नीप हुए। नीप के 100 पुत्र हुए। छायाशुक की पुत्री कृत्वी से इसके ब्रह्मदत्त नामक अतियोगी पुत्र हुआ। ब्रह्मदत्त ने सरस्वती से विष्वकसेन को उत्पन्न किया। (विष्वकसेन ने जैगीषिव्य के उपदेश से योगशास्त्र रचा) विष्वकसेन का पुत्र उदवस्व, पौत्र भल्लाद हुआ।'

'द्विमीढ के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः यवीनर, कृतिमान, सत्यधृति, दृढ़नेमि, सुपार्श्व, सुमति, सन्नतिमान, कृति (जिसने हिरण्यनभि से योगविद्या प्राप्त कर 'प्राच्यसाम' नामक ऋचाओं की छह संहिताएं कहीं) नीप, उग्रायुध, क्षेम्य, सुवीर, रिपुंजय, बहुरथ हुए। द्विमीढ का भाई पुरुमीढ निःसन्तान रहा। अजमीढ की दूसरी पत्नी नलिनी से नील पैदा हुआ। नील के पुत्र-पौत्रादि आदि क्रमशः शान्ति, सुशान्ति, पुरुज, अर्क, भर्म्याश्व हुए। भर्म्याश्व के पांच पुत्र—मुगदल, यवीनर, बृहदिषु, काम्पिल्य और संजय हुए। पांच देशों का शासन करने में समर्थ होने से ये 'पाञ्चाल' कहे। मुगदल से 'मौद्‌गल्य' नामक ब्राह्मण गोत्र की प्रवृत्ति हुई। मुगदल के दिवोदास और अहल्या जुडवां पुत्र व पुत्री हुए। अहल्या ने गौतम ऋषि से विवाह किया और शतानन्द की माता, सत्यधृति की दादी व शरद्वान की परदादी बनीं। उर्वशी को देखकर शरद्वान का वीर्य मूंज के झाड़ पर गिर गया था, जिससे कृप व कृपी नामक जुडवां पुत्र-पुत्री हुए, जिन्हें महाराज शान्तनु वहां से उठा लाए थे। यही कृप कृपाचार्य हुए और कृपी द्रोणाचार्य की पत्नी हुई।'

'दिवोदास पुत्र मित्रेयु के—च्यवन, सुदास, सहदेव और सोमक ये चार तथा सोमक के सौ पुत्र हुए, जिनमें बड़ा जन्तु व छोटा पृषत था। पृषत के पुत्र द्रुपद द्रोपदी नामक कन्या व धृष्टधुम्न नामक पुत्र के पिता हुए। धृष्टधुम्न का पुत्र धृष्टकेतु हुआ—ये सभी पांचाल कहे गए। इसीलिए द्रोपदी का एक नाम पान्चाली भी हुआ। अजमीढ के दूसरे पुत्र ऋक्ष से संवरण नाम का पुत्र हुआ। सूर्यकन्या तपती से विवाह कर इसने कुरु को जन्म दिया। कुरु के—परीक्षित, सुधन्वा, जह्नु व निषधाश्व—ये चार पुत्र हुए। सुधन्वा के पुत्र पौत्रादि क्रमशः सुहोत्र, च्यवन, कृती, उपरिचरवसु, बृहद्रथ आदि हुए। बृहद्रथ के कई भाई थे—उनमें कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र, चेदिप तथा स्वयं बृहद्रथ चेदि देश के शासक हुए। बृहद्रथ की पहली पत्नी से क्रमशः कुशाग्र, ऋषभ, सत्यहित, पुष्पवान तथा जह्नु पुत्र-पौत्रादि हुए। दूसरी पत्नी के गर्भ से एक शरीर के दो टुकड़े

उत्पन्न हुए जो फिंकवा दिए गए, किन्तु 'जरा' नामक राक्षसी द्वारा जोड़ दिए जाने पर वह जीवित हो गया और इसीलिए जरासंध कहलाया। जरासंध सहदेव का पिता, सोमाधि का दादा, तथा श्रुतश्रवा का परदादा हुआ।'

'कुरुपुत्र परीक्षित निःसन्तान रहा। जह्नु का वंशक्रम पुत्र-पौत्रादि की दृष्टि से क्रमशः इस प्रकार है—सुरथ, विदूरथ, सार्वभौम, जयसेन, राधिक, अयुत, क्रोधन, देवातिथि, ऋष्य, दिलीप, प्रतीप, देवापि (देवापि के दो भाई शान्तनु व बाह्लीक भी हुए)। देवापि के वनगमन के कारण शान्तनु राजा हुआ। (शान्तनु जिसे छू देता था उसे शांति व जवानी मिल जाती थी। अतः उसका नाम शान्तनु हुआ)। देवापि कलापग्राम में आज भी योग साधना कर रहे हैं। कलियुग में चन्द्रवंश का नाश होने पर ये पुनः इसकी स्थापना करेंगे। बाह्लीक का पुत्र सोमदत्त हुआ, जिसके तीन पुत्र—भूरि, भूरिश्रवा व शल थे। शान्तनु के गंगा के गर्भ से नैष्ठिक ब्रह्मचारी भीष्म (देवव्रत) हुए । भीष्म संसार के सब वीरों में अग्रणीय थे—उन्होंने अपने गुरु परशुराम को भी युद्ध में संतुष्ट किया था। दाशराज की कन्या सत्यवती (जो वास्तव में उपरिचरवसु के वीर्य से मछली के गर्भ से उत्पन्न हुई थी किन्तु दाशराज द्वारा पालित थी) से शान्तनु के चित्रांगद व विचित्रवीर्य दो पुत्र हुए। विवाहपूर्व सत्यवती के गर्भ से पाराशर ऋषि द्वारा मेरे पिता कृष्णद्वैपायन व्यास उत्पन्न हुए थे। उन्हीं से मैंने इस पुराण का ज्ञान प्राप्त किया। चित्रांगद गंधर्व द्वारा मारा गया। विचित्रवीर्य का विवाह भीष्म द्वारा उठा कर लाई गई काशिराज की पुत्रियों अम्बिका व अम्बालिका से हुआ। दोनों पत्नियों में अति आसक्ति से उसे राजयक्ष्मा रोग ने निःसंतान ही मार डाला। तब सत्यवती के आग्रह पर मेरे पिता व्यास जी ने विचित्रवीर्य की पत्नियों से धृतराष्ट्र व पाण्डु व उनकी दासी से विदुर नामक पुत्र उत्पन्न किए। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे।'

'हे परीक्षित! धृतराष्ट्र ने गांधारी से दुर्योधन आदि 100 पुत्र व दुःशला नामक एक पुत्री हुई। पाण्डु शापवस सहवास न कर सकते थे। अतः उनकी पत्नी कुन्ती ने धर्म, वायु तथा इन्द्र की कृपा से एक-एक महारथी पुत्र क्रमशः युधिष्ठिर, भीम व अर्जुन प्राप्त किए। पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री को भी अश्विनीकुमारों की कृपा से दो सुन्दर पुत्र नकुल व सहदेव हुए। इन पांच पाण्डवों के द्रोपदी के गर्भ से तुम्हारे पांच चाचा हुए। युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीम से श्रुतसेन, अर्जुन से श्रुतकीर्ति, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतकर्मा। इसके अलावा पोरवी नामक पत्नी से युधिष्ठिर ने देवता, हिडिम्बा से भीम ने घटोत्कच तथा काली से सर्वगत नामक पुत्र उत्पन्न किए। सहदेव ने पर्वतकुमारी विजया से सुहोत्र तथा नकुल ने करेणुमती से नरमित्र नामक पुत्र प्राप्त किए। अर्जुन ने भी नागकन्या उलूपी के गर्भ से इरावान, मणिपुर नरेश की कन्या से बभ्रुवाहन (जिससे उसके नाना ने गोद ले लिया था अतः वह उसका

पुत्र कहा गया।) तथा कृष्ण की बहन सुभद्रा से तुम्हारे पिता अभिमन्यु को उत्पन्न किया था। अभिमन्यु द्वारा उत्तरा के गर्भ से तुम हुए। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से गर्भ ही में श्रीकृष्ण ने तुम्हारी रक्षा की थी। तुम्हारे पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन व उग्रसेन यहां बैठे ही हैं।'

'हे राजन्! भविष्य में तक्षक द्वारा काटे जाने पर जब तुम मृत्यु को प्राप्त होगे तो जनमेजय अति क्रुद्ध होकर सर्प यज्ञ कर अग्नि में सर्पों का हवन करेगा। अश्वमेध यज्ञ कर सम्राट बनेगा। इसके शतानीक नामक पुत्र होगा जो कृपाचार्य से युद्ध विद्या, याज्ञवल्क्य से वेद व कर्मकाण्ड तथा शौनक जी से आत्मज्ञान प्राप्त कर परमात्मा को प्राप्त होगा। शतानीक के जो पुत्र-पौत्रादि होंगे वो इस प्रकार हैं—सहस्रनीक, अश्वमेधज, असीम-कृष्ण, नेमिचक्र, चित्ररथ, कविरथ, वृष्टिमान्, सुषेण, सुनीथ, नृचक्षु, सुखीनल, परिप्लव, सुनय, मेधावी, नृपंजय, दूर्व, तिमि, बृहद्रथ, सुदास, शतानीक, दुर्दमन, वहीनर, दण्डपाणि, निमि और क्षेमक। इस प्रकार तुम्हें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों के निवास स्थान चन्द्रवंश का वृत्तांत संक्षेप में कहा। देवताओं और ऋषियों द्वारा सम्मानित यह वंश क्षेमक के साथ ही कलियुग में समाप्त हो जाएगा। अब मगध नरेश जरासंध के आगे होने वाले वंशजों के विषय में भी सुन लो।'

'जरासंध पुत्र सहदेव के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः मार्जारि, श्रुतश्रवा, अयुतायु, निरमित्र, सुनक्षत्र, बृहत्सेन, कर्मजित्, सृतंजय, विप्र, शुचि, क्षेम सुव्रत, धर्मसूत्र, शम्, द्युमत्सेन, सुमति, सुबल, सुनीथ, सत्यजित्, विश्वजित्, रिपुञ्जय होंगे जिनका शासनकाल 1000 वर्षों के भीतर होगा।''

शुकदेव जी आगे बोले—''ययाति पुत्र अनु के तीन पुत्र—सभानर, चक्षु व परोक्ष हुए। सभानर का कालनर, कालनर का सृंजय, सृंजय का जनमेजय, उसका महाशील, महाशील का महामना तथा महामना के दो पुत्र उशीनर व तितिक्षु हुए। उशीनर के चार पुत्र—शिवि, वन, शमी व दक्ष हुए। शिवि के भी चार—वृषादर्भ, सुबीर, भद्र व कैकेय हुए। तितिक्षु के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः रुशद्रथ, हेम, सुतपा, बलि हुए। बलि की पत्नी से दीर्घतमा मुनि ने अंग, बंग, कलिंग, सुह्म, पुण्ड्र और अन्ध्र ये छह पुत्र उत्पन्न किए। इन छहों ने अपने नामों से पूर्व दिशा में छह देश बसाए। अंग का पुत्र खनपान पौत्र दिविरथ, प्रपौत्र धर्मरथ तथा उसका भी पुत्र चित्ररथ (रोमपाद) हुआ। रोमपाद निःसंतान होने से अपने मित्र अयोध्यापति दशरथ की पुत्री शान्ता को गोद ले लिया। शान्ता का विवाह विभाण्डक ऋषि द्वारा हरिणी के गर्भ से उत्पन्न ऋष्य शृंग ऋषि से हुआ। ऋष्य शृंग द्वारा कराए इन्द्रयज्ञ से रोमपाद को एक पुत्र प्राप्त हुआ और दशरथ को चार। रोमपाद पुत्र चतुरंग से पृथुलाक्ष हुआ। पृथुलाक्ष के तीन पुत्र बृहद्रथ, बृहत्कर्मा व बृहद्भानु हुए। बृहद्रथ का बृहन्मना और उसका जयद्रथ हुआ। जयद्रथ

ने सम्भूति से विजय को जन्म दिया। विजय के धृति, धृति के धृतव्रत, धृतव्रत का सत्कर्मा और उसका अधिरथ हुआ। निःसंतान अधिरथ को कुन्ती द्वारा त्यागा हुआ, पिटारी में रखा, गंगा में बहता पुत्र 'कर्ण' मिल गया। कर्ण के वृषसेन नामक पुत्र हुआ।'

'ययाति पुत्र द्रह्यु के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः बभ्रु, सेतु, आरब्ध, गान्धार, धर्म, धृत, दुर्मना, प्रचेता हुए। प्रचेता के 100 पुत्र उत्तर दिशा में म्लेच्छों के राजा बने। ययाति पुत्र तुर्वसु के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः वह्नि, भर्ग, भानुमान्, त्रिभानु, करन्धम, मरुत हुए। मरुत ने सन्तानहीन होने से पुरुवंशी दुष्यन्त को पुत्र बनाकर रखा, किन्तु राज्य कामना से दुष्यन्त अपने वंश में लौट गए। अब ययाति के बड़े पुत्र यदु का वंश कहता हूं जो परमपवित्र एवं पापनाशक है।'

'यदु के चार पुत्र—सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल व रिपु थे। सहस्रजित् का शतजित् हुआ, जिसके महाहय, वेणुहय और हैहय तीन पुत्र थे। हैहय के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः धर्म, नेत्र, कुन्ती, सोहंजि, महिष्मान्, भद्रसेन व धनक हुए। (धनक का एक भाई दुमर्द भी था) धनक के चार पुत्र हुए—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा। कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन महा बलशाली सम्राट हुआ (इसके विषय में कह आए हैं, हजार हाथ पाकर यही सहस्रार्जुन हुआ था)। इसने 85 हजार वर्ष राज्य किया। इसके हजारों पुत्रों में—जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और अर्जित—ये पांच ही बचे, शेष सब परशुराम द्वारा मार डाले गए थे। जयध्वज का पुत्र तालजंघ हुआ, जिसके 100 पुत्र थे (सब 'तालजंघ' नामक क्षत्रिय कहलाए)। महर्षि और्व की शक्ति से राजा सगर ने इन सभी को मार दिया था। इन सौ में बड़े पुत्र का नाम वीतिहोत्र था, जो मधु नामक पुत्र का पिता हुआ था। मधु के भी वृष्णि आदि 100 पुत्र हुए। (मधु, वृष्णि व यदु के कारण यह यदुवंश माधव, वार्ष्णेय और यादव नाम से भी प्रसिद्ध है।) यदुपुत्र क्रोष्टा के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः वृजिनवान्, श्वाहि, रुशेकु, चित्ररथ, शशबिन्दु (जो युद्ध में अजेय व परमयोगी था) हुए। शशविन्दु के दस हजार पत्नियां थीं और प्रत्येक से एक-एक लाख सन्तानें हुईं थीं। उन सौ करोड़/एक अरब सन्तानों में पृथुश्रवा आदि 6 पुत्र मुख्य थे। पृथुश्रवा के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः धर्म, उशना (100 अश्वमेध यज्ञकर्ता), रूचक तथा पुरुजित् (जिसके 4 भाई रुक्म, रुक्मेषु, पृथु व ज्यामघ भी थे) हुए। ज्यामघ का शैब्या से बहुत समय बाद विदर्भ नामक पुत्र हुआ, जिसका विवाह ज्यामघ द्वारा पहले ही ले आई गई कन्या भोज्या से हुआ था।''

शुकदेव ने आगे कहा—''कुश, क्रथ व रोमपाद विदर्भ पुत्र हुए। रोमपाद का पुत्र बभ्रु, पौत्र कृति, प्रपौत्र उशिक और उसका भी पुत्र चेदि हुआ। इसी चेदि के वंश में बाद में दमघोष व शिशुपाल आदि हुए। क्रथ के पुत्र-पौत्र आदि क्रमशः कुन्ती,

धृष्टि, निर्वुति, दशार्ह, व्योम, जीमूत, विकृति, भीमरथ, नवरथ, दशरथ, शकुनि, करम्भि, देवरात, देवक्षत्र, मधु, कुरुवश, अनु, पुरुहोत्र, आयु, सात्वत आदि हुए। सात्वत के—भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अंधक व महाभोज ये 7 पुत्र हुए। भजमान की पहली पत्नी से—निम्लोचि, किंकिण, धृष्टि ये तीन और दूसरी से—शताजित्, सहस्राजित व अयुताजित् ये तीन पुत्र पैदा हुए। देवावृध के बभ्रु हुआ, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ कहा गया। धर्मात्मा महाभोज के वंश में भोजवंशी यादव उत्पन्न हुए। वृष्णि के सुमित्र व युधाजित् हुए। युधाजित् के शिनि और अनमित्र। अनमित्र का पुत्र निम्न हुआ। सत्राजित् व प्रसेनजित् निम्न के ही पुत्र थे। शिनि के सत्यक, सत्यक के युयुधान (सात्यकि), उसके जय, जय का कुणि व कुणि का पुत्र युगंधर हुआ। वृष्णि के (अनमित्र का एक और पुत्र) श्वफल्क व चित्ररथ हुए। श्वफल्क के गान्दिनी के गर्भ से तेरह पुत्र हुए—अक्रूर, आसंग, सारमेय, मृदुर, मृदुविद्, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमादन व प्रतिबाहु। इनके एक सुधीरा नामक बहन भी थी। अक्रूर के दो पुत्र—देववान् व उपदेव हुए। चित्ररथ के पृथु, विदूरथ आदि बहुत से पुत्र हुए।'

'सात्वतपुत्र अन्धक के—कुकुर, भजमान, शुचि व कम्बलबर्हि चार पुत्र हुए। उनमें कुकुर के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः वह्नि, विलोमा, कपोत-रोमा, अनु (तुम्बरु गंधर्व का मित्र), अंधक, दुन्दुभि, अरिद्योत, पुनर्वसु, आहुक (बहन आहुकि), देवक (भाई उग्रसेन) हुए। देवक के चार पुत्र हुए—देववान्, उपदेव, सुदेव व देववर्धन तथा सात पुत्रियां—धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी। वसुदेव से इन सातों का ब्याह हुआ। उग्रसेन के—कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान् नौ पुत्र थे तथा कंसा, कंका, कंसवती, शूरभु व राष्ट्रपालिका नामक पांच पुत्रियां थीं। इनका ब्याह वसुदेव के छोटे भाइयों देव भाग आदि से हुआ था। अब चित्ररथ आदि के विषय में सुनो।'

'चित्ररथ से विदूरथ, विदूरथ से शूर, शूर से भजमान, भजमान से शिनि, शिनि से स्वयं भोज व उससे हृदीक हुआ। जो शतधन्वा, देवबाहु व कृतवर्मा का पिता था। देवमीढ पुत्र शूर ने मारिषा से—देवभाग, आनक आदि 10 पुत्र हुए। इनमें बड़े वसुदेव थे, जो 'आनक दुन्दुभी' कहलाए और भगवान कृष्ण के पिता हुए। वसुदेव आदि दस भाइयों (देवभाग, मानक, सृंजय, रेवश्रवा, श्यामक, कंक, वृक, शर्मीक और वत्सक) के पृथा (कुंती), श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा व राजाधिदेवी—ये पांच बहने हुईं। वसुदेव के पिता के मित्र कुन्तिभोज ने निःसंतान होने से पृथा को गोद ले लिया था, अतः वह कुन्ती कही गई। दुर्वासा ऋषि ने प्रसन्न होकर देवताओं का आह्वान कर उनसे सन्तान प्राप्ति का वर कुन्ती को दिया था, जिसके परीक्षण के तौर पर कुन्ती ने नादानी में

सूर्य से 'कर्ण' को प्राप्त कर अविवाहित होने से त्याग दिया था। तुम्हारे परदादा पाण्डु से कुन्ती का ब्याह हुआ था। श्रुतदेवा का ब्याह करुषदेश के राजा वृद्ध शर्मा से हुआ जिससे दन्तवक्त्र का जन्म हुआ (यह पूर्वजन्म में हिरण्याक्ष था)। श्रुतकीर्ति कैकय राज धृष्टकेतु से ब्याही गई और सन्तर्दन आदि 5 पुत्रों की मां हुई। राजाधिदेवी जयसेन से विवाह कर विन्द और अनुविन्द की माता बनी (ये अवन्ती के राजा हुए)। श्रुतश्रवा चेदिराज दमघोष से ब्याही गई और शिशुपाल (जो पूर्वजन्म में हिरण्यकशिपु था) की माता हुई। वसुदेव के भाइयों में देवभाग के कंसा के गर्भ से चित्रकेतु व बृहद्बल, देवश्रवा के कंसवती के गर्भ से सुवीर व इषुमान्, आनक के कंका के गर्भ से सज्यजित् और पुरुजित् तथा सृंजय के राष्ट्रपालिका के गर्भ से वृष और दुर्मर्षण आदि कई पुत्र हुए।'

'श्यामक के शूरभू से हिरण्याक्ष व हरिकेश हुए तथा मिश्रकेशी अप्सरा से वत्सक ने वृक आदि पुत्र उत्पन्न किए। वृक ने दुर्वाक्षी से तक्ष, पुष्कर व शाल आदि पुत्रों को जन्म दिया। शमीक ने सुदामिनी से सुमित्र व अर्जुन पाल आदि कई पुत्र एवं कंक ने कर्णिका के गर्भ से ऋतुधाम और जय नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। अब वसुदेव की संतानों के विषय में सुनो।'

'वसुदेव की रोहिणी, भद्रा, पौरवी, मदिरा, रोचना, इला व देवकी आदि बहुत-सी पत्नियां थीं। रोहिण से बल (बलराम), गद, सारण, दुर्भद, विपुल, ध्रुव, कृत आदि पुत्र हुए। पौरवी से—भूत, सुभद्र आदि बारह पुत्र हुए। मदिरा से—नन्द, उपनन्द, कृतक, शूर आदि, कौसल्या से सिर्फ एक ही पुत्र केशी, रोचना से हस्त एवं हेमांगद आदि, इला से उरुवल्क आदि यदुवंशी पुत्र हुए धृतदेवा से विपृष्ठ, शान्तिदेवा से श्रम व प्रतिश्रुत आदि कई, उपदेवा से कल्पवर्ष आदिदस, श्रीदेवा से हंस, सुवंश आदि छह, देवरक्षिता से गद आदि नौ, सहदेवा से पुरुविश्रुत आदि आठ तथा देवकी से भी—कीर्तिमान् सुषेण, भद्रसेन आदि आठ पुत्र वसुदेव जी के हुए। देवकी के आठवें पुत्र श्री कृष्ण जो स्वयं श्रीहरि के अवतार थे—तुम्हें ज्ञात ही है। सुभद्रा (परीक्षित की दादी) भी देवकी ही की पुत्री थीं।'

'धर्म की हानि होने पर उसकी रक्षार्थ अवतार लेने वाले श्री विष्णु ने कृष्ण रूप से—ब्रज, मथुरा और द्वारका आदि में अनेक लीलाएं की। बहुत-सी (सोलह हजार एक सौ आठ) स्त्रियों से विवाह कर उन्होंने हजारों पुत्र उत्पन्न किए। पृथ्वी से अन्यायी क्षत्रियों व असुरों का भार उतारकर, अर्जुन को यश की प्राप्ति करा तथा गीता उपदेशित कर एवं उद्धव को आत्म तत्व का उपदेश देकर वे अपने स्वधाम सिधार गए थे। यदुवंश का श्रवण-अध्ययन संचित पापों को नष्ट कर देने वाला परम पवित्र है।''

❑❑

दशम स्कन्ध

(पूर्वार्ध)

परीक्षित बोले—"आपने सूर्यवंश व चन्द्रवंश के राजाओं का वर्णन किया। हे महामुने! सर्वात्मा श्रीकृष्ण—जो मेरे कुलदेव भी हैं—की लीलाओं का भी हमसे वर्णन कीजिए। आपने बताया कि उन्होंने ब्रज, मथुरा, द्वारका आदि में अनेकों लीलाएं की हैं। हम उनको भी सुनना चाहते हैं।"

सूतजी बोले—"हे शौनक! राजा परीक्षित के उस समीचीन प्रश्न का स्वागत कर शुकदेव जी ने कहा—हे राजन! फिर तुम्हें भक्ति प्रदान करने वाला और कहने व सुनने वाले दोनों ही को पवित्र कर देने वाला श्रीकृष्ण का चरित्र सुनाता हूं। उस समय लाखों दैत्यों के दल ने घमंडी राजाओं का रूप धारण कर रखा था, तब पृथ्वी की पुकार पर भगवान विष्णु ने शेषनाग के साथ कृष्ण व बलराम का अवतार लिया था तथा लक्ष्मीजी अन्य देवांगनाओं सहित उनकी सेवा के लिए रुक्मणी के रूप में उत्पन्न हुई थीं।' लो, अब श्रीकृष्ण मुरारी का पावन चरित्र सुनो—

शुकदेव जी आगे बोले—"शूरसेन तब मथुरा के शासक थे। उनके पुत्र वसुदेव का देवकी से विवाह हुआ। (देवकी के पिता देवक थे) अपनी चचेरी बहन की प्रसन्नता के लिए उग्रसेन के पुत्र कंस ने विदाई रथ को स्वयं ही हांका, तब भविष्यवाणी हुई कि देवकी का आठवां पुत्र कंस को मार देगा। भोजवंश का कलंक कंस तब देवकी की चोटी पकड़ उसे मारने लगा, किंतु वसुदेव ने समझाया कि उसे देवकी के पुत्र से भय है, देवकी से नहीं। इस प्रकार समझाने पर कंस इस शर्त पर देवकी को जीवित रखने पर तैयार हो गया कि वह उसके सभी पुत्रों को मार डालेगा, अतः पुत्र उत्पन्न होते ही, वसुदेव उसे, कंस को सौंप दें और उसने वसुदेव को देवकी सहित अपने बंदीगृह में रख छोड़ा। प्रारम्भ में वह केवल आठवें ही पुत्र को मारना चाहता था किन्तु नारद के भड़काने पर उसने सभी को मार देने का निश्चय कर लिया था।

कंस पूर्व जन्म में कालनेमि असुर था और भगवान विष्णु द्वारा वध किए जाने से विष्णु का घोर विरोधी था। उसने अंधक, भोज तथा यदुवंश के अधिनायक अपने पिता उग्रसेन को भी बंदीगृह में डाल दिया और स्वयं मथुरा का शासक बन बैठा और अत्याचारी हो गया। स्वयं तो वह बलवान था ही, मगध नरेश जरासंध तथा प्रलम्बासुर, बकासुर, अरिष्टासुर, बाणासुर, भौमासुर, केशी, धेनुक, पूतना, अधासुर, तृणावर्त, चाणूर, द्विविद तथा मुष्टिक जैसे दैत्यराज उसके सहायक भी थे। सो वह यदुवंश का नाश करने लगा। उसने एक-एक करके देवकी के छह पुत्र मार डाले। सातवें पुत्र के रूप में देवकी के गर्भ में शेषावतार बलराम आए। जिन्हें भगवान ने योगमाया द्वारा नन्द के यहां रह रही रोहिणी (वसुदेव की दूसरी पत्नी) के गर्भ में स्थापित करवा दिया। देवकी के गर्भ से खींचे जाने से उन्हें 'संकषर्ण' बलवानों में श्रेष्ठ होने से 'बलभद्र' लोकरंजक होने से 'राम' तथा हल का आयुध के रूप में धारण करने से 'हलधर' भी कहा गया। कंस ने समझा कि देवकी का सातवां गर्भ गिर गया है।'

'आठवें गर्भ के रूप में श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में आए और विष्णु जी की पूर्व नियोजित योजनानुसार योगमाया नन्द की पत्नी यशोदा के गर्भ में आईं। देवताओं व ब्रह्मा-शिव आदि ने बंदीगृह में ही आकर श्रीकृष्ण के दर्शन व स्तुति की और देवकी को सांत्वना दी। वसुदेव ने भी अपने पुत्र रूप में प्रकट भगवान को प्रणाम किया। तब देवकी ने पूछा कि उन्हें ऐसा परम सौभाग्य किस प्रकार मिला? भगवान ने तब बताया कि वे पूर्व जन्म में पृश्नि और वसुदेव सुतपा थे। तप द्वारा भगवान को प्रसन्न कर उन्होंने उन जैसा ही पुत्र मांगा था, सो उन्होंने पूर्ण किया। भगवान की प्रेरणा से वसुदेव की बेड़ियां खुल गईं, बंदीगृह के द्वार खुल गए, प्रहरी निद्रामग्न हो गए और वसुदेव जी को शिशु को नन्द के घर छोड़ आने की प्रेरणा हुई। मार्ग में वर्षा से सुरक्षा के लिए शेषनाग अपने फनों का छत्र श्रीकृष्ण व वसुदेव पर लगाए रहे। बाढ़ग्रस्त यमुना ने उन्हें स्वयं मार्ग दे दिया। इस प्रकार रात के अंधेरे में ही चुपचाप वसुदेव कृष्ण को यशोदा के पास रख आए और यशोदा की नवजात कन्या (योगमाया) को ले आए। कार्य सम्पन्न होने पर बेड़ियां पड़ गईं, बंदीगृह के द्वार बन्द हो गए और प्रहरियों को चेत हुआ।'

'समाचार पाकर कंस बंदीगृह में पहुंचा और आठवें पुत्र के स्थान पर कन्या को देख हंसते हुए उसने उसे शिला पर पटककर मार डालने को उछाला किन्तु वह आकाश में इस वाणी के साथ अदृश्य हो गई कि—'तुझे मारने वाला पैदा हो चुका है।' तब कंस ने वसुदेव और देवकी को पछताते हुए कारागार से मुक्त किया। विष्णु को निर्बल करने के लिए उसने यज्ञों का विध्वंस, ब्राह्मणों व ऋषियों की हत्या तथा गौवध आरम्भ कर दिया। तपस्वियों को भी मारने लगा।'
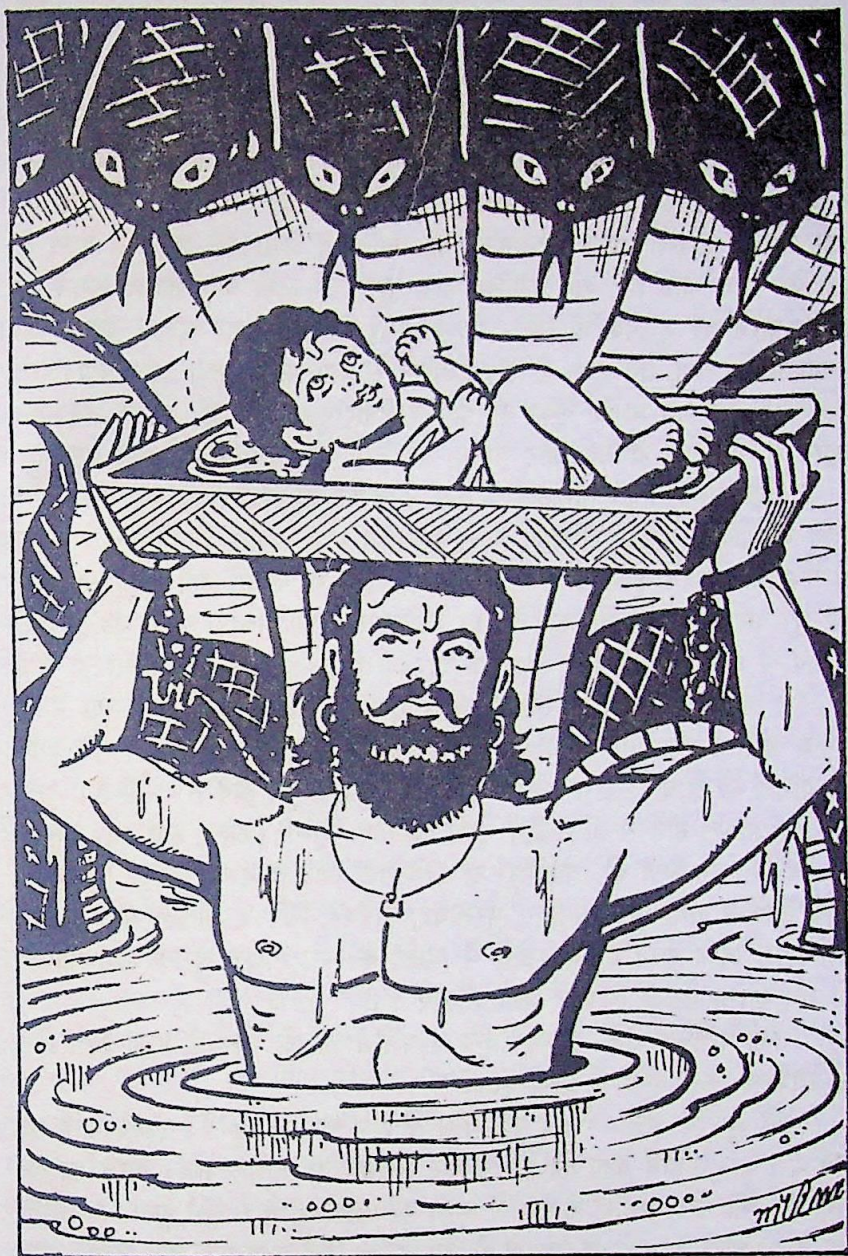
भगवान श्रीकृष्ण को यमुनापार करके नन्द के यहां ले जाते हुए वासुदेव

'नन्द, कंस का कर भुगताने मथुरा आए तो वसुदेव की खैर-खबर ली। जब वे वापस लौटे तो ज्ञात हुआ कंस की आज्ञा से नवजात शिशुओं का वध करने वाली पूतना राक्षसी गोकुल में एक सुन्दर युवती के रूप में कृष्ण को दुग्धपान के बहाने ले गई थी और विष लगे स्तन को कृष्ण के मुख में दे दिया था, किन्तु कृष्ण ने चूषक के माध्यम से ही उसके प्राण खींच लिए थे। गिरते-गिरते भी उस राक्षसी ने अपना वास्तविक रूप लेकर 6 कोस तक के वृक्षों को कुचल डाला था। तब गोपियों ने कृष्ण की रक्षा हेतु विभिन्न अनुष्ठान व उपाय किए थे। सब जानकर नन्दजी को बड़ा आश्चर्य व हर्ष हुआ। 'पूतनामोक्ष' की यह लीला श्रद्धापूर्वक सुनने से कृष्ण के प्रति प्रेम प्राप्त होता है।" तब परीक्षित द्वारा कृष्ण की अन्य बाल लीलाएं सुनने का आग्रह करने पर शुकदेव जी बोले—"जब कृष्ण का पहली बार करवट बदलने का उत्सव मनाया गया, तब कृष्ण के पांव उछालने से बड़ा भारी छकड़ा उलट गया। इसी प्रकार एक बार जब यशोदा कृष्ण को गोद में लेकर दुलार रही थीं, तब वे अकस्मात चट्टान से भी भारी हो गए और यशोदा को उन्हें घबराकर नीचे बैठाना पड़ा।'

'एक बार तृणावर्त नामक दैत्य कंस के कहने पर बवंडर का रूप धारण कर कृष्ण को गोकुल से उड़ा ले गया, किन्तु कृष्ण के भार से शीघ्र ही शिथिल हो, शांत हो गया। तब उसने कृष्ण को रखना चाहा, किन्तु कृष्ण ने उसे नहीं छोड़ा और उसे चूर-चूर कर डाला। यह चमत्कार देखकर यशोदा को बहुत अचम्भा हुआ। यह तृणावर्त वास्तव में पाण्डुदेश का राजा सहस्राक्ष था, जो दुर्वासा के शाप से राक्षस हो गया था। इस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा उसका उद्धार हुआ। एक बार अपने खुले मुख में ही समूचा ब्रह्माण्ड दिखाकर कृष्ण ने यशोदा को अचंभित कर दिया था। गर्ग ऋषि (यदुवंशियों के आचार्य) द्वारा बलराम का नाम (रोहिणी पुत्र होने से) 'रौहिणेय' रखा था और सांवला होने से ही उन्होंने कृष्ण का नाम 'कृष्ण' (काला) रखा था। वसुदेव का पुत्र होने से कृष्ण को 'वासुदेव' भी कहा गया और विभिन्न लीलाओं के कारण उनके विभिन्न नाम—मुरलीमनोहर, मुरलीधर, बंसीधर, गिरिधर, गोपाल, गोवर्धनधारी, रासबिहारी आदि हुए। घर व पड़ोस में ग्वालों के साथ माखन चुराना तथा गोपियों को तंग करना उनकी विशिष्ट बाल लीलाएं हैं।"

राजा परीक्षित बोले—"प्रभो! नन्द व यशोदा जी को कृष्ण के माता-पिता होने का सौभाग्य किस पुण्य से प्राप्त हुआ?"

तब शुकदेव बोले—"नन्द पूर्व जन्म में द्रोण नामक वसु थे। उनकी पत्नी का नाम धरा था। उन्होंने ब्रह्मा को प्रसन्न कर भगवान का लालन-पालन करने का वर मांगा था—सो नन्द, यशोदा के रूप में कृष्ण का पालन करने से पूर्ण हुआ। हे राजन! एक बार यशोदा ने कृष्ण के उत्पातों से तंग आकर उन्हें ऊखल से बांध दिया। नाम, रूप, गुण आदि के बन्धनों से रहित भगवान लीलावश एक साधारण रस्सी से बंध

गए। (रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ गई थी, तब यशोदा ने दूसरा टुकड़ा रस्सी में जोड़ा, वह भी दो अंगुल छोटा रह गया, इस प्रकार धीरे-धीरे घर-भर की सभी रस्सियों को उन्होंने जोड़ दिया था, पर वे उन्हें बांध न सकीं, फिर मां को छकाकर कृष्ण स्वयं ही बंध गए थे)—इस प्रकार बन्धकर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि परम स्वतन्त्र होते हुए भी वे सदा भक्तों के वश में ही रहते हैं। यशोदा जी उन्हें बांधकर जब अन्य कामों में उलझ गई तो कृष्ण ने उन दो अर्जुन वृक्षों का उद्धार करने की सोची, जो पहले यक्ष राज कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव थे।"

परीक्षित जी के पूछने पर शुकदेव जी ने बताया—'ये दोनों रुद्र के अनुचर भी थे। एक बार वारूणी के मद में चूर वे स्त्रियों के साथ सरोवर में जलक्रीड़ा कर रहे थे। तब नारद को उधर से आते देख स्त्रियों ने वस्त्र धारण कर लिए, किन्तु ये दोनों नग्न ही रहे—इस पर नारद ने उन्हें वृक्ष हो जाने का शाप दिया। जब दोनों गिड़गिड़ाए तो नारद ने बताया कि सौ वर्ष बाद कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त होने से उन्हें उस योनि से मुक्ति मिलेगी। सो भगवान कृष्ण ऊखल सहित दोनों यमल वृक्षों के बीच से निकल गए, किन्तु ऊखल निकल न पाया। कृष्ण ने जरा खींचा तो दोनों वृक्ष उखड़ गए। इस प्रकार उद्धार हो जाने पर नलकूबर व मणिग्रीव ने पूर्व रूप प्राप्त कर कृष्ण की स्तुति की और कमर/पेट से रस्सी बंधने के कारण कृष्ण का एक नाम 'दामोदर' भी प्रसिद्ध हुआ। वृक्षों के गिरने का भयंकर शब्द सुनकर नन्द आदि बाहर आए तो कृष्ण के पास ऊखल से दो उखड़े वृक्ष देखकर चकित रह गए। इस प्रकार के विभिन्न उत्पातों से भयभीत होकर नन्द ने गोकुलवासियों के साथ मंत्रणा की। तब एक बुजुर्ग व ज्ञानवान गोप उपनन्द के परामर्श के अनुसार उन सबने गोकुल को त्यागकर 'वृन्दावन' की शरण ली। वृन्दावन में बछड़े का छद्म वेश बनाए हुए एक दैत्य को पहचानकर कृष्ण ने पैरों से उठाकर कैथवृक्ष पर पटक कर मार डाला।'

'वहां गाय चराते समय सरोवर के तट पर बकासुर (जो बगुले के रूप में था) को कृष्ण ने चोंच चीरकर मार डाला। जब ग्वालों ने घर लौटकर वह घटना सबको सुनाई तो सब हर्ष व आश्चर्य में डूब गए। जहां एक ओर कृष्ण द्वारा दैत्यों के वध की लीलाएं चलतीं, वहीं गोपियों की मटकी फोड़ने, उनके वस्त्र चुराने तथा ग्वालों के साथ शरारतपूर्ण खेलों की भी लीलाएं चलतीं। एक बार वन में गाय चराते समय जब कृष्ण ग्वालों के साथ खेल रहे थे तब कंस द्वारा भेजे गए पूतना व बकासुर के भाई अंधासुर (जिससे देवता भी घबराते थे) ने उन्हें देखा और कृष्ण सहित सब ग्वालों को जीवित निगल लेने के लिए बहुत बड़े अजगर के रूप में मार्ग में लेट गया। उसका खुला मुंह किसी गुफा का द्वार मालूम होता था। ग्वाले ने वन की अद्भुत शोभा समझकर पास आ गए और उसके मुख में प्रविष्ट हो गए। अधासुर कृष्ण की प्रतीक्षा में मुंह खोले बैठा रहा। तब कृष्ण ने उसके मुख में खड़े होकर अपना शरीर

इतना बड़ा कर दिया कि उसका मस्तक फट गया। तब देवताओं ने कृष्ण की जय-जयकार की और अधासुर को कृष्ण लोक की प्राप्ति हुई, क्योंकि जो भगवान के रूप को हृदय में बैठा लें (किसी कारण भी सही) उसे परम गति मिलती ही है। अधासुर ने तो भगवान को सशरीर स्वयं में ले लिया था, फिर उसे परमगति कैसे न मिलेगी?' शुकदेव जी ने भाव विभोर होकर कहा—

'हे राजन! बाल कृष्ण द्वारा अधासुर की मुक्ति देख ब्रह्माजी ने कृष्ण को मोहित करने की सोची। जब कृष्ण ग्वालों के साथ भोजन कर रहे थे, तब उन्होंने बछड़ों को अपनी माया से छिपा दिया। ग्वाले भोजन कर बछड़ों को न पाकर चिन्ता करने लगे। तब कृष्ण उन्हें वहीं बैठा छोड़कर यह कहकर कि 'हरी घास के लोभ में वे आगे कहीं निकल गए होंगे, मैं लेकर आता हूं।' उन्हें ढूंढ़ने चले गए। बहुत ढूंढ़ने पर भी उन्हें बछड़े न मिले। जब वे वापस लौटे तो ग्वालों को भी उस स्थान पर न पाया, क्योंकि ब्रह्मा ने अपनी माया से उनको भी छिपा दिया था। श्रीकृष्ण ताड़ गए कि यह सब ब्रह्मा की ही करतूत है। तब ब्रह्मा जी को छकाने के लिए उन्होंने स्वयं ही उन ग्वालों व बछड़ों के रूप में अपने को प्रकट किया और उन सबको साथ लेकर प्रतिदिन की भांति मुरली बजाते हुए वापस घर को लौट आए।'

'हे परीक्षित! गौएं और ग्वालों की माताएं श्रीकृष्ण के उन विभिन्न रूपों को अपना ही पुत्र समझकर उनसे लाड़-प्यार करने लगीं। इस प्रकार सारे क्रिया-कलाप पूर्ववत् चलते रहे, बल्कि उनका प्रेम अपनी संतानों के प्रति और भी बढ़ता गया। बलराम जी ने इस परिवर्तन को अनुभव कर जब ज्ञानदृष्टि से देखा तो उन ग्वालों व बछड़ों के स्थान पर उन्हें श्रीकृष्ण ही दिखाई दिए। तब उन्होंने कृष्ण भगवान से इसका कारण पूछा और सब जान लिया। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। ब्रह्माजी की गणना से एक 'त्रुटि' (कमल पत्र में सूई की नोंक घुसने जितना समय) ही बीती। ब्रह्मा जब ब्रह्मलोक से ब्रज को लौटे तो ग्वालों व बछड़ों को क्रीड़ा करते देख अचम्भित हो गए। फिर उन्होंने उस स्थान पर जहां उन्होंने माया से पहले बछड़ों व ग्वालों को अचेत कर छिपा रखा था, देखा तो वहां उन्हें बछड़े और ग्वाले पूर्ववत अचेत मिले। वे भ्रम में पड़कर स्तम्भित हो गए। असली कौन से हैं, नकली कौन से? वे पहचान न पाए। इस प्रकार वे स्वयं कृष्ण की माया से मोहित हो गए। वे अभी विचार ही कर रहे थे कि उन्हें सभी ग्वालों, बछड़ों के स्थान पर कृष्ण दिखाई पड़ने लगे। फिर उन्हें सृष्टि के कण-कण में कृष्ण दिखाई देने लगे। त्रिकालों में भी कृष्ण ही कृष्ण दिखाई दिए तो वे स्तब्ध रह गए। फिर उन्हें कृष्ण कृपा से ब्रह्म ज्ञान हुआ और उन्होंने श्रीकृष्ण में भगवान विष्णु का साक्षात्कार कर उनकी स्तुति की और ग्वालों व बछड़ों को चेत किया।'

'जब बलराम और कृष्ण छह वर्ष के हुए, तब ग्वालों में से एक श्रीदामा बोला

कि 'वहां से थोड़ी दूर पर एक वन है। वहां ताड़ के मधुर फल मिलते हैं, किन्तु धेनुकासुर ने अपने साथियों सहित वहां से फल लेने पर रोक लगा रखी है। दुष्टों का विनाश करना तो तुम्हारा स्वभाव है ही, अतः हे कृष्ण! तुम हमें उन ताड़ों के मधुर फलों को खिलाओ।' तब कृष्ण व बलराम श्रीदामा व अन्य सखाओं सहित वहां चले गए। बलराम अपने भुजबल से उन वृक्षों को हिलाकर पके फल गिराने लगे। फल गिरने की आवाज सुनकर गधे के रूप में रहने वाला धेनुक पृथ्वी व पहाड़ों को पदाघात से कंपाता हुआ वहां आ पहुंचा। उसने बलराम जी पर दुलत्ती झाड़ी, मगर बलराम जी ने एक हाथ से ही धेनुक की दोनों टांगें पकड़कर आकाश में घुमाया और एक ताड़ के पेड़ पर मारकर उसका प्राणान्त कर दिया। तब धेनुकासुर के भाई बन्धु क्रुद्ध होकर बलराम और कृष्ण पर टूट पड़े, परन्तु जो भी निकट आया उसे कृष्ण व बलराम ने टांगें पकड़कर ताड़ वृक्षों पर फेंक-फेंककर मार डाला। तब देवताओं ने उन पर पुष्पवर्षा की।'

'इसी प्रकार एक बार गर्मियों में धूप से पीड़ित होकर ग्वालों तथा गायों ने यमुना का वह जल पी लिया, जो महाविषधर कालिय नाग के विष से विषाक्त हो चुका था। विष प्रभाव से वे सब मृत हो गए, किन्तु श्रीकृष्ण की अमृतमयी दृष्टि से वे पुनर्जीवित हो गए। तब श्रीकृष्ण ने कालिय नाग को यमुना से निकालकर उस जल को शुद्ध कर दिया था।''

राजा परीक्षित बोले—''हे मुने! कृष्ण ने उस सर्प का दमन किस प्रकार किया? कालिय नाग जल जीव नहीं था, तो भी वह अनेक युगों तक जल में किस प्रकार रहा? हमें यह सब भी बताइए।''

तब शुकदेव बोले—''यमुनाजी में कालिय नाग का एक कुण्ड था जो विष की गर्मी से खौलता रहता था। उसके ऊपर से उड़ने वाले पक्षी भी गर्मी से झुलस कर कुण्ड में गिर जाते थे। श्रीकृष्ण ने कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर उस कुण्ड में छलांग लगाई और कालिय से जा भिड़े। कालिय ने उन्हें लपेट लिया और डसने लगा, किन्तु कृष्ण के सामने उस दुष्ट की दाल न गली। कृष्ण उसके सौ फनों पर पदाघात करके नाचने लगे, तब कालिय नथुनों से खून उगलने लगा। उसके फन छिन्न-भिन्न हो गए और रक्त वमन करने लगा, तो उसकी पत्नियों ने श्रीकृष्ण की स्तुति की तथा कालिय को क्षमा कर देने की याचना की। इस पर कृष्ण ने उसे छोड़ दिया। तब जान में जान पड़ी देख उस कालिय ने भी कृष्ण की स्तुति कर क्षमा मांगी। श्रीकृष्ण ने उसे परिवार के साथ यमुना त्याग देने को कहा। कालिय रमणक द्वीप छोड़कर गरुड़ के भय से यमुना में छिपकर रहता था, यह कृष्ण जानते थे। अतः उन्होंने उसके फनों पर अपने पदचिन्ह छोड़ दिए, जिससे गरुड़ उसे कुछ न कहे। तब कालिय सपरिवार रमणक द्वीप ही लौट गया। कृष्ण द्वारा कालिय को दी इस आज्ञा का श्रद्धापूर्वक स्मरण करने
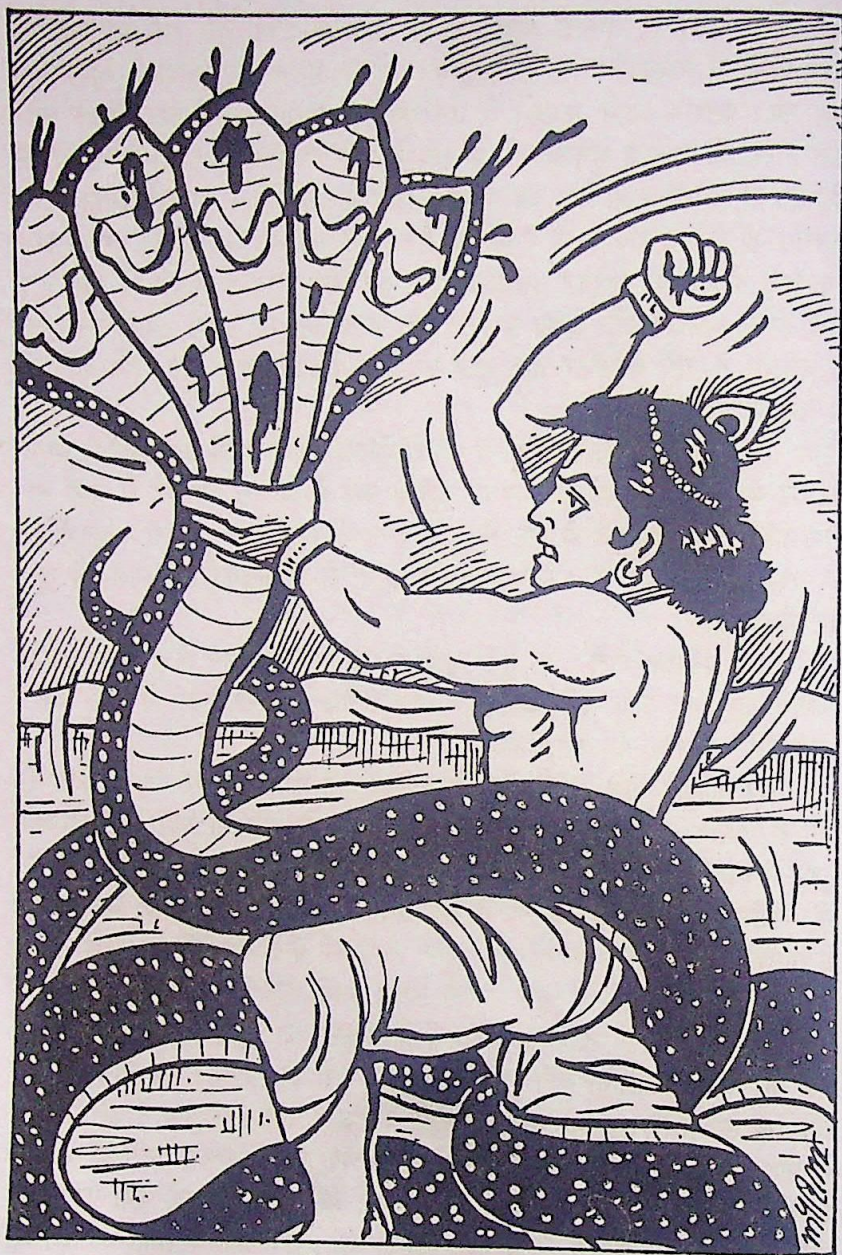
कालिया नाग का मान मर्दन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण

वाले को सर्प भय नहीं होता।''

''हे शौनक! परीक्षित द्वारा जिज्ञासा प्रकट किए जाने पर श्री शुकदेव जी ने वह प्रसंग भी सुनाया, जिस कारण गरुड़ से आतंकित होकर कालिय नाग ने रमणक द्वीप त्याग दिया था।'' सूत जी बोले—''वह कथा इस प्रकार है—

'गरुड़जी से सुरक्षित रहने के लिए पूर्वकाल में सर्पों ने यह नियम बनाया कि एक निर्दिष्ट वृक्ष के नीचे प्रति मास गरुड़ को एक सर्प भेंट दे दिया जाए। तब प्रति अमावस्या को सर्प परिवार अपने-अपने परिवार का एक सदस्य बारी-बारी से उन्हें देने लगे। उनमें कद्रू पुत्र कालिय अपने विष के घमंड में चूर था। वह स्वयं अपने परिवार से तो बलि देता ही न था। गरुड़ जी के लिए दी गई अन्य सर्पों की भेंट भी स्वयं ले जाता। तब गरुड़ ने कालिय पर आक्रमण किया। बलशाली तथा तीव्र विषधर होने पर भी वह पक्षीराज तथा विष्णु वाहन गरुड़ से जीत न सका और पराजित हो, घायलावस्था में भाग निकला। अन्य कोई स्थान न पा वह यमुना के उस गहरे कुण्ड में रहने लगा, जहां गरुड़ का तो भय था ही नहीं, अन्य कोई भी नहीं आता था।'' (गरुड़ ने पहले उस स्थान पर भूख के कारण सौभरि ऋषि के मना करने पर भी एक मत्स्य को पकड़कर खा लिया था, अतः सौभरि ने शाप दिया था कि गरुड़ फिर कभी उस कुण्ड में आया तो प्राणों से हाथ धो बैठेगा। अतः वह क्षेत्र गरुड़ के लिए अगम्य था। यह भेद सर्पों में केवल कालिय ही जानता था।)

शुकदेवजी ने आगे कहा—''एक बार वन में लगी आग से जब सभी ब्रजवासी जलने लगे, तब उनकी रक्षा के लिए कृष्ण दावानल की अग्नि पी गए थे। इसी प्रकार एक बार प्रलम्बासुर बलराम व कृष्ण का अपहरण करने ग्वाले के भेस में आया और उनको खेलने का आमंत्रण दिया। सर्वज्ञ कृष्ण उसे देखते ही पहचान गए फिर भी उसका आमंत्रण मान लिया। तब सब ग्वालों के साथ मिलकर वे एक-दूसरे की बारी-बारी से पीठ पर चढ़ाकर निर्दिष्ट स्थान तक ले जाने वाला खेल (पद्दी-पद्दी) खेलने लगे। इस प्रकार एक-दूसरे की पीठ पर चढ़ते-चढ़ाते वे भाण्डीर नामक वट के निकट पहुंच गए। वहां जब बलराम प्रलम्बासुर की पीठ पर चढ़े तो वो उन्हें लेकर निर्दिष्ट स्थान से भी आगे भागने लगा, किन्तु बलराम के भार से थककर शीघ्र ही अपने वास्तविक रूप में आ गया और उन्हें आकाश मार्ग से ले चला, किन्तु महाबली बलराम द्वारा एक भीषण मुष्टि प्रहार से वह अपना सिर तरबूज की भांति फड़वाकर, निर्जीव हो नीचे गिर पड़ा। तब सब ग्वालों ने उनकी प्रशंसा की और देवताओं ने मूर्तिमान् पाप प्रलम्ब असुर के मारे जाने पर बलरामजी पर पुष्पों की वर्षा की। वापस लौटकर ग्वालों ने नन्द आदि को जब बताया तो उन्होंने आश्चर्य, हर्ष, गर्व तथा प्रेम के मिले-जुले भावों से बलराम को गले लगाया।'

'वर्षा ऋतु के बाद वसंत आने पर कृष्ण की बंसी की तान पर सुध बिसरा

देने वाली गोपियां, जब यमुना में स्नान कर रही थीं, तब कृष्ण ने उनके तट पर रखे वस्त्र चुरा लिए थे। फिर अपनी बहुत-सी बातें मनवाकर ही उन्हें वस्त्र वापस किए। इसी प्रकार यज्ञ करने वाले आंगिरस ब्राह्मणों की पत्नियों को दर्शन देकर उन पर कृपा की। गोपों द्वारा किए जाने वाले इन्द्र यज्ञ का निवारण किया और इन्द्र का गर्व चूर किया क्योंकि यज्ञ निवारण होने से क्रुद्ध हुए इन्द्र ने मेघों को ब्रज पर मूसलाधार वर्षा की आज्ञा दी। प्रचण्ड वर्षा और भयंकर आंधियों से गायों और सब ब्रजवासियों की रक्षा के लिए कृष्ण ने बहुत बड़े गोवर्धन पर्वत को अपने बाएं हाथ की कनिष्ठा अंगुली पर ही धारण कर लिया और सब आश्चर्य करते हुए उस पर्वत के नीचे आकर सुरक्षित हो गए। तब इन्द्र ने कृष्ण को पहचाना और स्तुति करते हुए क्षमा याचना की। इस प्रकार सात दिन तक गोर्वधन को उठाए रखने से वे 'गोवर्धनधारी' और 'गिरिधर'/गिरिधारी' आदि नामों से भी प्रसिद्ध हुए। तब गोपों ने विस्मित होकर नन्दजी से कृष्ण के प्रभावों के विषय में चर्चा की और नन्द जी ने बताया कि कृष्ण स्वयं नारायण ही हैं। देवताओं ने ऐरावत की सूंड में लाए जल से कृष्ण का तब अभिषेक भी किया था।'

'इसी प्रकार एक बार असुरों की वेला में ही, जब अज्ञानवश नन्द जी यमुना में स्नान करने गए, तब वरुण के सेवक एक असुर ने उन्हें पकड़ लिया। तब श्रीकृष्ण उनको छुड़ाकर लाए थे। भगवान कृष्ण को स्वयं वहां आया देख वरुण ने उनकी स्तुति की थी और क्षमा मांगते हुए नन्द बाबा को लौटा दिया था। शरद ऋतु में चांदनी रात में कृष्ण ने सभी गोपियों के साथ महारास भी किया। उस समय प्रत्येक गोपी को यही प्रतीत होता था कि कृष्ण केवल उसी के साथ रास कर रहे हैं। अपने से प्रेम करने वाली गोपियों को रास द्वारा सम्मानित व उपकृत कर वे फिर अन्तर्धान हो गए थे, क्योंकि महारास के कारण गोपियां स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानने का गर्व करने लगी थीं। हे राजन! कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर सभी गोपियां विरह व्यथा से अत्यंत पीड़ित होकर, भांति-भांति के प्रलाप, दीनतापूर्ण विलाप, अश्रुवर्षा आदि करने लगी थीं और आत्म-विस्मृत-सी हो गए विक्षिप्तों का-सा आचरण करने लगी थीं। उस समय बहुतों ने विरह गीत भी गाए। तब कृष्ण ने प्रकट होकर उन्हें सांत्वना दी और बताया कि अहं या स्वार्थ आ जाने से उनका प्रेमी भी उन्हें खो देता है, अतः निस्वार्थ व अहंरहित प्रेम होना चाहिए।''

तब परीक्षित जी बोले—''हे ब्राह्मण! धर्म स्थापना व धर्म मर्यादा की रक्षा के लिए अवतरित होने वाले भगवान ने महारास में पर-स्त्रियों को स्पर्श कैसे किया? यह तो एक प्रकार का अधर्म व निन्दनीय आचरण था। मैं अल्प बुद्धि प्रभु की इस लीला का रहस्य नहीं समझ पा रहा। कृपाकर आप यह समझाकर मेरा संदेह दूर कीजिए।''

शुकदेवजी बोले—''समर्थ को कुछ दोष नहीं होता। जैसे अग्नि सब कुछ खाकर भी खाए हुए पदार्थ के दोष में लिप्त नहीं होती, जैसे भगवान शिव ने हलाहल विष पी लिया था, किन्तु वे उससे प्रभावित न हुए। हे राजन! साधारण पुरुषों के लिए ही दोष हुआ करता है, समर्थ को नहीं। चन्द्रमा के कलंक देखे जाते हैं, सूर्य पर दृष्टि ही नहीं टिक पाती, फिर कलंक देखने की तो बात ही क्या? समर्थ के उपदेशानुसार बुद्धिमान आचरण करते हैं न कि उनके आचरणों के अनुसार। सारा जगत् कृष्णमय है। गोपियों के पति भी कृष्णमय ही थे, तब उनके साथ रास उनके पति करें या कृष्ण एक ही बात है, किन्तु कृष्ण के लिए, दूसरों के लिए नहीं, अतः कृष्ण का महारास निन्दनीय या अधर्म मानना वास्तव में अज्ञान ही है।'' (महाभारत ही के अन्य प्रसंग देखें तो द्रौपदी के पांच पति थे, कुन्ती के पुत्र उसके पति द्वारा उत्पन्न हुए नहीं थे, सत्यवती ने विवाह से पूर्व ही पाराशर ऋषि द्वारा व्यास को जन्म दिया था—तो भी सत्यवती, कुन्ती, द्रोपदी आदि आदरणीय व पवित्र पात्रों में गिनी गईं, उन्हें आरोपित या लांछनित नहीं किया गया—यही कारण है कि कर्म करना और कर्म में लिप्त होना दो अलग-अलग बातें हैं। कुन्ती या सत्यवती ने एक सार्थक उद्देश्य के तहत वो कर्म किया, किन्तु उसमें आनन्द का अनुभव करते हुए लिप्त नहीं हुईं, अतः उनका दोष उन्हें नहीं लगा, जबकि कर्म न करने पर भी जब मानसिक रूप से ही रेणुका एक गंधर्व के प्रति काम भाव से लिप्त हो गईं, तब जमदग्नि ने उसके दण्ड स्वरूप परशुराम जी से उसका सिर कटवा दिया—यही उपदेश गीता में कृष्ण 'कर्मयोग' के रूप में देते हैं। कर्मों के प्रति आसक्ति, कर्तायन का बोध या उनमें लिप्त (Involve) होना ही बन्धन या दोष उत्पन्न करता है। निष्काम व निर्लिप्त भाव से किए गए कर्म बन्धनकारी नहीं होते। अतः मेरी दृष्टि में भी कृष्ण का महारास निन्दित या अधर्मपूर्ण नहीं था, हालांकि अल्पज्ञानी होने से मुझे ऐसे महत्वपूर्ण विषयों पर टिप्पणी का अधिकार नहीं है, फिर भी जैसा मैं समझा, पाठकों के लाभार्थ लिख दिया। सम्भव है इससे पाठकों की सोच को सही दिशा मिलेगी, अन्यथा मेरी धृष्टता समझकर प्रबुद्ध पाठक मुझे क्षमा करेंगे।)

शुकदेव जी ने आगे कहा—''शिवरात्री के अवसर पर नन्द जब अन्य ब्रजवासियों के साथ अम्बिकावन में सरस्वती नदी के तट पर गए थे, तब एक अजगर ने नन्दजी को पकड़ लिया था, किन्तु श्रीकृष्ण के पद प्रहार होते ही वह अजगर सुदर्शन नामक विद्याधर में बदल गया था। इस प्रकार अंगिरागोत्रीय कुरूप ऋषियों का उपहास उड़ाने के कारण शापित होकर अजगर के घृणित रूप को प्राप्त हुए उस सौंदर्याभिमानी विद्याधर का कृष्ण के चरण स्पर्श से उद्धार हुआ था। इसी प्रकार एक बार जब कृष्ण व बलराम रात्रि में गोपियों के साथ विहार कर रहे थे, तब कुबेर का अनुचर शंखचूड़ नामक एक यक्ष गोपियों को लेकर उत्तर दिशा में भाग चला। तब बलराम एक शाल

वृक्ष उखाड़कर और कृष्ण निहत्थे ही उस यक्ष के पीछे दौड़े। दोनों को कालरूप से सिर पर आया जान शंखचूड़ गोपियों को वहीं छोड़ जान बचाने को भागा। हे राजन! बलराम तब वहीं गोपियों के पास ठहर गए, किन्तु कृष्ण ने उस दुष्ट का पीछा किया और उसके सिर पर मुष्टि प्रहार कर उसका अंत कर दिया। तब शंखचूड़ के सिर पर लगी चूड़ामणि कृष्ण ने लाकर प्रेम से बड़े भाई बलराम जी को भेंट दी।'

'हे परीक्षित! कृष्ण का चरित्र तो पूरी तरह लीलाओं से ओत-प्रोत है। उनकी एक-एक लीला का विस्तारपूर्वक वर्णन करने में तो वर्षों लग जाएंगे। मैं तो तुमको प्रमुख लीलाएं संक्षेप में ही सुना रहा हूं। एक बार एक बलशाली, विशाल और भयंकर बैल/सांड का रूप बनाकर अरिष्टासुर ने ब्रज में उत्पात मचाया, तब श्रीकृष्ण ने उसके दोनों सींग पकड़कर लातें मार-मार कर उसका कचूमर निकाल दिया। अन्त में उसे उसी का सींग उखाड़कर मार डाला। इस प्रकार जब कृष्ण के अनेक चमत्कारों को सुनकर और अपने अनेक दैत्य सेवक मरवाकर कंस को विश्वास हो गया कि आकाशवाणी के अनुसार उसे मारने वाला देवकी का आठवां पुत्र कृष्ण ही है तो उसने चिढ़कर वसुदेव और देवकी को पुनः बेड़ियां डलवाकर बंदीगृह में ला पटका।'

'तब कंस ने कृष्ण व बलराम के वध के लिए केशी नामक दैत्य को भेजा और मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि पहलवानों और मंत्रियों के साथ आगे की योजना बनाने लगा कि यदि कृष्ण व बलराम केशी द्वारा बच भी जाए तो पहलवानों, कुवलयापीड हाथी आदि के द्वारा मथुरा में मार डाले जाएं। फिर उसने श्रेष्ठ यदुवंशी अक्रूरजी को कृष्ण, बलराम व नन्दजी को बहाने से मथुरा बुला लाने के लिए भेज दिया। उधर केशी एक विशाल घोड़े का रूप धारण कर अपनी भयंकर टापों से दिशाओं का दिल दहलाता और पृथ्वी को रौंदता हुआ कृष्ण के पास पहुंचा। यद्यपि उसने बड़े भयंकर वेग और शक्ति से कृष्णजी पर दुलत्ती झाड़ी, किन्तु कृष्ण स्वयं को बचा गए और उसकी पिछली टांगें पकड़कर उसे घुमाकर आकाश में चार सौ हाथ ऊपर उछाल दिया। हे राजन! केशी ने सचेत होने के बाद पुनः आक्रमण किया, परन्तु कृष्ण ने उसके सब दांत तोड़कर उसके गले में अपनी भुजा घुसाकर मार डाला। तब देवताओं ने उन पर पुष्पों की वर्षा की।'

'देवर्षि नारद ने भी कृष्ण के दर्शन पर उनकी स्तुति की, क्योंकि अपने ईष्ट नारायण की स्तुति किए बिना वे कैसे रह सकते थे? हे राजन! एक बार जब कृष्ण ग्वालों के साथ लुका-छिपी का खेल-खेल रहे थे, तब मायावियों के गुरू मयासुर का पुत्र व्योमासुर वहां ग्वाले का भेस बनाकर आया। वह उन सबके साथ खेलने लगा और खेल-खेल में ही एक-एक करके उसने ग्वालों को एक गुफा में बन्दकर गुफा का मुंह एक चट्टान से बंद कर दिया। भगवान कृष्ण ने उसकी करतूत जान ली। वह तब असली रूप में आ गया, किन्तु कृष्ण ने उसे पकड़कर भूमि पर पटक दिया

और गला घोंटकर मार डाला और सब ग्वालों को मुक्त कराके देवताओं की प्रशंसा प्राप्त की। उधर अक्रूरजी श्रीकृष्ण के दर्शन करने की लालसा से अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए ब्रज पहुंचे। कृष्ण-बलराम ने बहुत उत्साह से उनका स्वागत किया। नन्दजी ने भी उनका कुशल मंगल पूछा। हे राजन! श्रीकृष्ण के दर्शन से अक्रूर जी को मार्ग में हुई सब थकान दूर हो गई, क्योंकि प्रिय या आत्मीय से मिलकर सुहृद लोगों की सब थकान दूर हो ही जाती है और फिर श्रीकृष्ण की मोहनी छवि और अति आकर्षक व्यक्तित्व तो यूं भी अपनी दिव्यता और मधुर प्रभाव के कारण देखने वालों के लिए अमृत के समान कल्याणकारी व सुखदायी थे।'

'अक्रूरजी के कहने पर नन्दजी कृष्ण और बलराम सहित मथुरा जाने को तैयार होने लगे तो मां यशोदा और गोपियों के हृदय में बहुत व्याकुलता हुई। गोपियां ईश्वर और अक्रूरजी को कोसने लगीं। जब कृष्ण सबसे विदा लेकर चले तो 'मैं आऊंगा' कहकर उन्होंने गोपियों को सांत्वना दी, मगर उनका हृदय तो कृष्ण के साथ ही चला गया। मार्ग में जब अक्रूरजी ने यमुनाजी में स्नान किया तो भगवान कृष्ण ने विष्णु रूप में शेषनाग सहित उन्हें दर्शन दिए, तब परमानन्द से परिपूर्ण होकर अक्रूरजी ने उनकी स्तुति की। फिर मथुरा पहुंचने पर मथुरा घूमते हुए राजदरबार में पहुंचने और कंस वध के पश्चात् अक्रूरजी के घर आने का वचन देकर कृष्ण व बलराम अक्रूरजी के रथ से उतर गए, क्योंकि हे परीक्षित! अभी तो उन लीलाधर गिरिधारी, कृष्ण मुरारी को और बहुत-सी लीलाएं करनी थीं।'

'हे राजन! जब मथुरा नगरी की शोभा देखने के लिए वे दोनों भाई वहां विचरने लगे, तब वहां की स्त्रियां उनको देखने को उतावली हो गईं। सैंकड़ों कामदेवों को पराजित करने वाले उनके रूप को देखकर मुग्ध हो गईं। उस समय सांवले कृष्ण पीले वस्त्रों में और गौरवर्ण बलराम नीले वस्त्रों में सिंह के समान निडर और हाथी के समान मस्त चाल से घूमते हुए अत्यंत शोभायमान हो रहे थे। फिर वे सुदामा आदि से मिलते हुए अपनी मंडली के साथ राजमार्ग पर जा पहुंचे। उन्होंने मार्ग में एक धोबी को मारकर राजसी वस्त्र धारण कर लिए थे, क्योंकि धोबी उनसे उद्दण्डता से पेश आया था। राजमार्ग पर उन्होंने एक कुबड़ी सुन्दरी 'कुब्जा' को देखा—जो चन्दन आदि पात्र में रखकर ले जा रही थी। तब कृष्ण ने उससे उसका परिचय पूछा और उससे लगाने के लिए थोड़ा चन्दन व अंगराग मांगा। तब उसने बताया कि वह कंस की दासी कुब्जा (त्रिवक्रा) है और कंस के चन्दन व अंगराग लगाने का काम करती है। फिर उसने कृष्ण व बलराम के चन्दन व अंगराग लगाए। तब कृष्ण ने प्रसन्न होकर कृपापूर्वक उसका कूबड़ दूर कर दिया। हे राजन! धोबी उसके साथ धृष्टता से पेश आया सो उसे उसकी करनी का फल मिला, कुब्जा ने उनके साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार किया, सो उसका कूबड़ दूर हुआ। कुब्जा ने तब उनको अपने

घर आमंत्रित किया। हे राजन्! तब कृष्ण ने कार्यपूर्ण होने के बाद उसके घर आने का आश्वासन दिया और बलराम सहित रंगशाला में जा पहुंचे।'

'हे परीक्षित! कंस की उस रंगशाला में धनुष यज्ञ के लिए रखा हुआ बड़ा विशाल धनुष जो कंस के सैनिकों द्वारा रक्षित था—उस धनुष को बाएं हाथ से उठाकर कृष्ण ने क्षण भर में खींचकर तोड़ डाला। तब धनुष के रक्षक सैनिकों ने उन पर आक्रमण किया, किन्तु कृष्ण ने उन्हें धनुष-खण्डों से ही मार डाला। उन सैनिकों की सहायतार्थ आई सेना का भी कृष्ण व बलराम ने विनाश कर दिया और निर्भय होकर विचरने लगे। कंस को जब यह सूचना मिली तो वह आतंकित हो उठा। उसे अपने आस-पास बहुत से अशुभ शकुन दिखाई दिए। दर्पण में उसे अपना प्रतिबिम्ब शीश रहित दिखाई देने लगा। चन्द्रमा, दीपक आदि की लौ उसे दो भागों में विभक्त दिखाई देने लगी। सोने पर उसे स्वप्न भी अरिष्ट सूचक दिखाई पड़े। उसने स्वयं को नग्नावस्था में तेल चिपड़े गधे पर बैठा हुआ देखा। स्वयं को प्रेतों से गले मिलते देखा। तब उसकी नींद भी उड़ गई।'

'प्रातःकाल कंस ने मल्लक्रीड़ा का महोत्सव प्रारम्भ कराया और सब तैयारियां कराकर अपशकुनों से भयभीत हो सिंहासन पर जाकर बैठा। कृष्ण व बलराम दंगल के नगाड़ों की आवाज सुनकर वहीं आ पहुंचे। तब पूर्व नियोजित योजनानुसार महावत ने अंकुश से कुवलयापीड हाथी को मुख्य द्वार पर ही कृष्ण व बलराम की तरफ उकसाया। वह भयंकर दांतों वाला अतिशक्तिशाली और क्रोधी हाथी था। कृष्ण को उसने सूंड में लपेटा, किन्तु कृष्ण का घूंसा खाकर उन्हें छोड़ दिया। तब कृष्ण ने विभिन्न लीलाओं द्वारा उसे छकाया और सूंड से पकड़कर भूमि पर पटक दिया। कृष्ण ने उस हाथी के दोनों दांत उखाड़ लिए और उन्हीं से महावत व हाथी को मार डाला। जब बलराम व कृष्ण कुवलयापीड के रक्तरंजित दांतों को कंधे पर रखकर मल्लशाला में प्रविष्ट हुए, तब कंस और भी आतंकित हो उठा, उसके इशारे पर चाणूर ने कृष्ण को व मुष्टिक ने बलराम को मल्ल युद्ध के लिए आमंत्रित किया। योजनानुसार वे कृष्ण व बलराम को मल्लक्रीड़ा के बहाने मार डालना चाहते थे, किन्तु बेचारे उनके हाथों स्वयं ही मार डाले गए। उनकी सहायता को अखाड़े में आए शल तथा तोशल नामक पहलवानों को भी कृष्ण ने और कूटनाम के पहलवान को बलराम ने टांगें चीरकर तथा गर्दन तोड़कर मार डाला।'

'हे राजन्! तब कंस अपने सेवकों को उन दोनों को पकड़ लेने का आदेश देने लगा, तब कृष्ण कूदकर मंच पर आ गए। मृत्यु को सिर पर ही आ गई जान कंस ने तलवार और ढाल उठा ली और कृष्ण पर वार करने को पैंतरे बदलने लगा। कृष्ण ने गरुड़ के सांप को पकड़ लेने के समान कंस को पकड़कर मंच से रंगभूमि में गिरा दिया। उसका मुकुट उसके सिर से दूर जाकर गिरा। कृष्ण ने मंच से उसी

के ऊपर कूदकर उसके प्राण ले लिए और उसके शव को घसीटने लगे। कंस घृणा और क्रोध के साथ ही सही, परन्तु हर समय कृष्ण चिन्तन ही किया करता था। अतः उसे अन्ततः वो परम गति मिली जो योगियों और तपस्वियों को भी कठिनाई से मिलती है। कंस के न्यग्रोध व कंक आदि छोटे आठ भाई बदला लेने को कृष्ण की ओर दौड़े, लेकिन उन्हें मार्ग में ही बलरामजी ने परिध घुमाकर मार डाला। उस समय आकाश में दुंदुभियां बजने लगीं, अप्सराएं नाचने लगीं और देवता फूल बरसाने लगे। कृष्ण ने विलाप करने वाली कंस की पत्नियों को ढांढस बंधाया और कंस का विधिवत क्रियाकर्म कराया। अपने माता-पिता व उग्रसेन को कंस के कारागार से मुक्त कराया। तब माता-पिता को प्रणाम करने पर भी उन दोनों (देवकी व वसुदेव ने) ने उन्हें हृदय से लगाने में यह सोचकर संकोच किया कि जगदीश्वर को अपना पुत्र कैसे समझें?'

'श्रीकृष्ण ने उग्रसेन को यदुवंशियों का शासक बनाया (यद्यपि राजा ययाति के शापानुसार यदुवंशी राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकते थे।) अन्य यदुओं को जो कंस से भय खाकर इधर-उधर भाग गए थे, उन्हें भी कृष्ण ने बुलाकर आदर व धन प्रदान किया और नन्द आदि को समझा-बुझाकर तथा बाद में स्वयं आने का वादा करके ब्रज भेज दिया। फिर वसुदेव जी ने गर्गाचार्य से कृष्ण-बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार करवाया और अध्ययन हेतु वे दोनों कश्यप गोत्रीय संदीपन मुनि के गुरुकुल में अवन्तीपुर (उज्जैन) चले गए। वहां उन्होंने वेद, वेदांग, उपनिषदों, धर्म, मीमांसा, तर्कविद्या, राजनीति आदि का सम्पूर्णाध्ययन किया। चौंसठ कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया और विद्याध्ययन पूर्ण किया। तब श्री कृष्ण के प्रभाव व शक्तियों को जान लेने वाले संदीपनजी ने कृष्ण से गुरुदक्षिणा में प्रभास क्षेत्र में डूबकर मर चुका अपना पुत्र मांगा। कृष्ण गुरुपुत्र को लेने सागर के पास गए, तब सागर ने बताया कि वह निर्दोष है। गुरुपुत्र को सागर में रहने वाले पन्चजन नामक दैत्य ने चुरा लिया होगा—जो शंख के रूप में रहता है। तब कृष्ण ने पन्चजन नामक शंखासुर को मार डाला, किन्तु गुरुपुत्र उसके उदर में न मिला। कृष्ण तब उसके शरीर रूपी शंख के साथ वापस आ गए।

'हे राजन्! तब श्री कृष्ण ने यमराज के पास जाकर 'गुरुपुत्र' को वापस लाकर गुरुदक्षिणा पूर्ण की और वापस लौटे। तब श्रीकृष्ण के मंत्री व सखा उद्धवजी (जो बृहस्पति शिष्य थे) ने उनको नन्द, यशोदा व गोपियों की विरह व्यथा कही। कृष्ण ने आश्वासन देने के लिए उद्धवजी को अपना संदेश देकर (मैं आऊंगा) ब्रज भेजा। नन्द आदि ने उनसे कृष्ण की कुशलक्षेम पूछी और उद्धवजी का रथ देख अक्रूर को भी आ गया समझा। उद्धवजी ने उनकों विभिन्न प्रकार से समझाया और ज्ञानदायक बातें की, किन्तु कृष्ण के प्रेम में दीवानी गोपियों की व्यथा में कुछ अन्तर न आया। उद्धवजी कृष्ण के प्रति उनके अखंड प्रेम के प्रति नतमस्तक हो गए और बोले—'इस

पृथ्वी पर गोपियों का ही शरीर धारण करना सफल है, क्योंकि ये कृष्ण के परम प्रेममय दिव्य महाभाव में स्थित हो गई हैं, जो बड़े-बड़े मुनियों व योगियों के लिए भी सम्भव नहीं हो पाती, श्रीकृष्ण के प्रति वह तन्मयता और ललक गोपियों ने पा ली है—अतः वे धन्य हैं।' उद्धवजी जब मथुरा के लिए चले तब गोपियों ने कहा कि कृष्ण एक बार ब्रज अवश्य आएं, वे उन्हीं के दर्शनों की लालसा में ही प्राणों को शरीर में रोके हुए हैं, फिर उद्धवजी मथुरा लौटे और उन्होंने कृष्ण, वसुदेव व उग्रसेन आदि को वहां का सब समाचार सुनाया।"

शुकदेवजी आगे बोले—"परीक्षित! तदनंतर कृष्ण ने कुब्जा के घर जाकर अपना वचन पूर्ण किया। कृष्ण को अंगराग देने के बदले ही कुब्जा को कृष्ण का मिलन तथा अभीष्ट वर प्राप्त हुआ। फिर वे अक्रूरजी के घर गए और अपना वह वचन भी निभाया। अक्रूरजी ने भगवान कृष्ण का पूजन व स्तुति की। फिर अक्रूरजी को कुन्ती व पाण्डवों का समाचार जानने को हस्तिनापुर चले जाने का निवेदन कर कृष्ण-बलराम सहित अपने चाचा अक्रूरजी के यहां से वापस लौट आए।'

'अक्रूरजी भगवान के निर्देशानुसार हस्तिनापुर जा पहुंचे। वहां धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कृप, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम आदि से मिलकर उनकी कुशलक्षेम पूछी। हस्तिनापुरवासियों से भी वहां की कुशलता पूछी और कुन्ती से मिले। कुन्ती ने अक्रूरजी से कृष्ण आदि की कुशलक्षेम पूछने के बाद कहा कि वह अपने पुत्रों सहित कष्ट में हैं, अक्रूरजी व कृष्ण उनकी रक्षा करें। अक्रूरजी ने कुन्ती को सांत्वना देते हुए कहा कि पाण्डव धर्म के पक्ष में हैं और वे अधर्म के नाश के लिए ही उत्पन्न हुए हैं। जहां धर्म रहता है, वहीं श्रीकृष्ण भी रहते हैं, अतः वे किसी प्रकार की चिन्ता न करें। कुन्ती को सांत्वना देने के बाद अक्रूरजी ने कौरवों की सभा में जाकर धृतराष्ट्र को कृष्ण का संदेश सुनाया, जो इस प्रकार था—'महाराज धृतराष्ट्र! आप कुरुदेशियों की कीर्ति में वृद्धि करें। पाण्डु के स्वर्ग सिधारने पर आप राजा हुए हैं। अपने सद्व्यवहार से प्रजा को प्रसन्न रखिए। विपरीत आचरण से आपको अपयश व नरक भोगना पड़ेगा। अतः अपने पुत्रों व पाण्डवों के साथ समान व्यवहार कीजिए। धर्म से विमुख होने वाले के लौकिक स्वार्थ भी नष्ट हो जाते हैं, परलोक तो बिगड़ता ही है। अतः ममतावश पक्षपात न कीजिए।' तब धृतराष्ट्र बोले—'हे अक्रूर! कृष्ण मेरे ही कल्याण की कह रहे हैं, पर पुत्रमोह के कारण उनकी शिक्षा मेरे हृदय में ठहर नहीं पा रही। सुना है, वे (कृष्ण) पृथ्वी का भार उतारने को अवतीर्ण हुए हैं। फिर उनके विधान में कौन उलटफेर कर सकता है। जैसा वे चाहेंगे, वही होगा। मैं तो पुत्रमोह के आगे पूरी तरह विवश हूं।' अक्रूरजी ने वापस आकर कृष्ण को हस्तिनापुर के समस्त समाचार और धृतराष्ट्र आदि से हुए वार्तालाप को सुनाया। यही कृष्ण का उद्देश्य भी था।"

□□

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)

शुकदेवजी आगे बोले—"कंस की दो पत्नियां अस्ति और प्राप्ति थीं—जो मगध नरेश जरासंध की पुत्रियां थीं। उनके अपने मैके लौट जाने पर जरासंध को उनके वैधव्य का कारण ज्ञात हुआ तो उसने निश्चय किया कि पृथ्वी पर एक भी यदुवंशी नहीं रहने देगा। उसने 23 अक्षौहिणी सेना के साथ यदु राजधानी मथुरा को घेर लिया। उस समय कृष्ण ने विचार किया कि उनका उद्देश्य तो दुष्टों का संहार कर पृथ्वी का भार उतारना ही है और सागर समान सेना एकत्रित करके जरासंध ने उनके काम को आसान कर दिया है, किन्तु फिर भी यदि जरासंध को जीवित छोड़ दिया जाए तो वह प्रतिशोध भावना से अवश्य ही और सेना एकत्रित करेगा। तब पृथ्वी के भार को कम करने के अवसर जरासंध बार-बार उपस्थित करेगा। ऐसा विचार कर कृष्ण, बलराम सहित अपने-अपने रथों पर चढ़कर रणक्षेत्र में आ पहुंचे। कृष्ण का सारथी दारुक था। पुरी से बाहर निकलकर कृष्ण ने शत्रुओं के हृदय को दहला देने वाला पांचजन्य शंख बजाया। तब जरासंध ने कहा—'अरे कृष्ण! तू तो अभी निरा बालक ही है, तुझसे युद्ध करने में मुझे लज्जा आती है। हां बलराम चाहे तो मेरे साथ युद्ध करके मृत्यु का वरण कर ले।' तब कृष्ण बोले—'मगधराज! वीरों को पराक्रम शोभा देता है, डींग मारना नहीं, अतः तुम युद्ध करो। मृत्यु के समय सन्निपात रोगी के बड़बड़ाने के समान ही तुम्हारी बकवास का मैं बुरा नहीं मानता।' तब क्रुद्ध होकर जरासंध सेना सहित कृष्ण-बलराम पर टूट पड़ा।'

'कृष्ण भगवान ने देवताओं और असुरों में सम्मानित शाङ्र्ग धनुष उठाए और बाण चलाने आरम्भ कर दिए। बलराम जी भी अपने हल और मूसल द्वारा शत्रु सेना का नाश करने लगे। तब उन दोनों भाइयों ने जरासंध की सागर के समान विशाल सेना को कुछ ही समय में नष्ट कर दिया और अकेला रह जाने पर बलराम ने

बलपूर्वक जरासंध को पकड़ लिया, किन्तु कृष्ण ने उसे छुड़वा दिया। तब बड़े-बड़े शूरवीरों से सम्मानित होने वाला जरासंध अपमानित होकर लौट गया। इस प्रकार जरासंध ने सत्रह बार तेईस अक्षौहिणी सेना एकत्रित करके मथुरा पर आक्रमण किया, किन्तु कृष्ण व बलराम ने हर बार उसकी सेना नष्ट करके उसको जीवित छोड़ दिया। हे राजन्! जब जरासंध अठारहवीं बार आक्रमण की तैयारी कर रहा था तब नारदजी का भेजा हुआ कालयवन भी तीन करोड़ म्लेच्छों की सेना लेकर वहां आ पहुंचा। युद्ध में कालयवन के सम्मुख खड़ा रह सकने वाला वीर संसार में कोई न था। उसने सेना के साथ मथुरा को घेर लिया। कालयवन की यह असमय चढ़ाई देखकर कृष्ण ने बलराम के साथ परामर्श किया और यह निष्कर्ष निकाला कि बिना किसी सुदृढ़ और अभेद्य किले में अपनी प्रजा व बांधवों को सुरक्षित किए बिना कालयवन और जरासंध से एक साथ उलझना ठीक नहीं। इससे यदुवंशियों को संकट हो सकता है।'

'अतः कृष्ण ने समुद्र के भीतर, चारों ओर से सुरक्षित अड़तालीस कोस की लम्बाई-चौड़ाई वाला एक दुर्गम व अद्भुत नगर बनवाया। उस नगर की एक-एक वस्तु में विश्वकर्मा का वास्तु विज्ञान और शिल्पकला की दक्षता प्रमाणित होती थी। इन्द्र ने अपनी सुधर्मा-सभा और पारिजात वृक्ष, वरुण ने मन की गति वाले बहुत से श्वेतवर्ण-श्यामकर्ण घोड़े, कुबेर ने आठों निधियां तथा अन्य लोकपालों ने भी अपनी विभूतियां कृष्ण को उस नगरी के लिए दीं। तब कृष्ण ने योगमाया द्वारा समस्त सम्बन्धियों व मथुरा की प्रजा को उस समुद्र नगरी द्वारिका में मथुरा से स्थानांतरित कर दिया और जरासंध की सेना से मथुरा की रक्षा के लिए बलरामजी को वहीं छोड़कर स्वयं कालयवन को मजा चखाने निःशस्त्र ही मथुरा से बाहर निकल आए। उस समय निहत्थे ही पैदल चलते हुए श्री कृष्ण वन में निर्भय व शान से विचरने वाले सिंह की भांति शोभा पा रहे थे।'

'नारद द्वारा बताए हुए लक्षणों से कालयवन ने कृष्ण को पहचान लिया। तब उन्हें निहत्थे व पैदल देखकर उसने कहा कि वह भी कृष्ण से निहत्था और पैदल ही लड़ेगा। ऐसा सोचकर वह कृष्ण की ओर दौड़ा तो कृष्ण दूसरी ओर को भागने लगे और रणभूमि से निकल गए। कालयवन ने उनका पीछा किया। (इस प्रकार भागने से कृष्ण का एक नाम 'रणछोड़' भी हुआ) भगवान कृष्ण उसे लीलापूर्वक अपने पीछे भगाते हुए एक पहाड़ी गुफा तक ले आए। कृष्ण गुफा में जा छिपे। कालयवन गुफा में आया तो उसने किसी को पीताम्बर ओढ़े लेटे हुए पाया। कालयवन ने कृष्ण समझकर उस व्यक्ति को ठोकर मारकर जगा दिया। तब रुष्ट होकर वह व्यक्ति उठा और उसने अपने दृष्टिपात मात्र से ही कालयवन को भस्म कर दिया।'' शुकदेवजी से इतना सुनने के बाद उस गुफा में सोने वाले और कालयवन को एक दृष्टि से

ही भस्म कर देने वाले उस रहस्यमयी व्यक्ति के विषय में परीक्षित ने जानने की जिज्ञासा प्रकट की। तब शुकदेव बोले—

''हे राजन्! वह इक्ष्वाकुवंशी मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्द थे। पूर्वकाल में एक बार असुरों से भयभीत देवताओं ने मुचुकुन्द से अपनी रक्षा की प्रार्थना की थी—तब मुचुकुन्द ने सेना नायक के रूप में बहुत समय तक देवताओं की इन्द्र सहित रक्षा की थी, फिर देवताओं को जब सेनापति के रूप में स्वामी कार्तिकेय मिल गए तब उन्होंने मुचुकुन्द का धन्यवाद कर उन्हें विश्राम करने को कहा। बहुत काल बीत जाने से मुचुकुन्द के समकालीन सभी लोग काल के गाल में जा चुके थे, अतः उनके ऐसे महान त्याग के कारण देवताओं ने उनसे अभीष्ट वर मांगने को भी कहा। हे राजन्! संग्राम विजयी मुचुकुन्द लम्बे समय से श्रम करते रहने से अत्यंत थक गए थे, अतः उन्होंने यही कहा कि वे केवल सुखपूर्वक सोना चाहते हैं। तब देवताओं ने उन्हें वही वर दिया और कहा कि—'यदि आपके निद्रासुख को भंग करके कोई भी बाधा डालेगा, तो वह आपकी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जाएगा।' तब मुचुकुन्द उस एकान्त गुफा में आकर सो गए थे। सो कृष्ण ने उनको हथियार बनाकर अजेय वीर कालयवन को भस्म करवा दिया।'

'कालयवन को भस्म कर मुचुकुन्द ने कृष्ण को देखा और प्रणाम कर पूछा—'अत्यंत दिव्य, मनोहर और तेजस्वी दिखाई देने वाले आप कौन हैं?' कृष्ण ने हंसकर कहा—'मेरे अनन्त नाम हैं। अनन्त कर्म और जन्म हैं—तो भी मैं जन्म, कर्म, नाम आदि के बन्धनों से परे हूं, सो मैं अपने विषय में तुमसे क्या कहूं? बस यही जान लो कि तुम पर अनुग्रह करने ही मैं यहां आया हूं।' हे राजन्! ऐसा सुनते ही मुचुकुन्द समझ गए कि पहले जिनकी वे बहुत आराधना किया करते थे, वही नारायण उनके सामने हैं। तब उन्होंने भगवान की स्तुति की। भगवान कृष्ण ने उनकी परीक्षा हेतु वर मांगने के प्रलोभन दिए, किन्तु मुचुकुन्द ने केवल उनकी शरण ही मांगी। तब कृष्ण बोले—'तुम अगले जन्म में सारे जगत् के हितैषी ब्राह्मण बनोगे फिर मोक्ष प्राप्त कर मुझको प्राप्त होओगे। अब तुम अपना मन मुझ ही में लगाकर तप करो और राजा रहते हुए अपने द्वारा होने वाले मृगया, हिंसा आदि पापों को धो डालो। तुम मेरे अनन्य भक्त हो, तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही मैंने वर का प्रलोभन दिया था, किन्तु मेरा सच्चा भक्त कभी कामनाओं के जाल में नहीं फंसता।'

'हे परीक्षित! तब मुचुकुन्द गन्धमादन पर्वत पर तप हेतु चले गए और कृष्ण ने मथुरा लौटकर कालयवन की सेना का संहार किया। सेना का सब धन छीन लिया। फिर जब वे कालयवन का और मथुरा का धन लेकर द्वारिका को जा रहे थे, तब जरासंध 23 अक्षौहिणी सेना के साथ अठारहवीं बार आ धमका। तब कृष्ण व बलराम

कालयवन को नेत्र ज्योति से भस्म करते राजा मुचुकन्द

मनुष्यों की-सी लीला दिखाते हुए भाग चले और प्रवर्षण पर्वत पर चढ़ गए। (सदैव उस पर्वत पर वर्षा होती रहती थी, अतः उस पर्वत का नाम 'प्रवर्षण' हो गया था)। जरासंध को वे उस पर्वत पर खोजने से भी न मिले तो उसने पर्वत में चारों ओर से आग लगवा दी। पर्वत जलता देखकर दोनों भाई जरासंध की सेना लांघते हुए गुप्त रूप से ग्यारह योजन ऊंचे पर्वत से नीचे पृथ्वी पर कूद आए और चुपके से द्वारिका पहुंच गए। जरासंध इस भ्रम में सेना सहित अट्टहास करता हुआ लौट आया कि उसने कृष्ण और बलराम को पर्वत सहित जलाकर मार डाला है। इस प्रकार लीलावश वे भगवान होते हुए भी कभी साधारण मनुष्यों का-सा आचरण करते थे।'

'आनर्तदेश के महाराज रेवत ने ब्रह्मा की प्रेरणा से अपनी पुत्री रेवती का विवाह बलराम जी से किया था—यह पहले तुमसे बताया ही था। श्रीकृष्ण ने भी विदर्भदेश की राजकुमारी और महाराज भीष्मक की पुत्री रुक्मणी का स्वयंवर से शाल्व व शिशुपाल आदि राजाओं को हराकर गरुड़ द्वारा सुधा के हरण कर लेने के समान ही हरण कर लिया था। यह हरण रुक्मणी (जो लक्ष्मी का अवतार थीं) की स्वेच्छा से था।" शुकदेवजी के ऐसा कहने पर परीक्षित ने रुक्मणी हरण का प्रसंग जानने की जिज्ञासा प्रकट की तो शुकदेव ने बताया—

"विदर्भदेश के राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मणी पांच भाइयों (रुक्मी, रूक्मथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली) की बहन थी। रुक्मी सबसे बड़ा भाई था। रुक्मणी ने, कृष्ण के गुण, सौंदर्य व पराक्रम की चर्चा सुनते-सुनते कृष्ण को अपना हृदय दे दिया था। कृष्ण को भी रुक्मणी पसंद थी। रुक्मणी के भाई-बन्धु भी कृष्ण ही को रुक्मणी के लिए उपयुक्त वर समझते थे, किन्तु कृष्ण के द्वेषी रुक्मी ने शिशुपाल को रुक्मणी के योग्य वर समझा, जब रुक्मणी को ज्ञात हुआ कि रुक्मी उसका विवाह शिशुपाल से करा देना चाहता है तो उसने विश्वासपात्र ब्राह्मण के हाथों कृष्ण को विदर्भ आने और रुक्मणी को साथ ले जाने का संदेश भिजवा दिया।'

'रुक्मणी के संदेशानुसार वह विवाह से एक दिन पूर्व कुल परम्परा के अनुसार गिरिजादेवी के दर्शनार्थ मन्दिर में आएंगी—यह कृष्ण को ज्ञात हो चुका था। सो कृष्ण विदर्भ देश के लिए चल पड़े। हे राजन्! विदर्भ में चेदि नरेश दमघोष, शिशुपाल, दन्तवक्त्र, जरासंध, शाल्व, पौण्ड्रक, विदूरथ आदि सब ससैन्य आए थे, क्योंकि उन्होंने निश्चय कर रखा था कि यदि कोई यदुवंशी कन्या के हरण की चेष्टा करेगा तो वे सब मिलकर उससे युद्ध करेंगे। बलरामजी को शत्रुओं की तैयारी का समाचार मिला तो वे यह जानकर कि कृष्ण अकेले ही रुक्मणी हरण को गए हैं और वहां युद्ध सम्भावित है, चतुरंगिणी सेना के साथ विदर्भ रवाना हो गए। यद्यपि वे कृष्ण के बल पराक्रम को जानते थे तो भी अति स्नेह के कारण और बड़ा भाई होने से वे कृष्ण

के प्रति चिंतित हो उठे थे।"

शुकदेवजी आगे बोले—"योजनानुसार कृष्ण समय से निर्धारित स्थान पर पहुंचे और शत्रुओं के बीच से रुक्मणी को उठा लिया, जिस प्रकार सिंह गीदड़ों के बीच में अपना भाग उठाकर ले जाता है, उसी प्रकार सब राजाओं के देखते-देखते कृष्ण व बलराम अन्य यदुवंशियों के साथ वहां से चल दिए, तब उन राजाओं को ग्लानि की अनुभूति से चेतना हुई और वे शस्त्र उठाकर कृष्ण के पीछे दौड़े। इस पर यदुवंशियों ने पलटकर उनका सामना किया और अन्ततः शत्रुसेना को परास्त कर भगा दिया। तब शिशुपाल अपनी भावी दुल्हन के हरण से उदास हो गया तो जरासंध ने उसे समझाकर सामान्य किया। इधर बलवान रुक्मी अपनी बहन के हरण को सहन न कर पाने के कारण एक अक्षौहिणी सेना के साथ कृष्ण के पीछे लगा था। कृष्ण युद्ध में केवल अपना बचाव ही कर रहे थे (सम्बन्धी होने से उन पर आघात नहीं कर रहे थे) किन्तु जब रुक्मी नहीं माना तो कृष्ण ने उसके सभी अस्त्र-शस्त्र काट डाले और रुक्मी के फिर भी न मानने पर तलवार लेकर उस पर वार करने को उद्धत हुए। तब रुक्मणी की प्रार्थना पर कृष्ण ने उसे मारा नहीं, उसके दुपट्टे से उसे बांधकर उसकी मूंछ व बाल कहीं-कहीं से काट लिए। तब तक अन्य यदुवंशियों के साथ बलराम जरासंध आदि को पराजित कर वहां पर आए गए थे। उन्होंने रुक्मी को खोला और कृष्ण को डांट कर कहा—'घोर अपराध करने पर भी सम्बन्धी को मारना ठीक नहीं होता, तुमने रुक्मी को श्रीविहीन और अपमानित करके एक प्रकार से उसका वध ही किया है। यह ठीक नहीं है। ऐसा निन्दित कार्य तुम्हारे योग्य नहीं था।' फिर वे रुक्मणी से बोले—'सुभगे! अपने भाई के साथ इस व्यवहार के लिए बुरा न मानना। ब्रह्माजी ने क्षात्रधर्म ही ऐसा घोर बनाया है कि सगा भाई भी अपने भाई को मार डालता है, तथापि इसे इसकी उद्दण्डता का ही दण्ड दिया गया है।' इस प्रकार उन्होंने रुक्मणी को भी सांत्वना दी और फिर सब यदुवंशी दुल्हन के साथ द्वारिका को लौटे। यहां पुरवासियों ने उनका स्वागत किया और उत्सव मनाया।'

'हे परीक्षित! कामदेव—जो भगवान वासुदेव ही के अंश हैं, पहले भगवान शंकर की क्रोधाग्नि में भस्म हो गए थे—अब फिर शरीर को प्राप्त करने के लिए उन्होंने वासुदेव का ही आश्रय लिया (जैसा कि शिव ने कामदेव की अर्द्धांगिनी रति से कहा भी था) और रुक्मणी व कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न नाम से उत्पन्न होकर संसार में विख्यात हुए (इससे पूर्व देह विहीन ही रहने के कारण कामदेव 'अनंग' नाम से पुकारे जाते रहे)। प्रद्युम्न अभी दस दिन के भी न हुए थे कि कामरूपी शम्बरासुर उन्हें सूतिका गृह से ही उठा ले गया और समुद्र में फेंक आया, क्योंकि उसे ज्ञात हो चुका था कि प्रद्युम्न शम्बरासुर का भावी शत्रु है। तब एक बड़ा मच्छ प्रद्युम्न को जीवित ही

निगल गया और मछुआरे अन्य मछलियों के साथ उसे भी जाल में फंसा ले गए। हे राजन्! यह विडम्बना देखो कि मछुआरों ने वह मच्छ ले जाकर शम्बरासुर ही को दे दिया। शम्बरासुर ने उसे पकाने के लिए अपने रसोइए को दे दिया। रसोइए उसका व्यंजन बनाने के लिए जब उसे काट रहे थे तो प्रद्युम्न को देखकर विस्मित हो गए। उन्होंने उस बालक को शम्बर की पत्नी माया को दे दिया। मायादेवी मच्छ के उदर से निकले उस अति सुन्दर बालक को देख संशय में पड़ गई। तब नारदजी ने उन्हें सब कथा सुनाई।'

'हे राजन्! मायावती वास्तव में कामदेव की पत्नी रति ही थी, जिसे कामदेव के दग्ध हो जाने पर अपनी सेवा के लिए शम्बरासुर उठा लाया था। उसने जब नारद से सुना कि प्रद्युम्न वास्तव में कामदेव ही हैं, तब वह प्रसन्न होकर गुप्त रूप से उसे पालती हुई, उसके युवा होने की प्रतीक्षा करने लगी। प्रद्युम्न थोड़े ही दिनों में युवा हो गए और उनका रूप लावण्य स्त्रियों के मन को मथने वाला हुआ।' तब माया भी उनके प्रति कामासक्त हो उठी (वह तो अपनी और उनकी वास्तविकता को जान ही चुकी थी, किन्तु प्रद्युम्न जानते न थे।) प्रद्युम्न ने तब कहा कि—'तुम मेरी माता के समान मुझे पालने वाली हो, तुम्हारी बुद्धि विपरीत कैसे हो गई? माता के स्थान पर कामिनी की भांति हाव-भाव क्यों दिखा रही हो?' तब मायावती ने उन्हें वास्तविकता बताई और शम्बरासुर के मायावी होने के कारण उसे युद्ध में पराजित करने को प्रद्युम्न को महामाया नामक विद्या सिखाई।'

'प्रद्युम्न का शम्बरासुर से प्रथम गदायुद्ध हुआ। शम्बर गदायुद्ध में पराजित होकर आकाश में स्थित हुआ और मायायुद्ध करने लगा। (दैत्य मयासुर से उसने माया सीखी थी) तब प्रद्युम्न ने समस्त मायाओं को निरस्त कर देने वाली महामाया का उपयोग कर शम्बर को पराजित किया और तलवार से उसका सिर काट लिया। देवताओं ने तब आकाश से पुष्पवर्षा की। अपनी माता रुक्मणी को सांत्वना देते प्रद्युम्न फिर द्वारका लौट आए। प्रारम्भ में तो द्वारका की स्त्रियां उस सांवले-सलोने पुरुष को एक गौरवर्णा सुन्दरी के साथ आया देखकर कृष्ण ही समझीं और संकुचाने लगीं। फिर उन्हें ज्ञात हुआ कि वे प्रद्युम्न हैं जो मायावती के साथ लौट आए हैं। रुक्मणी भी उन्हें देख विस्मय में पड़ गईं। फिर नारद ने प्रकट होकर उन्हें सब कथा कही। तब अपने पुत्र को पुत्रवधु सहित वापस पाकर रुक्मणी अति प्रसन्न हुईं।'

'इसी प्रकार एक बार सत्राजित् ने कृष्ण पर स्यमन्तक मणि चुरा लेने का आरोप लगाया था। तब कृष्ण ने उस आरोप का परिमार्जन किया और सत्राजित से स्यमन्तक मणि व उसकी पुत्री सत्यभामा के साथ-साथ ऋक्षराज जाम्बवान् की पुत्री जाम्बवंती को भी प्राप्त कर लिया था।'' परीक्षित द्वारा वह प्रसंग सुनने की जिज्ञासा प्रकट करने

पर शुकदेव जी ने उनसे वह कथा भी कही, जो इस प्रकार है—"सत्राजित ने उपासना द्वारा सूर्य को प्रसन्न कर स्यमंतक मणि प्राप्त की—जो धनदायक और यशवर्धक मणि थी। गले में धारण कर जब सत्राजित द्वारका आया तो मणि की अद्वितीय चमक के कारण लोगों से सत्राजित को सूर्य ही समझा। जब कृष्ण को उनकी सूचना मिली तो वे जान गए कि सूर्य नहीं सत्राजित उनसे मिलने आया है। फिर वापस लौटकर वह मणि सत्राजित ने मन्दिर में रख दी। वह दिव्यमणि पूजित होने पर महामारियों, दुर्भिक्ष, भय आदि को दूर ही रखती हुई प्रतिदिन आठ भार (बीस तुला/दो हजार पल) स्वर्ण देती थी। एक दिन प्रसंगवश कृष्ण ने सत्राजित से कहा था कि उसे स्यमंतक मणि राजा उग्रसेन को दे देनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की विचित्र तथा अद्‌भुत वस्तुएं राजा के पास ही होनी चाहिए, किन्तु सत्राजित न माना।'

'शिकार को जाते समय सत्राजित का भाई प्रसेनजित एक बार वह मणि गले में पहन गया। वहां अश्व सहित प्रसेन को मारकर एक सिंह ने कौतुहलवश वह मणि ले ली। ऋक्षराज जाम्बवान ने उस सिंह को मारकर वह मणि अपने बच्चों को गुफा में खेलने को दे दी। प्रसेन के वापस न लौटने पर सत्राजित ने कहा कि अवश्य ही उसके भाई को मरवाकर कृष्ण ने वह मणि प्राप्त कर ली है, क्योंकि वह मणि उसके पास देखकर जलते थे और उसे पाना चाहते थे। तब कृष्ण अपने सिर लग गए उस कलंक के निवारण हेतु कुछ सम्मानित व्यक्तियों के साथ मणि ढूंढने वन में गए। वहां अश्व और प्रसेन के अवशेष और सिंह के पदचिन्ह देखकर लोग जान गए कि प्रसेन को सिंह ने मार डाला है। कृष्ण, सिंह के पदचिन्हों के पीछे उसकी गुफा तक पहुंचे और वहां एक रीछ के पदचिन्ह तथा सिंह के अवशेष देखे। फिर रीछ के पदचिन्हों के पीछे वे रीछ की गुफा तक पहुंचे, बाकी लोगों को बाहर ही बैठाकर वे अकेले ही उस अंधेरी और भयंकर गुफा में प्रवेश कर गए।'

'हे राजन्! गुफा में भीतर जाने पर उन्होंने रीछ के बच्चों को मणि से खेलते देखा। तब जाम्बवान ने कृष्ण को एक साधारण मानव समझकर उनसे युद्ध किया। (बारह दिन तक) उनमें घोर युद्ध हुआ, फिर जाम्बवान ने थककर पराजय स्वीकार की और कृष्ण को तरोताजा ही देखकर उनके चरणों में लेटकर बोला—'प्रभो! इतनी सामर्थ्य वाले आप अवश्य ही भगवान राम हैं, जो कृष्ण रूप में पधारे हैं। मुझे क्षमा करें। (कहा जाता है कि त्रेता युग में रावण को पराजित करने के बाद जब राम अपने सेवकों को पुरस्कार आदि से सम्मानित कर रहे थे, तब जाम्बवान ने कहा था कि उसकी इच्छा थी, वह एक बार भगवान राम से जोर आजमा सकता और उन्हें दामाद के रूप में प्राप्त कर पाता। तब राम ने द्वापर युग में उसकी अभिलाषा पूर्ण करने का वचन दिया था) जाम्बवान ने फिर स्यमंतक मणि और अपनी पुत्री जाम्बवंती उन्हें

सौंप दी थी। बाद में सत्राजित मणि मिल जाने पर प्रायश्चित करते हुए मणि और अपनी पुत्री सत्यभामा कृष्ण को अर्पित करने गया था। तब कृष्ण ने सत्यभामा को स्वीकार किया और मणि सत्राजित को ही लौटाकर कहा—'आप सूर्यभक्त हैं। उनकी इस मणि को आप ही रखिए। हम तो केवल मणि से प्राप्त होने वाले स्वर्ण के ही अधिकारी हैं। सो आप हमें वही दे दिया करें।' इस प्रकार कृष्ण को दो श्रेष्ठ कन्यारत्न प्राप्त हुए थे।'

'हे परीक्षित वास्तविकता जानते हुए भी परम्परा का निर्वाह करने के लिए पाण्डवों के लाक्षागृह में जल मरने का समाचार सुनकर कृष्ण जब बलराम सहित शोक प्रदर्शन के लिए हस्तिनापुर गए तब अक्रूर और कृतवर्मा ने शतधन्वा को भड़का दिया कि सत्यभामा का विवाह हमसे करने को कहकर भी सत्राजित ने उसे कृष्ण को दे दिया। अतः उसे इस तिरस्कार का सबक मिलना चाहिए। सो शतधन्वा ने सोते हुए सत्राजित का वध करके स्यमंतक मणि को हथिया लिया। तब सत्यभामा के कहने पर कृष्ण व बलराम शतधन्वा को खोजने लगे, भय वश शतधन्वा ने कृतवर्मा और अक्रूरजी से सहायता मांगी पर वह दोनों यह कहकर कि कृष्ण जैसे सर्व समर्थ और शक्तिशाली से वो बैर नहीं ले सकते—एक तरफ हो गए। शतधन्वा तब प्राण रक्षा को भाग निकला। कृष्ण व बलराम ने रथ द्वारा उसका पीछा किया। मिथिलापुरी के निकट शतधन्वा का घोड़ा थककर गिर गया तो वह पैदल ही भागने लगा, तब कृष्ण ने भी पैदल होकर शतधन्वा का शीश चक्र से काट डाला, किन्तु स्यमंतक मणि उसके पास नहीं मिली। तब बलराम बोले कि अवश्य ही शतधन्वा ने मणि किसी के पास रखवा दी होगी। कृष्ण द्वारका जाकर पता लगाएं, वे अपने मित्र मिथिला नरेश से भेंट करके लौटेंगे। मिथिला नरेश ने बलराम को सम्मानपूर्वक कई वर्ष रखा, फिर धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने बलराम से गदायुद्ध की शिक्षा ली। उधर कृष्ण ने द्वारका लौटकर सत्यभामा को कहा कि उसके पिता की हत्या का बदला ले लिया गया है, किन्तु मणि नहीं मिली है।'

'अक्रूर व कृतवर्मा के उकसाने पर ही शतधन्वा ने सत्राजित का वध किया था। अतः शतधन्वा के वध का समाचार सुनकर (दाढ़ी में तिनका होने के कारण) भयवश वे भी द्वारका से भाग निकले। अक्रूरजी के द्वारका से चले जाने पर वहां वर्षा होनी बन्द हो गई। तब नगर के बुजुर्गों ने कहा—'काशी में वर्षों वर्षा न होने पर वहां के राजा ने अपनी पुत्री गान्दिनी का विवाह श्वफल्क से किया था और श्वफल्क के काशी में आने पर वर्षा हो गई थी। अक्रूर उन्हीं श्वफल्क के पुत्र होने से उन्हीं के समान हैं। अतः उन्हें वापस बुला लिया जाए।' कृष्ण जानते थे कि यह अक्रूर के कारण नहीं अक्रूर के साथ स्यमंतक मणि द्वारका से बाहर चले जाने के कारण सूखा पड़ रहा है। अतः उन्होंने अक्रूर को बुलाकर मधुर व्यवहार द्वारा उनका भय दूर किया

फिर बोले—'चाचाजी, मैं जानता हूं शतधन्वा मणि आपके पास रख गया था, उसी के प्रभाव से आप आज कल सोने की वेदियों पर लगातार यज्ञ कर रहे हैं। सत्राजित के पुत्र. न होने के कारण उसके नाती (सत्यभामा के पुत्र) का ही उनकी सम्पत्ति पर अधिकार है, तो भी उस मणि को आप ही रखिए, किन्तु सत्यभामा व बलराम दाऊ की प्रसन्नता के लिए एक बार उन्हें मणि दिखाकर संदेह दूर कर दीजिए।' इस प्रकार समझाने पर अक्रूरजी ने मणि कृष्ण को दे दी। कृष्ण ने सबको मणि दिखाकर आश्वस्त किया और स्वयं उसे रख लेने में समर्थ होते हुए भी अक्रूरजी को वापस लौटा दी। यह पूरा प्रसंग सुनने-पढ़ने वालों की अपकीर्ति, आरोपों व लांछनों का मोचन करने वाला मंगलकारी व शांतिदायक है।'

'हे परीक्षित् बाद में पाण्डवों के लाक्षागृह कांड से बच निकलने का समाचार सुनकर वे लोक व्यवहार के लिए (क्योंकि वे जानते तो पहले ही थे) प्रसन्नता प्रकट करने हस्तिनापुर गए और कुन्ती व द्रोपदी सहित पाण्डवों से भेंट की, तब सात्यकी आदि अन्य प्रमुख यदुवंशी भी उनके साथ थे। कृष्ण तब अर्जुन के साथ मृगया के लिए वन को गए, वहां तप करती हुई एक सुन्दरी को देखा। कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने उससे उसके विषय में पूछा तो उसने बताया कि वह सूर्य की पुत्री कालिन्दी है और विष्णु को पति रूप में प्राप्त करने की कामना से तप कर रही है। तब कृष्ण उसे अपने साथ ही ले आए और उससे विवाह किया।'

'पाण्डवों की प्रार्थना पर कृष्ण ने उनके रहने के लिए विश्वकर्मा से एक अद्भुत नगर का निर्माण करवाया और पाण्डवों की इच्छा पर बहुत दिन उन्हीं के साथ रहे। इस बीच अग्निदेव को खाण्डव वन भोजन के रूप में दिलाने के लिए वे अर्जुन के सारथी भी बने। तब तृप्त होकर अग्निदेव ने अर्जुन को गाण्डीव धनुष, दो अक्षय तूणीर, अभेद्य कवच, एक चार सफेद घोड़ों वाला रथ दिया। खाण्डव दाह में मयदानव को जलने से बचा लेने के कारण वह अर्जुन का मित्र हो गया और उसने उनके लिए एक अद्भुत सभा बनाई। इसी में दुर्योधन को जल में स्थल और स्थल में जल का भ्रम हो गया था। भगवान कृष्ण के और भी कई विवाह हुए। जैसे अवन्ती देश के राजा विन्द और अनुविन्द की बहन मित्रविन्दा ने कृष्ण को स्वयंवर में वरना चाहा, किन्तु दुर्योधन के अनुयाई होने से विन्द-अनुविन्द ने उसे रोका तब कृष्ण ने भरी सभा में उसका हरण कर उससे विवाह किया। वह कृष्ण की बुआ राजाधिदेवी की पुत्री थी। इसी प्रकार कौसलदेश के राजा नग्नजिति की पुत्री सत्या जो नाग्नजिति भी कही जाती थी—के स्वयंवर की शर्त सात दुर्दांत बैलों पर विजय पाना था—उसे पूर्ण कर कृष्ण ने नाग्नजिति से भी विवाह किया था। उस समय उन बैलों से पराजित हो चुके अन्य राजाओं को कृष्ण की विजय सहन नहीं हुई और उन सबने कृष्ण

को घेर लिया था, तब अर्जुन ने गाण्डीव उठाकर उन सब राजाओं को सिंह द्वारा सियारों को खदेड़े जाने के समान भगा दिया था।'

'हे राजन्! केकय देश में ब्याही गई कृष्ण की बुआ श्रुतकीर्ति की पुत्री भद्रा को उसके सन्तर्दन आदि भाइयों ने स्वयं ही कृष्ण को सौंप दिया था। भद्रदेश की राजकुमारी लक्ष्मणा को कृष्ण अकेले ही स्वयंवर से हर लाए थे। इसके अलावा भौमासुर का वध कर उसके बन्दी गृह से छुड़ाई गई हजारों (सोलह हजार) स्त्रियों से भी कृष्ण ने विवाह किया था।'' यह सुनकर राजा परीक्षित द्वारा भौमासुर की कथा सुनने की जिज्ञासा प्रकट की, तब शुकदेव जी ने उन्हें वह कथा भी सुनाई।

शुकदेव जी बोले—''भौमासुर ने वरुण का छत्र, अदिति के दिव्यकुण्डल तथा मेरु पर्वत पर स्थित देवताओं के मणिपर्वत को छीन लिया था। तब उन सबके स्वामी इन्द्र ने श्रीकृष्ण को भौमासुर की करतूत कही। कृष्ण उस समय सत्यभामा के साथ थे। सो उसके साथ ही गरुड़ पर वे भौमासुर की राजधानी 'प्रागज्योतिषपुर' चले गए। प्रागज्योतिषपुर में प्रवेश अत्यंत दुष्कर था। प्रथम तो उस नगरी के चारों ओर पर्वतों की और फिर शस्त्रों की किलेबन्दी थी। उसके बाद जल की खाइयां और फिर अग्नि या बिजली की चहारदीवारी थी। तिस पर उस चहारदीवारी के भी भीतर वायु (Gas) बंद करके रखा गया था और उसके भीतर मुर दैत्य ने नगर के चारों ओर 10,000 घोर व सुदृढ़ जाल बिछाए हुए थे, किन्तु कृष्ण ने अपनी गदा से पहाड़ों को, बाणों से शस्त्रों को तथा चक्र से अग्नि, वायु और जल की सुरक्षा को छिन्न-भिन्न कर डाला। मुर दैत्य के जाल उन्होंने तलवार से काट दिए। किले के भीतर जो बड़े-बड़े यन्त्रों को लगाया गया था तथा जो योद्धा सुरक्षा हेतु उनका संचालन किया करते थे, उनके हृदयों को कृष्ण ने शंखनाद से विदीर्ण कर दिया।'

'पाञ्चजन्य शंख का नाद सुनकर प्रागज्योतिषपुर के प्रधान प्रहरी पांच सिर वाले मुर दैत्य की निद्रा टूटी। वह महा भयंकर और बलशाली असुर कृष्ण पर त्रिशूल लेकर झपटा, तब कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसके पांचों सिर काट डाले। मुर के सात पुत्र ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, अरुण और नभस्वान् पिता की मृत्यु पर क्रुद्ध हो कृष्ण पर टूट पड़े, किन्तु कृष्ण ने उनको भी यमपुरी पहुंचा दिया। तब पृथ्वी पुत्र भौमासुर (जिसे नरकासुर भी कहते हैं।) हाथियों की बहुत बड़ी सेना लेकर वहां आ डटा और उसने कृष्ण पर 'शतघ्नी' नामक शक्ति का प्रहार किया—जो वज्र को भी विफल करने में समर्थ थी, किन्तु कृष्ण के सुदर्शन चक्र के आगे न 'शतघ्नी' की दाल गली, न भौमासुर की। गरुड़ ने उसकी हाथियों की सेना को और कृष्ण ने ससैन्य भौमासुर का वध कर डाला। तब देवताओं ने पुष्पवर्षा कर कृष्ण को सम्मानित किया और पृथ्वी ने कृष्ण के गले में वैजयन्तिमाला डाल अभिनन्दन किया तथा अपने पुत्र

भौमासुर के आतंक से सबको मुक्त कराने के लिए धन्यवाद स्वरूप कृष्ण की स्तुति की। कृष्ण ने जब भौमासुर के बन्दीगृह से विभिन्न राजाओं की अपहृत 16,000 पुत्रियों को मुक्त किया तो वे सभी कृष्ण पर मोहित हो गईं और उन्होंने स्वयं को सहर्ष कृष्ण को समर्पित कर दिया, तब कृष्ण ने उन सबसे विवाह किया।'

'हे राजन्! तब इन्द्र व इन्द्राणी ने कृष्ण व सत्यभामा को स्वर्ग में ले जाकर उनका सत्कार किया। वापसी में सत्यभामा की इच्छा पर कृष्ण स्वर्ग के उपवन से कल्पवृक्ष उखाड़कर साथ ले आए। आवश्यकता पड़ने पर याचना के लिए कृष्ण के सम्मुख गिड़गिड़ाने वाला इन्द्र अपनी पत्नी शची के भड़काने पर तब कृष्ण से युद्ध की ठानने लगा, परन्तु कृष्ण द्वारा उसका दर्प चूर हो जाने पर उसने क्षमा मांगी और कहा—'जब तक कृष्ण पृथ्वी पर रहेंगे कल्पवृक्ष द्वारका के उद्यान में ही शोभित होगा। कृष्ण के स्वलोक लौटने पर वह अद्भुत वृक्ष इन्द्र के पास लौट आएगा।' इस प्रकार कल्पवृक्ष द्वारका में लाकर कृष्ण ने अपनी पत्नी सत्यभामा की जिद भी पूरी की।''

शुकदेव जी ने आगे कहा—''कृष्ण का पूरा चरित्र ही लीलामंडित है। उनकी लीलाओं के संक्षेप में कहने में भी एक ग्रंथ चाहिए। मैं तुमसे अतिसंक्षेप में सब कह रहा हूं, क्योंकि तुम्हारी सुनने की इच्छा है और ये समस्त लीलाएं सुनने वालों के पाप नष्ट करने वाली हैं। साथ ही स्वयं मेरा भी दिल इन्हें सुनाते हुए नहीं भरता, अतः और कहता हूं—

'एक बार कृष्ण के क्षणभर को भी अलग न रहने से रुक्मणी को यह अभिमान हो गया कि वे कृष्ण को सर्वाधिक प्रिय हैं। तब श्रीकृष्ण ने उनके गर्व की शांति के लिए कहा—'हे सुन्दरी! मैं बड़े-बड़े बलवानों से दुश्मनी मोल लिए हुए एक अकंचन हूं। जरासंध व कालयवन के सम्मुख मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ था। रंग काला है, राज्याधिकार से प्रायः वंचित ही हूं। शत्रुओं के भय से समुद्र में नगरी बनाकर रहता हूं। पहले माखन और गोपियों के वस्त्र चुराता था, अब कई कन्याओं का हरण कर चुका हूं, तब भी तुमने शिशुपाल आदि महावीरों को छोड़ मुझे क्यों वरण कर लिया। हे राजकुमारी मैं तो जरासंध, शिशुपाल आदि राजाओं से वैर निकालने के कारण ही तुम्हें हर लाया था, अन्यथा स्त्री-पुत्रों में मेरी ऐसी कोई आसक्ति भी नहीं है। अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है, तुम अपने योग्य कोई अन्य वर ढूंढ़ लो। मैं तो लौकिक व्यवहार का अच्छी तरह से पालन तक नहीं करता हूं।' रुक्मणी यह सुनकर अत्यंत दीन होकर रोने लगीं तो कृष्ण ने अपना कार्य पूरा हुआ समझ उन्हें दिलासा देकर चुप कराया। तब रुक्मणी ने श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहा—

'प्रभो! आप न केवल मेरे हृदय के अपितु समस्त लोकों के स्वामी हैं। मैं आपको हृदय से प्रेम करती हूं और आपके त्यागे जाने पर जीवित नहीं रह सकती। आपके

बल, विक्रम और ऐश्वर्य को कौन नहीं जानता? सूर्य को प्रकाश दिखाने का क्या लाभ! आप परमवीर हैं। आपकी रण छोड़ने की लीला को भला मैं मूर्खा क्या जानूं? आप समस्त गुणों के आश्रय और मेरे आराध्य हैं—मैं बस इतना ही जानती हूं। बस यही चाहती हूं कि आपकी कृपा मुझ पर सदैव बनी रहे।' तब श्री कृष्ण ने उन्हें हृदय से लगाते हुए उनसे रसभरी बातें कीं और उनकी प्रशंसा की। गृहस्थाश्रम में रहते समय वे गृहस्थोचित लीला भी किया करते थे। अन्यथा नारायण और लक्ष्मी भी कभी एक-दूसरे से रुष्ट होते या मनाते हैं! वे तो प्रेम में सदा सम ही रहते हैं।

'प्रत्येक पत्नी से कृष्ण के दस-दस पुत्र हुए थे। उनकी ऐसी लीला थी कि उनकी हर पत्नी यही समझती थी कि कृष्ण सबसे अधिक उसी को चाहते हैं। आठ उनकी पटरानियां थीं—जिनमें रुक्मणी प्रमुख थीं। (रुक्मणी, सत्यभामा, जाम्बवंती, नाग्नजिति, कालिन्दी, मित्रविंदा, भद्रा तथा लक्ष्मणा—ये आठ पटरानियां थीं।) रुक्मणी के गर्भ से कृष्ण ने प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, विचारु तथा चारुचन्द्र—इन दस पुत्रों को उत्पन्न किया था। सत्यभामा से—भानु, सुभानु, प्रभानु, स्वर्भानु, भानुमान, चन्द्रभानु, अतिभानु, बृहद्भानु, श्रीभानु और प्रतिभानु। जाम्बवंती से—साम्ब, सुमित्र पुरुजित, शतजित, सहस्रजित, विजय, चित्रकेतु, वसुमान, द्रविड़ और क्रतु। नाग्नजिति से—वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान, वृष, आम, शंकु, वसु व कुन्ती। कालिन्दी से—श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शांति, दर्श, पूर्णमास तथा सोमरु। लक्ष्मणा से—प्रघोष, गात्रवान, सिंह, बल, प्रबल, उर्ध्वग, महाशिक्त, सह, ओज व अपराजित। मित्रविंदा से—वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महाश, पावन, बह्नि व क्षुधि तथा भद्रा से—संग्रामजित, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु व सत्यक—भी दस-दस पुत्रों को, इनके अलावा रोहिणी आदि 16 हजार एक सौ पत्नियों से भी दीप्तिमान् व ताम्रतप्त आदि 10-10 पुत्रों को उत्पन्न किया था।'

'प्रद्युम्न का विवाह मायावती के बाद रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से भी हुआ था, उसी के गर्भ से अनिरुद्ध उत्पन्न हुए थे। अनिरुद्ध बड़ा बलशाली था। कृष्ण के पुत्र-पौत्रों की संख्या करोड़ों में थीं।" तब परीक्षित ने कहा—"रुक्मी तो कृष्ण के विरोधी थे, फिर वे उनके पुत्र प्रद्युम्न से अपनी पुत्री का विवाह करने को कैसे मान गए? दो शत्रुओं में विवाह सम्बन्ध किस प्रकार हो पाया? यह भी बताइए।"

तब शुकदेव जी बोले—"प्रद्युम्न मूर्तिमान कामदेव थे। अतः रुक्मवती ने रीझकर स्वयंवर में उन्हीं को वरण किया था। वहां बैठे राजाओं के विरोध करने पर प्रद्युम्न अकेले ही उसे हर लाए। कृष्ण से वैर होते हुए भी फिर रुक्मी ने अपनी बहन रुक्मणी की प्रसन्नता के लिए वह विवाह स्वीकार कर लिया। रुक्मणी के चारुमती नामक एक

बेटी भी थी, जिसका विवाह कृतवर्मा के पुत्र बली से हुआ था। रुक्मी ने बाद में अपनी पौत्री रोचना का भी विवाह रुक्मणी के पौत्र अनिरुद्ध से कर दिया था। उस विवाह में कलिंग नरेश आदि घमंडी राजाओं ने बारात में आए बलराम जी को पासों के खेल में जीत लेने के लिए उकसाया—क्योंकि बलराम पासों में प्रवीण न होते हुए भी पासे खेलने के व्यसनी थे। तब बलराम जी के साथ चौसर खेलने पर रुक्मी (हजारों के दाव) जीतता रहा और कलिंग नरेश आदि बलराम का उपहास करते रहे। बलराम ने ताव में आकर तब बड़ा दांव (एक लाख) लगाया जो संयोग से बलराम जीत गए, तो भी रुक्मी (बड़ा दांव होने से) 'मैंने जीता है।' ऐसा कहकर बेईमानी करने लगा। बलराम ने तब रोष में भरकर बहुत बड़ा (दस करोड़ मोहरों का) दांव लगाया तो प्रारब्धवश फिर बलराम ने ही जीत लिया, किन्तु रुक्मी फिर 'मैंने जीता' कहकर बेईमानी करने लगा। तब बलराम जी के क्रोध करने पर वह बोला—'आप ग्वाले लोग हैं—चौसर के नियमों से भली-भांति परिचित नहीं हैं।' अन्य राजाओं का उपहास, पासों में हार, जीत जाने पर रुक्मी की बेईमानी और फिर रुक्मी द्वारा अपमान—सब बातों ने मिलकर बलराम को आपे से बाहर कर दिया और उन्होंने एक मुद्गर उठाकर रुक्मी का सिर फाड़कर मार डाला। दांत दिखा-दिखाकर मजाक उड़ाने वाले कलिंग नरेश के दांत तोड़ दिए तथा व्यंग करने वाले अन्य राजाओं की भी खासी पिटाई की। वे सब भयभीत होकर भाग निकले। कृष्ण धर्मसंकट में पड़ गए। बलराम का पक्ष लेने पर रुक्मणी अप्रसन्न होतीं और रुक्मी का पक्ष लेने पर बलराम रुष्ट होते, अतः वे मौन रहे (अथवा उस स्थान से सरक लिए)। तब बलराम जी अन्य बारातियों के साथ व दुल्हन के साथ वापस लौटे। इस बारात में साम्ब, प्रद्युम्न आदि सभी साथ गए हुए थे।''

तब परीक्षित बोले—''गुरुवर! मैंने सुना है कि अनिरुद्ध ने बाणासुर की पुत्री ऊषा से विवाह किया था और उस अवसर पर श्रीकृष्ण और शंकर जी में बड़ा घमासान युद्ध हुआ था। आप तो त्रिकालज्ञ हैं। कृपया वह वृत्तान्त भी हम सबसे कहिए।''

शुकदेव जी ने कहा—''दैत्यराज बलि के विषय में वामनावतार के प्रसंग में तुमने सुना था। उसके सौ पुत्रों में सबसे बड़ा बाणासुर था। बाणासुर सदा शिव ही में तन्मय रहने वाला बड़ा शिव भक्त था। वह शोणितपुर का राजा था। उसने इन्द्रादि देवताओं को अपना सेवक बना रखा था। भगवान शंकर के ताण्डव नृत्य के समय बाण ने अपने एक हजार हाथों से विभिन्न वाद्य एक साथ बजाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया और वर में यह मांगा कि—'भगवान शिव स्वयं उसके नगर की रक्षा करें।' तब शिवजी ने भक्त वात्सल्य के कारण उसके नगर का प्रहरी होना स्वीकार कर लिया। बल पौरुष के अहं में चूर होकर एक दिन शिव को प्रणाम करके वह बोला—'भगवन्! आपकी

दी ये एक हजार भुजाएं व्यर्थ ही हैं, क्योंकि मुझे ऐसा कोई वीर नहीं मिलता, जिस पर मैं अपनी भुजाओं का बल दिखा सकूं। एक बार तो बाहों की खुजली मिटाने मैं दिग्गजों के पास गया, किन्तु वे भी बिना युद्ध किए भाग खड़े हुए।' तब शिवजी ने उसके अभिमान को भांप कुपित स्वर में कहा—'मूढ़! जब तेरी ध्वजा टूटकर गिर जाएगी तब मेरे ही समान एक योद्धा से तेरा युद्ध होगा। उस समय तेरा यह घमंड चूर हो जाएगा।' किन्तु बल के दर्प में यह मूर्ख बाणासुर यह सुनकर प्रसन्न हुआ कि उसका युद्ध शिव जैसे योद्धा से भविष्य में होने वाला है और वह उस भावी योद्धा को पराजित कर देने के स्वप्न देखता हुआ उस योद्धा की प्रतीक्षा करने लगा, किन्तु वह तो अपने नाश की प्रतीक्षा कर रहा था।'

'इसी बाणासुर की पुत्री ऊषा ने स्वप्न में स्वयं को अनिरुद्ध के साथ समागम करते देखा। उसने पहले कभी अनिरुद्ध को देखा न था, उसका नाम भी न सुना था, तो भी वह स्वप्न में अनिरुद्ध को देखकर मुग्ध हो गई और उस स्वप्न को दैवी प्रेरणा का चमत्कार मान अनिरुद्ध को उसने अपना पति मान लिया। बाण के मंत्री कुम्भाण्ड की कन्या चित्रलेखा ऊषा की सखी थी। ऊषा की बात सुनकर उसने सिद्ध, गंधर्व, राजा, देवता, दैत्य आदि सभी प्रमुख वीरों के चित्र बनाकर उसे दिखाए, तब उसने अनिरुद्ध का चित्र पहचान कर कहा कि वही उसके सपनों का राजकुमार है। योगिनी चित्रलेखा ने तब रात्रि में योगसिद्धि के प्रभाव से पलंग पर सोए हुए अनिरुद्ध को द्वारका से उठा लिया और ऊषा के साथ उसका समागम कराया। सुन्दरी ऊषा के साथ उसके सुरक्षित अन्तःपुर में विहार करते हुए बहुत दिनों तक अनिरुद्ध स्वयं को भी भूले रहे। तब ऊषा के शरीर पर कुमारीत्व नृष्ट हो जाने के लक्षण देखकर प्रहरियों ने बाण को सूचना दी। बाण ऊषा के कक्ष में आया तो उसने अनिरुद्ध को देखा। उसने अपने सैनिकों को अनिरुद्ध को बंदी बनाने का आदेश दिया, किन्तु अनिरुद्ध ने परिध उठाकर सबको समाप्त कर दिया। अपने समस्त सैनिकों को एक के बाद एक मरते देखकर बाणासुर ने क्रुद्ध होकर उन्हें नागपाश द्वारा बांध लिया।'

'अनिरुद्ध को चार मास से गायब देख सभी घर वाले चिन्ता कर रहे थे, तब नारदजी ने उन्हें सब समाचार सुनाया। तत्पश्चात कृष्ण-बलराम, साम्ब, प्रद्युम्न, सात्यकी आदि ने 12 अक्षौहिणी सेना के साथ शोणितपुर को घेर लिया। तब वर से बाध्य हो भगवान शंकर नन्दी पर आरूढ़ हो कार्तिकेय व अन्य गणों के साथ युद्ध भूमि में पधारे और कृष्ण व बलराम के साथ बड़ा विकट और घमासान युद्ध हुआ। शंकर से कृष्ण, कार्तिकेय से प्रद्युम्न, कुम्भाण्ड व कूपकर्ण से बलराम, बाणासुर के पुत्र से साम्ब और बाणासुर से सात्यकी भिड़ गए। उस समय आकाश में ब्रह्मा आदि देवगण उस विस्मयकारी युद्ध को देखने के लिए आ गए। पिनाक और शाङ्र्ग धनुषों की टंकार से पूरी पृथ्वी

कम्पायमान होने लगी। विभिन्न प्रकार के अस्त्र चले, वायवास्त्र, आग्नेयास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पर्वतास्त्र और ब्रह्मास्त्र आदि के बाद फिर पाशुपतास्त्र से नारायणास्त्र भी टकराए। अन्ततः कृष्ण ने 'जृम्भास्त्र' (जिससे जम्भाई व निद्रा आने लगती है) से शिव को मोहित कर दिया और नगर में प्रविष्ट हो गए। शिवजी के जम्भाई लेते रहने से समस्त बाणासुर सेना छिन्न-भिन्न होने लगी। तब बाणासुर सात्यकी को छोड़ कृष्ण की ओर लपका। बाणासुर ने हजार हाथों से पांच सौ धनुषों द्वारा हजारों बाण एक साथ छोड़े, किन्तु कृष्ण ने बाणों सहित उसके समस्त धनुषों को काट दिया। तब बाण की धर्ममाता कोटरा नामक देवी अपने उपासक पुत्र की रक्षा को नंग-धड़ंग कृष्ण के सामने आ खड़ी हुई। कृष्ण ने उस ओर से दृष्टि फिरा ली, जिससे रथ व धनुषों से हीन हुआ बाणासुर अवसर पाकर पुरी में वापस लौट आया।'

'भगवान शंकर का माहेश्वर ज्वर श्रीकृष्ण के वैष्णव ज्वर से पराजित हो कृष्ण की स्तुति करने लगा, तब कृष्ण ने उस तीन सिर व तीन पैर वाले ज्वर से कहा—'त्रिशिरा! मैं प्रसन्न हूं। तुम निर्भय हो जाओ। मेरे और तुम्हारे संवाद का स्मरण करने वाला तुम्हारे प्रभाव से सुरक्षित रहेगा।' माहेश्वर ज्वर के प्रणाम कर लौट जाने पर बाणासुर विभिन्न हथियारों के साथ फिर आ धमका, तब कृष्ण ने उसकी भुजाओं को एक-एक कर काटना आरम्भ कर दिया। बाण की भुजाएं कटते देख भक्त वत्सल शिव ने कृष्ण की स्तुति की और बाणासुर की चार भुजाएं बचाकर उसे कृष्ण से क्षमा दिलाकर अपना मुख्य पार्षद बना लिया। तब बाणासुर का गर्व भंग हुआ। उसने भी कृष्ण को प्रणाम किया और सहर्ष अपनी पुत्री ऊषा का विवाह अनिरुद्ध के साथ कर दिया। हे राजन्! भगवान कृष्ण और शिव के युद्ध के इस प्रसंग का प्रातः स्मरण करने वाला पराजित नहीं होता।''

शुकदेव जी आगे बोले—''एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभान और गद आदि यदुवंशी घूमने गए। वहां प्यास लगने पर पानी की खोज में उन्होंने एक पर्वताकार गिरगिट को एक सूखे कुएं में पड़ा देखा। उन्होंने उसे निकालने का प्रयास किया परन्तु सफल न हो सके। तब वे कृष्ण को वहां ले आए। कृष्ण ने बाएं हाथ से खेल-खेल में ही उसे निकाल दिया। कृष्ण का स्पर्श होते ही वह एक दिव्य पुरुष में बदल गया। सर्वज्ञानी होने पर भी राजकुमारों की ओर से कृष्ण ने पूछा—'तुम कौन हो? किस कारण तुम्हें गिरगिट होना पड़ा?' तब वह बोला—'मैं महाराज इक्ष्वाकु का पुत्र राजा नृग हूं। मैं बहुत न्यायप्रिय, परोपकारी व दानी था। एक बार किसी दान न लेने वाले ब्राह्मण की गाय मेरी उन गायों में आ मिली, जिन्हें मैं दान देने वाला था। मुझे इस बात का पता न चला। मैंने उसे किसी अन्य ब्राह्मण को दान दे दिया। तब गाय के स्वामी ब्राह्मण ने गाय को पहचान लिया। दान लेने वाला और गाय का वास्तविक

भगवान शंकर से युद्ध करते हुए श्रीकृष्ण और बलराम

स्वामी दोनों ही ब्राह्मण 'यह मेरी है।' कहकर विवाद करने लगे। तब मैं बड़े संकट में पड़ गया। मैंने कहा—'हे महानुभाव! मैं आपको एक लाख गाएं दूंगा, यह गाय मुझे आप लौटा दीजिए। अनजाने में मैंने ऐसी गाय दान कर दी, जिस पर मेरा कोई अधिकार नहीं था।' तब दोनों ही ब्राह्मण यह कहकर कि 'हम अब यह गाय नहीं लेंगे,' चले गए। मैं धर्म संकट में फंसा रह गया। मेरे मरने पर यमदूत मुझे यमलोक ले गए तब यमराज ने पूछा कि मैं पहले अपने पुण्यों का फल भोगना चाहूंगा या पाप का? मैंने कहा—'पाप!' तब यमराज ने कहा—'गिर जाओ!' और मैं यहां गिरगिट बनकर आ गिरा। परन्तु दान व भक्ति के प्रभाव से मेरी पूर्वजन्म की स्मृति बनी रही। आपके स्पर्श से अब मेरी यह पापयोनि कट गई और अब मैं आपकी आज्ञा से पुण्यों के फल भोगने देवलोक जा रहा हूं।'

'तब नृग के चले जाने पर कृष्ण ने अपने पुत्रों से कहा—'अग्नि के समान तेजस्वी व्यक्ति भी ब्राह्मण का धन नहीं पचा सकते। यदि कोई अनाधिकारी उसे पचा लेना चाहता है तो वह धन हलाहल से अधिक विषाक्त हो जाता है, अतः ब्राह्मण का सदैव आदर करना चाहिए। आग जल से शान्त हो जाती है, किन्तु ब्राह्मण की क्रोधाग्नि सम्पूर्ण कुल सहित व्यक्ति का नाश करती है।' इस प्रकार पुत्रों को समझाते हुए वे द्वारका लौट आए।'

'हे राजन्! फिर बलराम जी ने ब्रज जाकर सबको दर्शन देकर आनन्दित किया, किन्तु कृष्ण दर्शन की प्यास और भड़का दी। बलराम ने तब कृष्ण का संदेश सुनाकर गोपियों को सांत्वना दी। रात को जब वे यमुना तट पर गोपियों से अपने चरित्र का गुणगान सुन रहे थे और वरुणदेव की पुत्री वारुणी ने सारा वन सुगन्धित कर मधुधारा बलराम तक पहुंचाई तब वारुणी मधु के पान से मत्त होकर उन्होंने यमुना को जलक्रीड़ा के लिए पुकारा। यमुना ने उसे एक मदमत्त का प्रलाप समझ उनके आदेश की अवहेलना कर दी। तब बलराम जी ने उसके सौ टुकड़े कर देने के लिए क्रोधित हो अपने हल की नोक से खींचा। यमुना भयभीत हो तब उनके चरणों में आ गिरी और क्षमा मांगी। तब बलराम ने यमुना को क्षमा कर जलक्रीड़ा की। जब वे क्रीड़ा कर यमुना से निकले तो उन्हें लक्ष्मीजी ने नीलाम्बर, सुन्दर हार व आभूषण भेंट किए। हे परीक्षित् यमुना आज भी बलराम के हल से खींचे मार्ग पर बहती हैं।'

'बलराम जिन दिनों ब्रज में थे, उन्हीं दिनों में करुषदेश के अज्ञानी राजा पौण्ड्र ने कृष्ण के पास दूत से यह संदेश भिजवाया कि—वासुदेव तो पौण्ड्र है। कृष्ण ने यूं ही अपना नाम वासुदेव रख लिया है। अतः वह क्षमा मांगकर पौण्ड्र की शरण में आ जाएं या उससे युद्ध करें। पौण्ड्र उन दिनों काशीराज के यहां ठहरा हुआ था, अतः कृष्ण ने काशी पर चढ़ाई की। महारथी पौण्ड्र दो अक्षौहिणी सेना के साथ और

उसका मित्र काशीराज तीन अक्षौहिणी सेना के साथ मुकाबले में उतरे, किन्तु वे भला कृष्ण के सम्मुख क्या टिकते? कृष्ण ने दोनों को ससैन्य नष्ट कर दिया तो भी कंस और शिशुपाल की भांति सारा समय बैर के कारण कृष्ण ही का चिन्तन करने वाला पौण्ड्र उन्हीं के हाथों मरकर भगवान के सारूप्य को प्राप्त हुआ।'

'हे राजन्! काशीराज के पुत्र सुदक्षिण ने पिता का बदला लेने को तप द्वारा शिव को प्रसन्न कर अपने पिता के शत्रु के नाश का उपाय पूछा। शिव ने कहा—'तुम ब्राह्मणों के साथ दक्षिणाग्नि की यज्ञ में अभिचारविधि से आराधना करो—उससे प्रकट हुए अग्निप्रमथ गणों पर ब्राह्मणों के अभक्त पर प्रयोग करने से संकल्प सिद्धि होगी।' तब सुदक्षिण कृष्ण के लिए यज्ञ द्वारा अभिचार करने लगा। तब यज्ञ कुण्ड से अति भीषण अग्नि मूर्तिमान रूप से प्रकट होकर बहुत से भूतों के साथ सशस्त्र व सक्रोध द्वारका आ गया। द्वारकावासी नगरी भस्म हो जाने के भय से कृष्ण की शरण में गए। कृष्ण समझ गए कि शिव प्रभाव से सुदक्षिण द्वारा उत्पन्न माहेश्वरी कृत्या द्वारका आ गई है। तब कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से कृत्या को कुचल दिया और उसी को कुण्ठित कर फेर दिया—जिससे कृत्या वापस पलट गई और अपने पैदा करने वाले ब्राह्मणों व सुदक्षिण को ही भस्म कर दिया। कृत्या का पीछा करता हुआ सुदर्शन चक्र भी वहां आया और समस्त काशी को भस्म कर दिया। कृष्ण के इस चरित्र को सुनने या पढ़ने वाला (एकाग्रतापूर्वक) अपने समस्त पापों से छूट जाता है।"

तब परीक्षित ने कहा—"हे महामुने! आपने अभी बलरामजी की एक विलक्षण लीला का वर्णन किया था। शेषनाग के अवतार, हल और मूसलधारी संकर्षण बलराम जी की अन्य लीलाएं भी हमसे कहें। हम बलरामजी के अद्‌भुत कर्मों को भी सुनना चाहते हैं। कृपापूर्वक हमारी यह इच्छा भी पूर्ण करें।"

शुकदेव जी बोले—"भगवान अनन्त संकर्षण वासुदेव ही की शक्ति का दूसरा आयाम हैं। मैं तुम्हें उनकी कुछ लीलाएं व अद्‌भुत कर्म सुनाता हूं। सुग्रीव का मंत्री, मैन्द का भाई और भौमासुर का मित्र—महापराक्रमी और बलशाली द्विविद नामक एक वानर था। श्रीकृष्ण द्वारा भौम असुर के वध का समाचार सुन व प्रतिशोध भावना से राष्ट्र विप्लव करने को उतारू हो गया। बस्तियों में आग लगाना, विशाल पर्वतों को फेंककर ग्रामों को नष्ट कर देना, सागर जल को उद्वेलित कर निकटस्थ नगरों में बाढ़ ले आना आदि उपद्रव करता हुआ वह एक दिन सुमधुर संगीत सुनकर रैवतक पर्वत पर आ गया। वहां बलराम स्त्रियों के साथ संगीत और मधुपान का आनन्द ले रहे थे। द्विविद ने वहां बलराम को देखा तो उनकी स्त्रियों को डराने व परेशान करने लगा। बलराम ने तब उसे भगाने के लिए एक पत्थर खींच मारा। द्विविद ने स्वयं को बचा लिया और बलरामजी की अवहेलना करते हुए मधुकलश उठाकर पटक

दिया। स्त्रियों के वस्त्र फाड़ डाले। बलराम ने कुपित होकर अपना मूसल उठाया ही था कि दस हजार हाथियों के बल वाले उस वानर ने एक शालवृक्ष उखाड़कर वेगपूर्वक बलराम के सिर पर दे मारा। बलराम उस प्रहार को झेल गए और सुनन्द नामक अपने मूसल से द्विविद का मस्तक फाड़ डाला फिर तो वहां अत्यंत भयंकर युद्ध छिड़ गया। द्विविद चट्टानों और वृक्षों से बलराम जी पर प्रहार करता और बलराम अपने हल मूसल से उस पर। अन्त में द्विविद ने बलराम की छाती पर मुक्का मारा। मुक्के की चोट खाकर कुपित हुए बलराम ने अपना हल मूसल एक तरफ रखा और दोनों हाथों से उसकी हंसली पर प्रहार कर उस वानर को मार डाला। तब देवताओं और साधुओं ने बलराम की बड़ी प्रशंसा की और बलराम स्त्रियों सहित द्वारका लौटे।'

'एक बार अकेले ही बहुत से वीरों को पराजित कर देने वाले साम्ब (कृष्ण व जाम्बवती का पुत्र) दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा को स्वयंवर से हर लाया। तब कुपित हुए कौरवों ने कर्ण, शल, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु, दुर्योधन आदि छह महारथियों ने उस अकेले को घेर लिया। साम्ब ने धनुष उठाया और रणक्षेत्र में डट गया। बहुत क्षति उठाकर, अत्यंत कठिनाई से कर्ण के नेतृत्व में कौरव साम्ब को बन्दी बना पाए, क्योंकि साम्ब का रथ, घोड़े व धनुष नष्ट कर दिया गया था।'

'नारद द्वारा यदुवंशियों को यह समाचार मिला तो वे उग्रसेन की आज्ञा से कौरवों पर चढ़ाई की तैयारी करने लगे, किन्तु बलराम ने यह उचित नहीं समझा क्योंकि दुर्योधन उनका प्रिय शिष्य था और कौरवों से यदुवों की रिश्तेदारी थी। अतः उन्होंने कहा कि वे स्वयं अकेले जाकर मामले को बातचीत से ही सुलझा लेंगे, परन्तु अभिमानी दुर्योधन ने बलरामजी की बात न मानी और उनका अपमान किया। अन्य कुरुओं ने भी कठोर सम्भाषण किया। तब शेषावतार बलराम का क्रोध भड़क उठा। कौरवों का समूल नाश करने के लिए और सबको डुबोकर मार डालने के लिए उन्होंने पूरे हस्तिनापुर को ही हल की नोक से उखाड़ लिया और गंगा की ओर खींचने लगे। तब कौरवों ने घबराकर क्षमा याचना की और साम्ब को लक्ष्मणा सहित लौटा दिया। कौरवों के स्तुति किए जाने पर शांत हो बलराम ने उन्हें अभय दिया और दुल्हन व दहेज के साथ साम्ब को लेकर द्वारका लौटे। हे राजन्! हस्तिनापुर आज भी इसी कारण दक्षिण की ओर से उठा हुआ और गंगा की तरफ से दबा हुआ है।'

'हे राजन्! एक बार श्रीकृष्ण की गृहचर्या देखने और यह जानने की सोलह हजार से अधिक रानियों के साथ वे कैसे अपना कर्तव्य निभाते हैं—नारदजी द्वारका पहुंचे। वहां कृष्ण के रनिवास में सोलह हजार से अधिक महल बने थे, जो सुन्दर उपवन, वैभव, सम्पन्नता, कलात्मकता व सौंदर्य से परिपूर्ण थे। नारदजी रुक्मणी के महल में गए तो कृष्ण ने उनका स्वागत कर उनकी कुशलक्षेम पूछी। ब्राह्मण होने के

कारण उनका सत्कार किया। फिर वे हर रानी के महल में बारी-बारी से गए किन्तु प्रत्येक रानी के महल में उन्होंने श्रीकृष्ण को उपस्थित पाया। उनकी योगमाया का यह चमत्कार देखकर नारद स्तब्ध रह गए। कृष्ण एक ही समय में अपनी सब रानियों के साथ अलग-अलग उपस्थित थे और अपना कर्तव्य पूर्ण कर रहे थे, जबकि हर रानी यही समझ रही थी कि कृष्ण केवल उसी के महल में ठहरे हुए हैं। तब नारद ने नतमस्तक हो कृष्ण को प्रणाम किया। कृष्ण बोले—'हे नारद! मैं ही धर्म हूं। मैं ही धर्म का उपदेश करने वाला हूं, मैं ही धर्म का पालन करने वाला तथा अनुमोदनकर्ता हूं। धर्म शिक्षा के उपदेश के लिए मैं विभिन्न धर्मों का आचरण करता हूं। मेरी योगमाया से मोहित न हो जाना।' तब नारद कृतार्थ होकर लौट आए।

'कृष्ण सदा ब्रह्ममुहूर्त में उठकर दैनिक कार्यों से निवृत्त होते तथा सन्ध्यावन्दन के बाद मौन गायत्री का जप करते थे। सूर्योदय के समय सूर्योपासना कर पितरों को तर्पण करते फिर दान-पुण्य आदि करते और फिर सुधर्मा नामक सभा में बैठकर राज्यकाज संभालते, सद्‌चर्चा करते, कला का आनन्द लेते थे। एक बार जब वे सभा में बैठे थे तो एक व्यक्ति ने आकर जरासंध के अत्याचारों की उनसे शिकायत की। वह जरासंध द्वारा बंदी बनाए गए राजाओं का प्रतिनिधि था। तब नारद भी वहां आ गए। कृष्ण के पूछने पर वे बोले—'आप अन्तर्यामी होकर भी लीलावश मुझसे पूछते हैं। तो सुनिए—पाण्डव राजसूय यज्ञ के लिए आपका अनुमोदन चाहते हैं। अतः आप चलकर पहले उनका यज्ञ कराइए।' यदुवंशी पहले जरासंध को परास्त कर दण्डित करना चाहते थे, उन्हें नारद की बात पसंद न आई, किन्तु कृष्ण ने उद्धव का परामर्श लेकर वही किया जो नारद ने कहा, क्योंकि राजसूययज्ञ में दसों दिशाओं को जीतना आवश्यक है, सो जरासंध को भी जीतना पड़ेगा। इस प्रकार दोनों ही कार्य हो जाते।'

'उद्धव ने परामर्श दिया कि जरासंध वीर और ब्राह्मण भक्त है। उस पर 10,000 हाथियों का बल उसे प्राप्त है। अतः युद्ध में उसे महाबली भीमसेन ही ललकार सकते हैं। कृष्ण की उपस्थिति से मनोबल पाकर वे अवश्य जरासंध को जीत भी लेंगे। अतः भीम ब्राह्मण के वेश में जरासंध से युद्ध की भिक्षा मांगें, क्योंकि जरासंध याचक ब्राह्मणों को कभी निराश नहीं लौटाता। जरासंध वध के बाद दसों दिशाओं को जीतने में पाण्डवों को कठिनाई नहीं होनी चाहिए। तब श्रीकृष्ण पाण्डवों के पास चले गए।'

'हे राजन्! तब कृष्ण की सहमति से युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया और पाण्डवों ने अपने बल पराक्रम से दिग्विजय की। तदनन्तर जरासंध को जीतने के लिए भीम, कृष्ण और अर्जुन पूर्व निर्धारित योजनानुसार ब्राह्मण वेश में जरासंध के पास गए। जरासंध ने उनके शरीर लक्षणों से पहचान लिया कि वे क्षत्रिय हैं, तो भी ब्राह्मण वेश का सम्मान कर उनसे मांगने को कहा। कृष्ण भी ताड़ गए कि जरासंध असलियत

भांप गया है, अतः उन्होंने स्वयं ही कहा—'ये अर्जुन और भीम हैं और मैं कृष्ण। तुमसे द्वन्द्व युद्ध की भिक्षा मांगने आए हैं। हम तीनों में से किसी एक के साथ युद्ध करो।' तब जरासंध हंसकर बोला—'अरे कृष्ण! तुम तो वैसे ही रण छोड़कर भाग जाते हो और अर्जुन तो अभी छोटा है, कुछ बलवान भी अधिक नहीं। मेरी टक्कर में खड़े होने लायक यह भीम ही है, मैं इससे युद्ध करूंगा।''

शुकदेव जी आगे बोले—'तब भीम और जरासंध में भयंकर गदा युद्ध हुआ। दो मतवाले हाथियों की भांति दोनों आपस में उलझ गए, किन्तु उनके शरीरों से टकरा-टकरा कर उनकी गदाएं चूर-चूर हो गईं। तब वे मुष्टि युद्ध करने लगे। इस प्रकार रात्रि में विश्राम करते हुए 27 दिन उनका युद्ध चला, किन्तु हार-जीत का निर्णय न हो पाया। 28वें दिन भीम ने कृष्ण से कहा—'मैं जरासंध को जीत नहीं सकता।' तब जरासंध के जन्म-मृत्यु के रहस्य को जानने वाले कृष्ण ने एक वृक्ष की डाली को बीच से चीरकर जरासंध के मृत्यु के उपाय को इशारे से भीम को बताया। तब भीम ने जरासंध के एक पैर पर पैर रखकर दूसरे पैर को हाथों से पकड़ उसे गुदा से सिर तक चीरकर दो भागों में विभक्त कर दिया। इस प्रकार जरासंध को मारकर उसके पुत्र सहदेव का राज्याभिषेक कर जरासंध के बन्दी राजाओं को मुक्त कराया गया। उन सबको विदा कर और उनसे आराधित हो कृष्ण अर्जुन आदि के साथ इन्द्रप्रस्थ लौटे।'

'हे परीक्षित! इस प्रकार दिग्विजय हो जाने पर यज्ञ योग्य समय आया तो कृष्ण की अनुमति से ऋषियों व आचार्यों के रूप में युधिष्ठिर ने—व्यास, भारद्वाज, वशिष्ठ, च्यवन, विश्वामित्र, कण्व, गौतम, मैत्रेय, सुमन्तु, असित, जैमिनि, क्रतु, सुमति, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, कश्यप, कवष, त्रित, वामदेव, पैल, अथर्वा, धौम्य, आसुरि, मधुछन्दा, वीरसेन, वीतिहोत्र, अकृतव्रण, शुक्राचार्य तथा परशुरामजी जैसे वेदवाही ऋषियों को वरण किया। इनके अतिरिक्त भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र एवं दुर्योधन आदि को, समस्त राजाओं व प्रजा को आमंत्रित किया। तब प्रश्न हुआ कि अग्र पूजा किसकी की जाए? सहदेव ने तब कृष्ण का नाम सुझाया। सभा में उपस्थित समस्त आदरणीय व आमंत्रित जनों ने एक स्वर में इसका समर्थन किया किन्तु शिशुपाल बोला—'इतने आदरणीय और वरिष्ठ जनों के होते हुए भी एक बालक (सहदेव) के कहने में आकर सभी कृष्ण की अग्रपूजा के लिए कैसे मान गए? यह ग्वाला तो किसी भी प्रकार से इसके उपयुक्त नहीं है। यह चोर, अपहरणकर्ता और कायर है, इसकी पूजा क्यों?' तब जो कृष्ण की निन्दा नहीं सुन सकते थे, वे बुद्धिमानजन कानों पर हाथ रखकर वहां से चले गए। कृष्ण ने उसकी बक-बक पर ध्यान न दिया, किन्तु कृष्ण के पक्ष में बहुत से शिशुपाल को दण्डित करने के लिए हथियार लेकर खड़े हो गए। तब

शिशुपाल ने भी तलवार खींच ली। कृष्ण ने समझा-बुझाकर अपने पक्षपाती राजाओं को शांत किया। फिर भी शिशुपाल कृष्ण को अपशब्द कहता ही रहा, तब कृष्ण ने चक्र से उसका शीश काट लिया। जैसा कि पहले बताया था शिशुपाल के मरते ही उसके शरीर से निकली ज्योति कृष्ण में प्रविष्ट हो गई, क्योंकि शिशुपाल का उद्धार हो गया था। फिर यज्ञ पूर्ण किया गया। (कहा जाता है कि कृष्ण ने शिशुपाल की माता को उसके 100 अपराध क्षमा करने का वचन दिया था, अतः सौ गालियां पूरी होने तक उन्होंने शिशुपाल का वध नहीं किया था।) जरासंध व शिशुपाल वध एवं यज्ञानुष्ठान का वृत्तांत पढ़ने या सुनने वाले अपने समस्त पापों से छूट जाते हैं।'

'युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ सम्पन्न होने से सब प्रसन्न हुए, किन्तु दुर्योधन को बड़ी पीड़ा हुई। (जलन के कारण) सबको विदा करने के बाद जब युधिष्ठिर मयदानव की बनाई सभा में सिंहासन पर बैठे और वन्दीजन उनकी स्तुति करने लगे तब दुर्योधन अपने भाइयों सहित वहां आया और सभा की माया से मोहित होकर जल समझकर स्थल में धोती ऊपर करके चलने लगा, फिर स्थल समझकर जल में गिर गया। तब द्रौपदी आदि स्त्रियां हंसने लगीं। दुर्योधन द्रोपदी के प्रति कुछ कामासक्ति रखता था अतः उसका हंसना दुर्योधन को सबसे बुरा लगा। इस प्रकार अपमानित होकर हृदय में फांस लिए वह वापस लौट आया। (यहीं से) महाभारत के युद्ध की वास्तविक आधारशिला रखी गई।'

'इधर शिशुपाल का सखा और रुक्मणी के स्वयंवर के अवसर पर यदुवंशियों से पराजित हुआ शाल्व पृथ्वी से यादवों को मिटाने की प्रतिज्ञा कर चुका था। उसने प्रतिदिन केवल एक मुट्ठी राख खाकर, एक वर्ष के तप से शिव को प्रसन्न किया और उनसे मयदानव का बनाया हुआ लौह निर्मित सौभ नामक विमान प्राप्त किया, जो स्वचालित, इच्छागामी, विचित्र और नगर जितना विशाल था। उस विमान पर बैठ, बहुत बड़ी सेना के साथ उसने द्वारका पर चढ़ाई कर दी। तब प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकी, कृतवर्मा, गद, सारण व चारुदेष्ण आदि यदुवीरों ने उसका सामना किया, किन्तु विभिन्न रूपों में दिखने वाला यह मायावी विमान शाल्व की बहुत बड़ी सुरक्षा सिद्ध हुआ। बड़ी कठिनाई से प्रद्युम्न शाल्व को मूर्छित कर पाए। तब शाल्व के मन्त्री महाबली द्युमान् के गदा प्रहार से प्रद्युम्न की छाती फट-सी गई और उनके मूर्छित हो जाने पर सारथि उनके रथ को हटा ले गया। दो घड़ी बाद प्रद्युम्न को चेत हुआ तो उसने रणक्षेत्र से रथ लौटा लेने पर सारथि को डांटा। सारथि ने कहा कि उसने अपने धर्म का ही पालन किया है तथापि प्रद्युम्न के कहने पर वह उन्हें फिर से द्युमान् के सामने ले गया। तब प्रद्युम्न ने अपने बाणों से उसे मार डाला। अन्य यदुवंशी भी शाल्व की सेना पर पिले पड़े थे। 27 दिन तक युद्ध चलता रहा।'

‘उधर अपशकुन देख कृष्ण बलराम सहित इन्द्रप्रस्थ से लौटे और यदुवंशियों को संकट में पाया। तब बलराम को नगर की सुरक्षा का भार सौंपकर कृष्ण अपने सारथि दारुक के साथ शाल्व के सामने आ डटे। तब मायावी शाल्व द्वारा चलाई शक्ति को काट कर कृष्ण ने शाल्व को 16 बाण मारे। उसका विमान भी कई बाणों से छलनी कर दिया। तब शाल्व ने भी बाण मारकर कृष्ण के बाएं हाथ से धनुष गिरा दिया। तब कृष्ण के गदा प्रहार से वह खून उगलता हुआ अन्तर्धान हो गया और शाल्व की माया से एकव्यक्ति ने आकर शाल्व द्वारा कृष्ण के पिता को बन्दी बना लेने की झूठी सूचना दी। कृष्ण तब मनुष्यों की-सी लीला करते हुए उदास हो गए। तब शाल्व माया रचित वसुदेव को लेकर रणक्षेत्र में प्रकट हुआ और उसका सिर काटकर विमान में जा बैठा। दो घड़ी के लिए पिता मोह के कारण साधारण मनुष्य-सी लीला करते हुए कृष्ण शोक में डूब गए। फिर चेत हुआ तो कृष्ण ने क्रोधित होकर शाल्व के विमान, कवच तथा मणि (सिर की) व धनुष को छिन्न-भिन्न कर दिया तथा भाले से उसका हाथ काट दिया। अन्ततः उन्होंने चक्र द्वारा शाल्व का सिर काट दिया और गदा प्रहार से उसका विमान चूर-चूर कर दिया।’

‘शाल्व के वध से प्रसन्न देवगण दुदुम्भियां बजाने लगे। तभी दन्तवक्त्र भी अपने मित्र शिशुपाल का बदला लेने अत्यंत क्रोध में वहां आ पहुंचा। वह क्रोधावेश में अकेला और पैदल ही आ गया था। उसके हाथ में बड़ी भयंकर गदा थी तथा बल के कारण पदाघातों से पृथ्वी दहल रही थी। तब कृष्ण भी अपनी गदा लेकर रथ से कूद पड़े और पैदल ही दन्तवक्त्र से जा भिड़े। दन्तवक्त्र ने जी-जान से भयंकर युद्ध किया, किन्तु अन्त में कृष्ण की कौमोदकी गदा का प्रहार उसकी छाती को फोड़ गया और वह रक्तवमन करता हुआ मरा। दन्तवक्त्र के शरीर से भी एक ज्योति निकलकर कृष्ण के शरीर में समा गई (जैसा कि बता आए हैं कि भगवान के पार्षद जय-विजय ने ही शापग्रस्त होकर हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष तथा रावण और कुम्भकर्ण का जन्म लिया था और इस जन्म में वही शिशुपाल और दन्तवक्त्र थे, अतः अब शाप मोचित हो जाने से उन्हें विष्णुजी के धाम में वापस जाना था)।’

‘हे राजन्! दन्तवक्त्र की मृत्यु के समाचार से क्रुद्ध हुआ उसका भाई विदूरथ भी रणक्षेत्र में आ गया था, किन्तु कृष्ण के सुदर्शन चक्र ने उसका भी सिर काट लिया। तब श्री कृष्ण ने युद्ध जयकर द्वारका में प्रवेश किया था। इस प्रकार कृष्ण व बलराम की बहुत-सी लीलाएं हैं, जो कभी दिव्यता को और कभी मनुष्यता को दर्शाती हैं, क्योंकि मनुष्य योनि में अवतार लेने से कुछ मानवीय गुणों व दुर्गुणों का पालन करना भी उनकी लीला का एक अंग ही है।’

‘हे परीक्षित! जब महाभारत के युद्ध की भूमिका बन रही थी और कौरव व

पाण्डव युद्ध की तैयारी कर रहे थे, तब दोनों ही पक्षों के रिश्तेदारी के कारण उन्हें युद्ध में किसी एक का पक्ष लेना पसन्द न था, अतः बलराम जी तीर्थ यात्रा के बहाने द्वारका से चले गए (क्योंकि द्वारका में रहते तो कृष्ण की भांति उनको भी युद्ध में सम्मलित होना पड़ता)। तब कई तीर्थों का भ्रमण कर वे नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुंचे। वहां एक दीर्घकालिक सत्संग सत्र चल रहा था। ऋषियों ने उनका स्वागत किया। तब उन्होंने महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास के शिष्य रोमहर्षणजी को व्यास गद्दी पर बैठे देखा। रोमहर्षण सूत जाति के थे, तिस पर व्यास गद्दी पर आसीन थे और उस पर बलराम के स्वागत को खड़े न हुए। अतः बलरामजी को क्रोध आ गया। तीर्थ यात्रा पर होने के कारण वे हिंसा और वध से अलग थे तथापि क्रोधित हो उन्होंने कुश की नोक के प्रहार से ही उन्हें मार डाला। सूतजी के वध पर ऋषि 'हाय-हाय' करने लगे और बलरामजी से बोले—'प्रभो! यह धर्म संगत नहीं हुआ। सूतजी को हमने ही व्यास गद्दी पर बैठाया था और सत्र सुचारु रूप से चलाने के लिए उन्हें कष्ट रहित आयु भी दी थी। ऐसे में आपने उनकी हत्या कर 'ब्रह्महत्या' के समान अपराध किया है। आप सर्व ईश्वर हैं, वेद आप पर शासन नहीं कर सकते, फिर भी यदि आप इस अपराध का प्रायश्चित करेंगे तो समाज के सामने एक आदर्श स्थापित होगा। लोगों को एक शिक्षा मिलेगी, अतः आपको इसका प्रायश्चित करना चाहिए।

'तब बलराम बोले—'मैं ऐसा ही करूंगा, जो प्रथम श्रेणी का प्रायश्चित हो वह मुझे बताइए और आपका सत्र समाप्त होने तक आप इस सूत को आयु, बल, इन्द्रिय शक्ति आदि जो कुछ देना चाहते हैं वह भी कहिए। मैं अपने योगबल से सब कुछ सम्पन्न कर दूंगा।' तब ऋषि बोले—'आप ऐसा उपाय करें, जिससे आपका शस्त्र पराक्रम और इनकी मृत्यु भी व्यर्थ न हो और हमने इन्हें जो वरदान दिया है वह भी सत्य हो जाए। इस तरह आपकी व हमारी प्रतिष्ठा रह जाएगी।'

'हे राजन्! तब बलराम बोले—'वेदों के अनुसार आत्मा ही पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है। अतः रोमहर्षण का पुत्र इनके स्थान पर आपको पुराण कथा सुनाएगा। उसे मैं अपनी शक्ति से दीर्घायु, इन्द्रिय शक्ति व बल देता हूं। प्रायश्चित के रूप में जो मुझे करना है, अब आप वह मुझसे कहिए।' तब उन ऋषियों ने कहा—'इल्वलपुत्र बल्वल नामक भयंकर दानव प्रत्येक पर्व पर हमारे सत्र को—मांस, रक्त, विष्ठा, मूत्र, पीब, शराब आदि की वर्षा से दूषित कर व्यवधान डालता है, अतः उसका आप वध कर दें, यही हमारी बहुत बड़ी सेवा होगी। इसके बाद एकाग्रचित होकर बारह महीनों तक सभी तीर्थों में स्नान करते हुए भारत वर्ष की परिक्रमा करने से आपके अपराध की शुद्धि हो जाएगी। यही आपका प्रायश्चित है।'

'पर्व के दिन बल्वल आंधी, पीब व धूल की वर्षा के साथ स्वयं त्रिशूल लिए प्रकट

हुआ। तब बलराम ने अपने हल व मूसल का स्मरण किया, वे दोनों वहां आ गए। बलरामजी ने हल के अग्रभाग से बल्वल को आकाश से नीचे खींच लिया और अपना सुनन्द नामक मूसल उसके सिर में दे मारा। वह गेरु से लाल हो गए काले पहाड़ की भांति भूमि पर आ गिरा। तब ऋषियों ने बलराम की स्तुति कर आशीष दिए और दिव्य वस्त्र व आभूषणों के साथ कभी न मुरझाने वाली वैजयन्ति के फूलों की माला दी। बलराम तब कौशिकी नदी पर स्नान करके तीर्थ यात्रा को चले गए। जब वे सब तीर्थों से होते हुए प्रभास क्षेत्र पहुंचे तब ब्राह्मणों से यह सुनकर कि कौरव पांडवों के युद्ध में अधिकांश क्षत्रियों का संहार हो गया, उन्हें पृथ्वी का बहुत-सा भार उतर गया महसूस हुआ। जब दुर्योधन और भीम गदा युद्ध कर रहे थे, तब बलराम वहां युद्ध रोकने के उद्देश्य से पहुंच गए। कृष्ण व पांडवों ने उन्हें प्रणाम किया फिर चुपचाप खड़े हो गए कि जाने बलराम क्या कहेंगे? बलराम ने पल भर पैतरे बदल-बदलकर गदा युद्ध करते दोनों योद्धाओं की युद्धकला का रस लिया फिर बोले—'भीम तुम बल में श्रेष्ठ हो। दुर्योधन तुम गदा संचालन में प्रवीण हो, अतः तुम्हारे बीच हार-जीत का निर्णय होना कठिन है। तुम यह व्यर्थ का युद्ध बन्द कर दो। यह परिणामहीन युद्ध होगा। अतः इसका कुछ लाभ नहीं, किन्तु वैरभाव बढ़ जाने से दोनों ने बलराम की बात न मानी और भिड़े रहे। तब बलराम उनके प्रारब्ध को ही दोषी मानते हुए वापस द्वारका लौट आए। यहां उग्रसेन आदि ने उनका स्वागत किया।'

'फिर बलरामजी ने नैमिषारण्य जाकर ऋषियों के निर्देशन में बड़े-बड़े यज्ञ किए। ऋषियों को तत्व ज्ञान का उपदेश दिया और अपनी पत्नी रैवती के साथ यज्ञान्त स्नान करके वापस लौटे। बलरामजी सर्वव्यापक, अनन्त, यज्ञों के शरीर तथा अद्‌भुतकर्मा हैं। उनके चरित्रों व लीलाओं का सायं-प्रातः स्मरण करने वाला भगवान का अत्यंत प्रिय हो जाता है।''

तब परीक्षित बोले—''प्रभो! अन्य रसों को दर्शाने वाली भी कुछ लीलाएं जो भगवान कृष्ण ने की हों, वह हमसे कहिए।'' तब शुकदेव ने उन्हें सुदामा व कृष्ण की मैत्री की कथा सुनाई। किस प्रकार गुरु संदीपन के आश्रम में सुदामाजी से उनकी मित्रता हो गई थी और किस प्रकार पड़ोसी से मांगकर कृष्ण को भेंट देने के लिए सुदामा चिउड़े लेकर द्वारका आए थे तथा भगवान कृष्ण ने प्रेमपूर्वक उन चिउड़ों को ग्रहण करके बदले में उनको ऐश्वर्य व सम्पन्नता से मालामाल कर मित्र का दायित्व निभाया था। कृष्ण का यह चरित्र भी कर्मबन्धन से मुक्त कराकर भक्ति प्रदान करने वाला है।' सूत जी ने आगे कहा—''इसी प्रकार शुकदेवजी ने परीक्षित को कृष्ण की गोप-गोपियों से हुई भेंट का प्रसंग भी सुनाया, जो इस प्रकार है—

'समस्त यदुवंशी जब अपने पापों के नाश के लिए कुरुक्षेत्र गए थे, तब कृष्ण

दर्शन की इच्छा से गोप-गोपियां भी वहां आए। तब कृष्ण के दर्शन कर उनके प्राणों में संचार हुआ। गोपियों ने नेत्रों के मार्ग से कृष्ण को हृदय में ले जाकर आलिंगन किया। तब कृष्ण ने कहा कि—'शत्रुओं के विनाश में उलझे रहने के कारण उन्हें उन सबसे दूर रहना पड़ा, किन्तु हृदय से वे उन्हीं के साथ थे। इस प्रकार मधुर बातों से कृष्ण ने सबको सांत्वना दी, तब गोपियों ने उनसे यही वर मांगा कि गृहस्थी के काम करते हुए भी कृष्ण के चरण कमलों का स्मरण उनके हृदय में सदा बनी रहे।' फिर शुकदेव जी ने द्रौपदी के कृष्ण की पटरानियों से हुए वार्तालाप को भी कहा, जिसमें रुक्मणी ने उनसे कृष्ण की पाणिग्रहण सम्बन्धित प्रश्न किए थे। सोलह हजार रानियों का प्रतिनिधित्व करने वाली रोहिणी से भी द्रोपदी ने ऐसे ही प्रश्न किए और सबने कृष्ण की भक्तिमय उत्तर दिए। फिर वसुदेव के यज्ञोत्सव आदि का वर्णन करते हुए शुकदेवजी ने कृष्ण द्वारा वसुदेवजी को किए गए ब्रह्मज्ञान के उपदेश का भी वर्णन किया जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—'संसार में सभी को ब्रह्मरूप समझना चाहिए, क्योंकि आत्मा तो एक ही है, परन्तु वह अपने में ही गुणों की सृष्टि कर लेता है और गुणों के द्वारा बनाए हुए पंचमहाभूतों में एक होने पर भी अनेक, स्वयं प्रकाश होने पर भी दृश्य, अपना स्वरूप होने पर भी अपने से भिन्न, नित्य होने पर भी अनित्य व निर्गुण होने पर भी सगुण प्रतीत होता है। उपाधिभेद से ही आत्मा में नानात्व की प्रतीति होती है। अतः जो मैं हूं वही सब हैं। यही एक मात्र सत्य है। मुझसे पृथक कुछ भी नहीं है। फिर कृष्ण देवकी से मिले।"

शुकदेव जी ने कहा—"हे परीक्षित! ममता से विवश होकर देवकी ने कृष्ण से कहा—'पुत्र! तुम तो योगेश्वर हो। अनेक लीलाओं द्वारा स्वयं को सर्वसमर्थ ईश्वर सिद्ध कर चुके हो। अतः आज अपनी माता की अभिलाषा भी पूर्ण करो। कंस द्वारा मार दिए गए मेरे छह पुत्रों को मुझे नेत्र भर दिखा दो।' तब कृष्ण बलराम सहित सुतल में गए वहीं दैत्यराज बलि ने उनकी स्तुति कर स्वागत किया। तब कृष्ण बोले—'स्वायम्भुव मन्वन्तर में प्रजापति मरीचि की पत्नी ऊर्णा के 6 पुत्र हुए थे। वे सभी देवता थे। ब्रह्माजी के—अपनी पुत्री (सरस्वती) से समागम की उत्सुकता का समाचार सुनकर वे छहों हंसने लगे तब ब्रह्मा ने क्रुद्ध हो उन्हें असुर योनि में उत्पन्न होने का शाप दिया था। अतः वे हिरण्यकशिपु के पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए थे। योगमाया ने उन्हें वहां से माता देवकी के गर्भ में स्थापित किया था, जिन्हें उत्पन्न होते ही कंस ने मार डाला था। देवकी मां उनके लिए आतुर हैं। वे अब तुम्हारे पास हैं। अतः हम उन्हें लेने आए हैं। इसके बाद वे शाप मुक्त हो सद्गति को प्राप्त होंगे।' तब बलि ने कृष्ण को छह बालक सहर्ष लौटा दिए और कृष्ण उन्हें देवकी के पास ले आए। देवकी ने उन्हें बहुत प्रेम किया और स्तनपान कराया। तब वे देवलोक को चले गए।"

तब परीक्षित के जिज्ञासा प्रकट करने पर शुकदेव जी ने अर्जुन से सुभद्रा के विवाह का प्रसंग कहा, जो इस प्रकार है—"एक बार अर्जुन तीर्थ यात्रा पर गए तब प्रभास क्षेत्र में उन्होंने सुना कि बलराम अपनी बहन सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करना चाहते हैं। वसुदेव, कृष्ण आदि इससे सहमत नहीं हैं। तब अर्जुन के मन में सुभद्रा से विवाह कर लेने की इच्छा हुई। वे ब्राह्मण का वेश बनाकर द्वारका जा पहुंचे और वर्षा के चार मास वहीं रहे। बीच में अर्जुन और सुभद्रा एक-दूसरे को देखकर मोहित भी हो गए। देवकी-वसुदेव और कृष्ण की सहमति से उन्होंने एक दिन सुभद्रा जब रथ पर देवदर्शन के लिए बाहर निकली तो अर्जुन ने उसका रथ सहित हरण कर लिया। रोकने वाले सैनिकों को अर्जुन ने धनुष उठाकर भगा दिया। बलराम यह समाचार जानकर बहुत कुपित हुए तब कृष्ण व अन्य सम्बन्धियों ने किसी प्रकार पैर पड़कर उन्हें मनाया (कहा जाता है कि बलराम अपने प्रिय शिष्य दुर्योधन को छोड़ अर्जुन से सुभद्रा का विवाह करने को नहीं मानते, अतः कृष्ण ने अर्जुन को हरण का परामर्श दिया था किन्तु यह चेतावनी भी दी थी कि हरण के समय रथ को सुभद्रा चलाए अर्जुन नहीं, जिससे बाद में बलराम को यह कहकर शांत किया जा सके कि सुभद्रा ने अर्जुन का हरण किया है, न कि अर्जुन ने सुभद्रा का)। तब उन्होंने प्रसन्न होकर दान-दहेज भी दिया।'

'एक बार कृष्ण मिथिला में रहने वाले अपने दो भक्तों श्रुतदेव और बहुलाश्व के यहां एक ही समय में अलग-अलग उपस्थित हुए (उनके आमंत्रण पर) और उनका आतिथ्य तथा स्तुति स्वीकार कर उन्हें परम गति प्रदान की। दोनों की प्रसन्नता के लिए कुछ समय मिथिला में रहकर वे साधुपुरुषों के मार्ग का उपदेश कर द्वारका लौट आए। अतः कृष्ण की लीला ही विचित्र है—उसे सम्पूर्णता से कहना कठिन है और समझना तो और भी कठिन। इसीलिए वेद भगवान के विषय में 'नेति-नेति' (इतना ही नहीं, इतना ही नहीं) कहा करते हैं।" शुकदेव बोले।

तब परीक्षित बोले—"प्रभु! कार्य, कारण से सर्वथा परे, त्रिगुणों से रहित, मन व वाणी से अगम्य, इन्यातीत भगवान को श्रुतियां किस प्रकार प्रतिपादित कर पाती हैं? क्योंकि निर्गुण का स्वरूप परिभाषित करना तो प्रायः असम्भव ही-सा है।"

शुकदेव जी बोले—"श्रुतियां स्पष्टतः सगुण का ही निरूपण करती हैं, परन्तु विचार करने पर उनका तात्पर्य निर्गुण भी निकलता है, जो कुछ वर्णनातीत होता है। उसे लक्षणों व संकेतों में कहा जाता है। वहां शब्द की अपनी शक्ति (अर्थ) के अलावा उसकी लक्षणा, व्यंजना आदि शक्तियां भी कार्य करती हैं। (मुर्गे ने बांग दे दी। यह एक स्वाभाविक क्रिया को दर्शाने वाला वाक्य है कि एक विशेष पक्षी ने आवाज लगा दी है, किन्तु यह इसका शाब्दिक अर्थ है। वास्तविक अर्थ यह है कि सवेरा हो गया

है। इस प्रकार श्रुतियों के शब्दों के अर्थ नहीं, उनके भावार्थों को समझना चाहिए। उनके संकेतों को समझना चाहिए, तब हम उनके निर्गुणीय निरूपण को समझ पाएंगे, अन्यथा शब्दजाल में उलझकर रह जाएंगे। शुकदेव के समझाने का अर्थ यही है।) इस विषय में तुमसे एक कथा कहता हूं। सुनो—'एक बार नारद बद्रिकाश्रम गए। वहां कलाप ग्रामवासी सिद्ध ऋषियों के बीच बैठे नारायण से नारद ने यही प्रश्न पूछा था, तब नारायण ने उनको यही कथा सुनाई थी।'

नारायण ने कहा—'प्राचीनकाल में सनकादि ऋषियों में ब्रह्म-विषयक विचार/प्रवचन (ब्रह्मसत्र) हुआ था। तब ब्रह्म के सम्बन्ध में श्रुतियों को भी मौन कर देने वाली बड़ी सुन्दर चर्चा हुई थी। ब्रह्मसत्र में इसी प्रश्न के उत्तर में सनन्दनजी को वक्ता बनाकर शेष भाइयों ने उन्हें सुना था। तब सनन्दनजी ने कहा था—सवेरा होने पर बन्दी जनों द्वारा सम्राट की स्तुति करते हुए उसे जगाने के समान प्रलय के अन्त में श्रुतियां उन्हीं को प्रतिपादित करने वाले वचनों से उन्हें इस प्रकार जगाती हैं।'

'हे अजित्! सर्वश्रेष्ठ, सर्वशक्तिमान्, सर्वसमर्थ, सर्वरूप, एकरस, निर्विकार, परम स्वतंत्र, सर्वव्यापक, विभु, स्वयम्भुव, प्रकाश पुंज, अरूप, निराकार, असीम, अमादि, अनन्त, सर्वगुरु, जगदीश्वर, सद्चित् आनन्द, चैतन्य, कार्यकारण सम्बन्ध व त्रिगुणों से परे, इन्द्रियातीत, मायाधर, आप ही जगत हैं। आप ही जगत में रहने वाले हैं। आप ही जगत का नाश करने वाले हैं। जब कुछ नहीं था, तब आप ही थे। जो कुछ भी है, वह भी आप हैं। जो कुछ नहीं है, वह भी आप ही हैं। जो कुछ होगा, वह भी आप ही होंगे, जो नहीं होगा, वो भी आप ही होंगे। जब कुछ न होगा, तब भी आप ही होंगे। आप काल, समय, स्वभाव, गुण, संस्कार, रूप, नाम, कर्म, जन्म, मृत्यु आदि की सीमाओं से परे हैं। आपके विषय में विश्वासपूर्वक व सम्पूर्णता से केवल इतना ही कहा जा सकता है कि—'आप हैं।' आप ही समस्त सृष्टि को रचते, पालते व नष्ट करते हैं। स्वयं ही, स्वयं को, स्वयं में ही, स्वयं के लिए बनाते और स्वयं ही, स्वयं को, स्वयं के लिए ही और स्वयं में ही लय कर लेते हैं। आप समदर्शी, पक्षपातरहित, निर्दोष, नित्य और सनातन हैं। आपको जानने की चेष्टा व्यर्थ है (क्योंकि आपको जाना ही नहीं जा सकता)। अतः आपका भजन ही आप तक पहुंचने का सर्वोत्तम मार्ग है। आप सबके एक मात्र आधार हो और एक मात्र आश्रय, क्योंकि जो सब है—वह सब आप ही हैं। आप से पृथक कुछ नहीं। धर्म भी आप हैं, अधर्म भी आप हैं। आप ही परम कल्याणकारक और कृपालु हैं। आप हमारा कल्याण कीजिए।'

नारायण बोले—'इस प्रकार सनन्दन जी ने इस उपदेश में वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद् सभी का निचोड़ कह दिया है। इसी का विस्तार समस्त धर्म व अध्यात्म ग्रन्थ हैं और इसी का लघुत्तम रूप ओंकार है। तुम ज्ञान सम्पत्ति के अधिकारी हो।

अतः श्रद्धा के साथ इस ब्रह्मात्म विद्या को धारण करो। यह विद्या समस्त वासनाओं को भस्म कर देने वाली तथा अज्ञान को नष्ट कर देने वाली है। वासनाएं ही दुःखदायी और अज्ञान ही बन्धकारी है।'

'हे परीक्षित! तब नारदजी ने सुनते ही इस ज्ञान को आत्मसात कर लिया और मेरे पिता व्यास को सुनाया। सो आज मैंने तुमको बतला दिया है। हे राजन्! जिस प्रकार निद्रा में निमग्न होकर मनुष्य समस्त क्रिया-कलापों व अनुसंधानों तथा बाह्य व्यापारों को छोड़ देता है। उसी प्रकार भगवान को पाकर या उनमें मग्न होकर जीवमाया से मुक्त हो जाता है। भगवान ही एक मात्र अभय स्थान हैं। अतः उन्हीं का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए।''

तब परीक्षित बोले—''हे महाज्ञानी ब्राह्मण! मेरी एक और शंका का भी निवारण कीजिए। शंकर भगवान समस्त भोगों के त्यागी और विरक्त योगी हैं। फिर भी उनके प्रति तप करने वाले धन, भोग, ऐश्वर्य व शक्तियां प्राप्त करते हैं (जैसा कि अनेक दानवों व राजाओं ने वरदान प्राप्त किए हैं।) और भगवान विष्णु जो लक्ष्मीपति हैं समस्त भोगों व ऐश्वर्यों के स्वामी हैं, उनकी उपासना करने वाले प्रायः धन सम्पन्न नहीं होते। त्यागी की उपासना से भोगों की प्राप्ति और लक्ष्मीपति की उपासना से त्याग की प्राप्ति यह विपरीत फल उपासकों को कैसे मिलता है?''

शुकदेव जी ने कहा—'भगवान शिव सदा अपनी शक्ति से युक्त रहते हैं। वे सत्व आदि गुणों से युक्त व अहंकार के अधिष्ठाता हैं। त्रिविध अहंकारों से उत्पन्न सोलह विकारों के अधिष्ठाता किसी भी देवता की उपासना करने पर समस्त ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं। इन सोलह विकारों (जिनके अधिष्ठाता विभिन्न देवता हैं।) को उत्पन्न करने वाले अहंकार के अधिष्ठाता होने से शिव को महादेव (सब देवताओं में बड़ा) कहा जाता है। अतः उनकी उपासना से किसी भी प्रकार के भौतिक-अभौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति असम्भव नहीं है, किन्तु भगवान विष्णु तो प्रकृति से परे, प्राकृत गुणों से रहित, पुरुषोत्तम, सबके साक्षी और सबके अन्तर्मन में वास करने वाले हैं (इसीलिए उन्हें वासुदेव कहा जाता है)। अतः उनकी उपासना करने वाला स्वयं भी गुणातीत हो जाता है। वैसे समस्त देवता विष्णुमय ही हैं। विष्णु से पृथक कुछ भी नहीं है। फिर भी भगवान के त्रिगुण (सत, रज, तम) भेदों या सृष्टि, पालन व संहार त्रिक्रियाओं अथवा ज्ञान, क्रिया व संकल्प (इच्छा) त्रिशक्तियों की त्रिमूर्ति जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं, उनमें ब्रह्मा व शिव आशुतोष होने से भक्तों की उपासना से शीघ्र प्रसन्न होकर उन्हें अभीष्ट वर देते हैं। बाद में कभी-कभी वर पाने वाले मदमत्त होकर वर दाता का ही तिरस्कार कर देता है, किन्तु विष्णु भगवान वैसे नहीं हैं। वे जिस पर कृपा करते हैं—उसका सब धन छीन लेते हैं। इस प्रकार वह एकाकी हो जाता है उसके उद्योग निष्फल कर देते हैं। इस प्रकार वह विरक्त हो जाता है, तब वह सच्चे

मन से विष्णु का आश्रय लेता है। तब भगवान विष्णु उस पर अपनी अहेतुक कृपा की वर्षाकर परब्रह्म की प्राप्ति कराते हैं।"

शुकदेव जी ने आगे कहा—"आशुतोष होने से! अपात्र को भी वरदान देकर संकट में पड़ जाने वाले भगवान शिव की कथा इतिहास में आती है। वह सुनो—'वृकासुर शकुनि का पुत्र था। उसने एक बार नारद को देखकर पूछा कि तीनों देवों में से शीघ्र प्रसन्न होने वाला कौन है? तब नारद ने कहा—'आशुतोष शंकर'। इस पर वृकासुर ने शिव की तपस्या की। उसने अपने शरीर का मांस काट-काटकर हवन किया। छह दिन तक उपवास रख उपासना की। शिव को प्रसन्न न होते देख वह कुल्हाड़ी से अपना सिर काटकर आहुति देने को हुआ तब भगवान शंकर दयावश प्रकट हो गए। तब शिवजी के कहने पर वृकासुर ने वर मांगा कि वह जिसके सिर पर हाथ रखे वो मर जाए (बहुत स्थानों पर सिर पर हाथ रखने से भस्म होने व वृकासुर के स्थान पर भस्मासुर का वर्णन मिलता है)। शिवजी ने तुरन्त वर दे दिया। इस प्रकार मानो उन्होंने सांप को अमृत पिला दिया, क्योंकि वह दुष्ट, पार्वती का हरण करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम शिवजी के सिर पर ही हाथ रखने को भागा। शिव भागते हुए हर स्थान पर वृकासुर को पीछे पाते। तब वे वैकुण्ठ लोक में गए। तब भक्त भय हारी भगवान विष्णु शिव को संकट में देखकर ब्रह्मचारी के भेस में वृकासुर के पास पहुंचे और वाक्छल में उलझाकर वृकासुर का हाथ उसी के सिर पर रखवा कर उसे मरवा दिया। (बहुत स्थानों पर विष्णु के मोहिनी रूप में प्रकट होकर भस्मासुर को वाक्छल में उलझाने का प्रसंग मिलता है।) तब देवताओं ने 'साधु-साधु' कहकर विष्णु की प्रशंसा की और शंकर जी ने भी संकट मुक्त होकर विष्णु जी को प्रणाम किया। इस प्रसंग को पढ़ने या सुनने वाला सांसारिक बन्धनों व शत्रु भय से मुक्त हो जाता है।"

विशेष : (वास्तव में शिव और विष्णु एक ही परम शक्ति के दो आयाम हैं। शिव इतने असहाय कभी नहीं हो सकते कि वृकासुर/भस्मासुर को अपने सिर पर हाथ रखने से भी रोक न पाएं। स्पष्ट है कि यह कथा मात्र लीला के माध्यम से सांकेतिक रूप से शिव के आशुतोष होने को दर्शाने के लिए कही गई है। अतः शिवभक्तों को इसे अन्यथा नहीं लेना चाहिए।)

"हे राजन्! एक बार सरस्वती नदी के तट पर यज्ञ हेतु एकत्रित हुए ऋषियों में यह विवाद हुआ कि त्रिदेवों में कौन बड़ा है? तब ब्रह्मा के पुत्र भृगु ऋषि को त्रिदेवों की परीक्षा के लिए भेजा गया। वे पहले ब्रह्मा जी के यहां गए। उनके धैर्य की परीक्षा लेने के लिए उनका अभिवादन नहीं किया। तब ब्रह्माजी क्रोध में दहकने लगे, किन्तु यह देखकर कि भृगु तो उन्हीं के पुत्र हैं, उन्होंने अपने क्रोध को दबा लिया। फिर वे कैलाश गए और शिव की स्तुति नहीं की, तो भी अपने भाई भृगु को देख शिव उनको आलिंगन करने के लिए भुजाएं फैलाकर खड़े हो गए। भृगु ने आलिंगन को

अस्वीकार करते हुए कहा—''तुम वामदेव हो। वेद व मर्यादाओं का उल्लंघन करते हो, अतः मैं तुमसे गले नहीं मिलूंगा।' तब शिव की भृकुटियां तन गईं और त्रिशूल उठाकर वे भृगु वध को उद्यत हुए। उस समय सती ने किसी प्रकार अनुनय-विनय से शिव को शांत किया। इस प्रकार ब्रह्मा व शिव के धैर्य की परीक्षा लेकर भृगु विष्णु के पास गए। विष्णु उस समय लक्ष्मी की गोदी में सिर रखकर लेटे थे। भृगु ने विष्णु भगवान की छाती पर लात मारी। विष्णु भगवान तुरन्त उठ बैठे और भृगु को प्रणाम कर बोले—'क्षमा करें! मुझे आपके शुभागमन का पता नहीं चला, अतः अगवानी न कर पाया। पधारिए! आपका स्वागत है।' फिर भृगु के चरण सहलाकर बोले—'मेरी उद्दण्डता का उचित दण्ड आपने दिया है। आपके पैर को चोट तो नहीं पहुंची? आपके चरण कमल के स्पर्श से आज मैं पवित्र हो गया। आपके पदचिन्ह से सुशोभित मेरे हृदय में लक्ष्मी सदावास करेंगी।' तब भृगुजी की आंखें और कण्ठ भक्ति के उद्रेक से भर आईं और वे विष्णु को प्रणाम कर लौट आए।'

'भृगुजी ने लौटकर ऋषियों को सब कथा सुनाई। तब सबने एक मत से विष्णु भगवान को सर्वश्रेष्ठ माना, क्योंकि शक्ति से सम्पन्न होने मात्र से कोई महान नहीं होता। शक्ति के साथ विनय और क्षमा जब जुड़ जाती है, तब कोई महान बनता है। वैसे भी बड़े का बड़प्पन छोटों की धृष्टता को क्षमा करने में ही होता है। मान-सम्मान के प्रश्न पर अपने अहं को खड़ा कर लेना दुर्बलता है। इससे यही सिद्ध होता है कि सब पर नियंत्रण और अधिकार रखने वाला होते हुए भी उसका स्वयं पर कुछ नियंत्रण नहीं है। इसके अलावा ब्रह्मा तो उस परमात्मा का रजोगुण प्रधान आयाम हैं, शिव तमो गुण प्रधान, किन्तु विष्णु ही सत्त्वगुण प्रधान आयाम हैं—जो अधिक श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार अपना संशय मिटाने का अभिनय कर उन ऋषियों ने मनुष्यों का संशय मिटाया और अन्त में भगवान पुरुषोत्तम की चरण कमलों की सेवा कर परमपद को प्राप्त हुए।''

सूतजी बोले—''व्यास पुत्र शुकदेव की श्रीमुख से निकली यह अमृत कथा मानवों के लिए परम कल्याणकारी और भ्रम दूर करने वाली है। यह कथा सुनाकर शुकदेव जी ने परीक्षित को एक और कथा सुनाई। जो भगवान कृष्ण की एक और लीला को दर्शाती है।''

'एक बार द्वारका में एक ब्राह्मण का पुत्र उत्पन्न होते ही मर गया, तब उसने कृष्ण के पास आकर खूब खरी-खोटी सुनाई। उसने कहा—'प्रजा को राजा के पापों का फल भोगना पड़ता है। जहां भय और असुरक्षा है उस राज्य में क्षत्रियों के रहने से क्या लाभ?' तब वहां उपस्थित अर्जुन ताव में आ गए और बोले—'क्षत्रियों के बल को धिक्कारने की आवश्यकता नहीं। मैं गाण्डीवधारी अर्जुन तुम्हारे पुत्र को यमराज से भी छुड़ा लाऊंगा। युद्ध में मैं भगवान शंकर को भी संतुष्ट कर चुका हूं।'
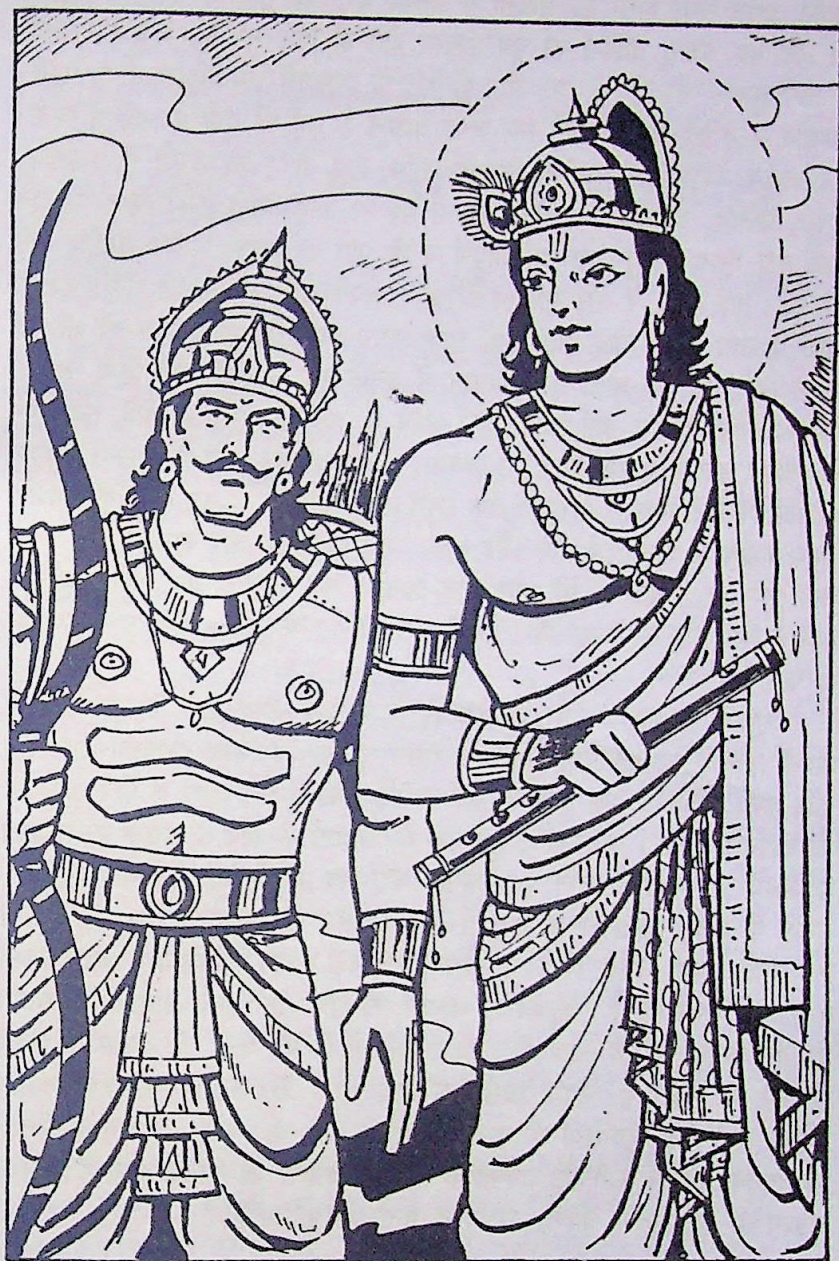
नारायण लोक को जाते हुए अर्जुन के साथ भगवान श्रीकृष्ण

तब अपनी पत्नी के दुबारा प्रसव होने के समय ब्राह्मण अर्जुन को वहां ले आया। अर्जुन अपने दिव्य बाणों की शृंखला में उसकी पत्नी को सुरक्षित कर स्वयं चौकसी पर बैठ गए, किन्तु ब्राह्मण का पुत्र उत्पन्न होते ही फिर मर गया। अर्जुन ब्राह्मण के ताने सुनकर तैश में आ गए और योगबल से यमनगरी संयमनीपुरी में जा पहुंचे। गाण्डीव कन्धे पर चढ़ाए उसने सब जगह ब्राह्मण के पुत्र को ढूंढा पर वह न मिला। तब अर्जुन वरुण, इन्द्र, अग्नि, निऋति, सोम, वायु आदि की पुरियों में, महर्लोक, सुतल, पाताल, रसातल आदि सब स्थानों पर हो आए किन्तु उसे ब्राह्मण का पुत्र कहीं नहीं मिला। अर्जुन तब प्रतिज्ञापूर्ण न हो पाने के कारण 'अग्नि समाधि' लेने को हुए। तब कृष्ण ने उसे सांत्वना दी और अपने साथ रथ पर ले चले। पश्चिम दिशा में सात पर्वतों वाले सात द्वीप, सात सागर और लोकालोक पर्वत को भी पार करके आगे बढ़े तो अति घोर अंधकार में उनके रथ के चारों घोड़े शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक मार्ग भटक गए। अंधेरे में उन्हें कुछ सूझा ही नहीं, तब कृष्ण ने सुदर्शन चक्र के प्रकाश द्वारा उस अंधकार को काटा और अन्त में भगवान शेषनाग के अंक में लेटे भगवान नारायण तक पहुंचे। तब नारायण ने उन दोनों को आशीष देकर ब्राह्मण के दोनों पुत्र सौंपे और कहा—'तुम दोनों नर और नारायण हो, अपना कार्य पूर्ण कर शीघ्रता से मेरे पास लौट आओ।' तब वे लौट आए और अर्जुन ने महसूस किया कि उसमें या औरों में जो कुछ भी बल-पौरुष है—सब कृष्ण कृपा का ही फल है।''

सूतजी ने कहा—''फिर शुकदेव जी ने भगवान कृष्ण द्वारा छिपकर रात को अपनी पत्नियों का वार्तापाल सुनने का प्रसंग सुनाया। यह सब वार्तालाप कृष्ण प्रेम और कृष्ण भक्ति में डूबा हुआ है। फिर परीक्षित को उन्होंने कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध की वंशावली सुनाई। अनिरुद्ध के पुत्र वज्र थे। ब्राह्मणों के शाप से उत्पन्न मूसल द्वारा यदुवंशियों का नाश हो जाने पर एकमात्र वही शेष रहे थे। वज्र-प्रतिबाहू के पिता, सुबाहू के दादा, शान्तसेन के परदादा और शतसेन के लकड़दादा थे। इस वंश में कम संतान वाला, निर्बल, निर्धन व अल्पायु कोई नहीं हुआ। यदुवंशियों में सब पराक्रमी व यशस्वी राजा हुए हैं। यदुवंश के बालकों को शिक्षा देने वाले आचार्यों की संख्या ही तीन करोड़ अट्ठासी लाख थी। तब यदुवंशियों के पुत्र-पौत्रों की संख्या तो बताई ही कैसे जा सकती है? स्वयं उग्रसेन के साथ 1,00,00,00,00,00,000 के लगभग सैनिक रहते थे। यदुवंशियों के कुलों की संख्या 101 थी। कृष्ण की समस्त लीलाएं भक्तिवर्धक, निर्मल कारिणी, पापनाशक तथा कर्मबन्धनों को काटने वाली हैं। उनका अवश्य ही श्रद्धापूर्वक श्रवण, कीर्तन व मनन करना चाहिए।'

❑❑

एकादश स्कन्ध

शुकदेव जी ने आगे कहा—'हे परीक्षित! कृष्ण व बलराम ने अन्य यादवों के साथ मिलकर बहुत से दैत्यों और क्षत्रियों का संहार किया। अर्जुन द्वारा कृष्ण ने महाभारत के युद्ध में भी पृथ्वी का भार कम कराया। इस प्रकार लोकदृष्टि से उन्होंने पृथ्वी को भार मुक्त किया, किन्तु अपनी दृष्टि में नहीं, क्योंकि किसी से भी पराजित न हो सकने वाले यदुवंशी अभी शेष थे जो बल और वैभव के कारण उच्छृंखल होने लगे थे। तब कृष्ण ने ब्राह्मणों के शाप के बहाने अपने वंश का भी संहार कर डाला और अपने धाम को लौट गए।''

तब परीक्षित ने ब्राह्मणों के शाप द्वारा यदुवंश के विनाश का प्रसंग भी जानना चाहा। इस पर शुकदेव जी बोले—''कृष्ण के विदा कर देने पर—विश्वामित्र, वशिष्ठ, भृगु, दुर्वासा, कण्व, अत्रि, नारद, अंगिरा, कश्यप आदि महर्षि—द्वारका के समीप ही पिण्डारकक्षेत्र में रहने लगे थे। एक बार यदुवंश के कुछ उद्दण्डकुमार जाम्बवंती के पुत्र साम्ब को स्त्री का भेस धारण करवाकर वहां लाए और कहा—''हे महानुभावों! यह स्त्री गर्भवती है। कृपया बताइए इसके पुत्र होगा या पुत्री?' तब सब कुछ जानने वाले उन ऋषियों ने उनकी उद्दण्डता से क्रोधित होकर कहा—'मूर्खो! यह एक ऐसा मूसल जनेगी जो तुम्हारे कुल का नाश कर देगा।' यह सुनकर वे यादव कुमार डर गए। साम्ब का पेट खोलकर देखा तो मूसल मिला। तब अत्यंत भयभीत होकर उन्होंने वह मूसल उग्रसेन के सम्मुख यादवों की सभा में रख दिया और सच-सच बता दिया। सुनकर सभी स्तब्ध रह गए। फिर उग्रसेन ने उस मूसल का चूर्ण करवा कर समुद्र में फिंकवा दिया। भयवश और काल प्रेरणा से उन्होंने इस सम्बन्ध में कृष्ण से परामर्श न लिया, किन्तु उन्हीं की प्रेरणा से तो सब हो रहा था।'

'उस मूसल का चूरा समुद्र की लहरों ने तट पर जमा दिया। उसका एक बचा रह गया टुकड़ा एक मछली निगल गई। जो मछुआरों ने पकड़ ली उसके पेट से निकला लोहे का वह टुकड़ा जरा नामक एक बहेलिए ने अपने बाण की नोक पर लगा लिया। थोड़े समय बाद उस मूसल का तट पर जमा चूरा एरक (बिना गांठ की कुशा/घास)

के रूप में उग आया। कृष्ण सब जानते थे और शाप उलट भी सकते थे, क्योंकि वे स्वयं यादवों का विनाश चाहते थे, अतः उन्होंने कुछ नहीं किया। इस प्रकार हे राजन्! कृष्ण के अनुमोदन और काल की प्रेरणा से ब्राह्मणों के शाप को निमित्त बनाकर यदुवंशियों के विनाश का सामान तैयार हो गया।'

'नारद जी कृष्ण दर्शनों को द्वारका आते रहते थे। एक बार उनके आने पर वसुदेवजी ने उनसे मुक्ति के साधनों के विषय में प्रश्न किया। तब नारदजी ने कहा—'भगवत धर्म ही ऐसा साधन है। इस सम्बन्ध में ऋषभ के नौ योगीश्वर पुत्रों और विदेह का एक संवाद भी इतिहास में आता है। ऋषभ के वे नौ पुत्र—कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आर्विहोत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन थे। इनके विषय में पहले वंशावली स्कन्ध में कह चुका हूं। विदेहराज निमि ने उनके आगमन पर यही प्रश्न किया था, जो आपने मुझसे किया है। तब कवि जी ने इस प्रकार कहा था—

'भगवतचरणों की उपासना ही परम कल्याणप्रद व मुक्ति देने वाली है। भगवान ने अपने श्रीमुख से अपनी प्राप्ति के जो उपाय कहे, वे ही भागवत् धर्म हैं। कर्मों का, स्व का सम्पूर्ण समर्पण ही भागवत् धर्म में प्रमुख है अथवा संकल्प विकल्प वाले मन को योग द्वारा नियंत्रित कर ले या फिर ज्ञान और वैराग्य द्वारा भेद बुद्धि को समाप्त कर दे, ये सभी मुक्ति के साधन हैं।' तब निमि जी ने भगवत् भक्तों के लक्षण, गुण व आचरण पूछे। इस पर उन नौ योगीश्वरों में से हरिजी ने इस प्रकार कहा—

'समदर्शी, द्वेषरहित, इन्द्रियजीत, संतुष्ट, प्रेमी, अहंरहित/समर्पित, भेदरहित, शान्त और हर वस्तु में ईश्वर को ही देखना यही भगवत् भक्त के लक्षण, गुण व आचरण हैं। तब निमिजी ने माया का स्वरूप पूछा, इस पर अन्तरिक्षजी बोले—'माया अनिर्वचनीय है। उसके कार्यों से ही उसका निरूपण होता है। सम्पूर्ण सृष्टि माया है, शरीर को ही आत्मा मान लेना माया है। कर्तायन की प्रतीति माया है, अज्ञान माया है, जन्म-मरण चक्र माया है। प्रलय भी माया ही है। आत्मा के अतिरिक्त (जो परमात्मा का अंश है) और सभी माया है। जहां तक इंद्रियों व मन की पहुंच है, वहां तक माया का साम्राज्य है।' तब निमिजी ने परमात्मा का स्वरूप पूछा। इस पर पिप्पलायनजी बोले—'हे निमि! परमात्मा का कोई रूप नहीं है, अतः सारे रूप परमात्मा के ही हैं। परमात्मा के स्वरूप का वर्णन नहीं हो सकता, मात्र अनुभव होता है और अनुभव करने वाला स्वयं ही परमात्मा हो जाता है। अतः उनका स्वरूप क्या कहें? यह वर्णनातीत है।' तब निमिजी ने कर्मयोग के बारे में पूछा तो आर्विहोत्रजी बोले—'सामान्य व्यक्ति निषिद्ध कर्मों से बचे, सत्कर्म ही करें, यह तो सामाजिक व्यवस्था है, किन्तु कर्मयोगी तो कुछ भी कर सकता है, क्योंकि वह कर्मों में लिप्त नहीं होता। कर्मों में या फल में आसक्ति न होना, लिप्त न होना और कर्ता भाव से तथा फल की इच्छा से मुक्त रहना ही कर्मयोग है।' फिर निमिजी ने भगवान के अवतारों के विषय में द्रुमिलजी से जाना, भक्तिहीन पुरुषों की गति तथा उपासना विधि के विषय में उन्हें चमसजी और करभाजनजी ने बताया।

उन्होंने यह भी बताया कि सतयुग में भगवान का रंग श्वेत, त्रेता में लाल, द्वापर में सांवला और कलियुग में काला होता है।'

नारद जी आगे बोले—'इस प्रकार आपके प्रश्न का मैंने समुचित उत्तर दे दिया है।' नारद जी के मुख से यह सब सुनकर वसुदेवजी ने माया मोह को तत्क्षण छोड़ दिया।'' शुकदेव जी आगे बोले—''हे परीक्षित! इस प्रसंग को जो एकाग्रचित्त होकर धारण करता है, वह अपना शोक-मोह छोड़कर ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है।''

शुकदेव जी आगे बोले—''नारदजी के वसुदेवजी को उपदेश करके जाने के बाद ब्रह्माजी, सनकादि, प्रजापतियों, देवताओं आदि के साथ द्वारका आए और कृष्ण की स्तुति कर, उनसे स्वधाम को लौट चलने की प्रार्थना की। तब कृष्ण बोले—'अभी घमंडी व उच्छृंखल हो गए यादवों का विनाश करना शेष है, अन्यथा वे कालान्तर में सब मर्यादाओं का उल्लंघन कर पूरे विश्व के लिए एक खतरा बन जाएंगे। इसकी भूमिका बंध गई है, किन्तु सम्पादन में अभी कुछ देर है। यह कार्य पूर्ण कर मैं स्वधाम को लौटूंगा।' तब ब्रह्मा आदि उन्हें प्रणाम कर लौट गए।'

'हे राजन्! उनके जाते ही द्वारका में भयानक अपशकुन होने लगे। यह देखकर बुजुर्ग यादव मशविरे के लिए कृष्ण के पास आए। तब कृष्ण बोले—'ब्राह्मणों के शाप से ही यह सब हो रहा है, अतः अब द्वारका में रहना ठीक नहीं है। हम लोग आज ही परम पवित्र प्रभास क्षेत्र को चलते हैं। वहां स्नान कर, तर्पण आदि करेंगे और सत्पात्र ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देंगे, जिससे शाप का प्रभाव नष्ट नहीं तो कम हो सके।' सब यदुवंशी यह सुनकर प्रभास जाने की तैयारी करने लगे। तब उद्धवजी बोले—'प्रभो! आप सर्वशक्तिमान हैं, तो भी ब्राह्मणों के शाप को आपने मिटाया नहीं, इससे स्पष्ट है कि यदुवंश के संहार में आपकी सहमति है और बाद में आप स्वधाम को लौट जाएंगे। प्रभो मुझे संहार की या माया से पार लगने की चिन्ता नहीं है। मुझे तो आपके विरह की चिन्ता है। अतः मुझे भी साथ ही ले चलिएगा।'

'तब कृष्ण अपने प्रेमी सखा उद्धवजी से बोले—'यदुवंश ब्राह्मणों के शाप और आपसी फूट से नष्ट हो जाएगा और एक सप्ताह बाद समुद्र द्वारका को डुबो देगा। जब मैं पृथ्वी लोक को त्याग दूंगा, तभी कलियुग का आगमन होगा। तब संसार की अधर्म में रुचि हो जाएगी। अतः मेरे पृथ्वी त्यागने के बाद तुम भी यहां मत रहना। तुम इन्द्रियों व मन पर विजय प्राप्त कर मुझ ही में चित्त स्थिर करना, तब तुम मुझ को ही प्राप्त हो जाओगे।' उद्धवजी ने कहा—'प्रभो आपने जिस संन्यास का उपदेश दिया है, उसका तत्व मुझे इस प्रकार समझाइए कि मैं सुगमता से उसका साधन कर सकूं।''

शुकदेवजी ने आगे कहा—''यह सुनकर श्रीकृष्ण भगवान ने कहा—'इस मेरी रची सृष्टि में मनुष्य ही मुझे सबसे प्रिय है, क्योंकि इसी योनि में बुद्धिमान पुरुष-बुद्धि आदि ग्रहण किए जाने वाले हेतुओं से, जिनसे अनुमान भी होता है, अनुमान से अग्राह्य अर्थात

अहंकार आदि विषयों से भिन्न मुझ सर्वप्रवर्तक ईश्वर को साक्षात अनुभव करते हैं। इस विषय में अवधूतदत्तात्रेय तथा राजा यदु का संवाद मैं तुमको सुनाता हूं। इसे ध्यानपूर्वक सुनो—तुम अपने प्रश्न का उत्तर पा जाओगे। संवाद इस प्रकार है।'

राजा यदु ने दत्तात्रेयजी से पूछा—'आप कर्म तो करते नहीं, फिर आपको यह अत्यंत निपुण बुद्धि कैसे प्राप्त हुई? सांसारिक प्रवृत्तियों से परे आप पिशाच की भांति रहते हैं। आप अपनी आत्मा में ही किस प्रकार आनन्दित रहते हैं। न कुछ करते ही हैं, न करना ही चाहते हैं?' तब ब्रह्मवेत्ता अवधूत दत्तात्रेय ने कहा—'राजन्! मैंने पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौंरा/मधुमक्खी, हाथी, शहद को निकालने वाला, हिरन, मछली, पिंगलावेश्या, कुररपक्षी, बालक, कुमारीकन्या, वाणनिर्माता, सर्प, मकड़ी और भृंगीकीट—इन चौबीस गुरुओं के आचरण से अपने लिए शिक्षा ली है। तब मैं ऐसा हो गया हूं। तुमको बताता हूं कि इनको गुरु बनाकर मैंने इनसे क्या सीखा है?'

'दत्तात्रेयजी आगे बोले—'शरीर में स्थित प्राणवायु से मैंने आहार मात्र की इच्छा और उसकी प्राप्ति से संतुष्ट हो जाना सीखा। शरीर से बाहर रहने वाले वायु से अनेक स्थानों पर जाने पर भी वहां के गुण-दोषों व आसक्ति से रहित रहना सीखा। देखो वायु गन्ध का भी वहन करता है जो उसका नहीं पृथ्वी का गुण है तो भी गन्ध में लिप्त नहीं होता और सब प्राणियों का स्वभावतः हित करता है। आकाश से एक, अखण्ड, शान्त और मात्र साक्षी रहना सीखा। स्थिर रहना सीखा। अनेक तत्वों, सत्ताओं और प्राणियों को स्वयं में आश्रय देकर भी वो शान्त और विरक्त रहता है। जल से स्वच्छता, शीतलता, स्निग्धता, मधुरता व दूसरों को निर्मल कर देने का गुण सीखा। (जल का कोई रंग नहीं होता, वह जिस रंग की वस्तु में जाता है, वैसा ही हो जाता है, किन्तु वहां से निकल जाने पर अपने पूर्व रूप में लौट आता है। मनुष्य को भी ऐसा ही अहंरहित, मिलनसार व सामंजस्य (Adjest) करने वाला होना चाहिए, किन्तु निर्विकार रहना चाहिए। पत्थरों को काटकर भी मार्ग बना लेना भी जल का ही गुण है।)

'राजन्! अग्नि से (सदैव उर्ध्वमुखी) तथा तेजस्वी होने की शिक्षा मिलती है। वह सभी वस्तुओं को पचा लेने पर भी उनके दोषों से प्रभावित नहीं होता। काष्ठ में अग्नि गुप्त रूप से रहता है। चन्द्रमा से घटने-बढ़ने पर भी तटस्थ रहने की शिक्षा मिलती है। मनुष्य ह्रास या क्षीणता के, दुःख के, संकट के समय दुःखी तथा वृद्धि, प्रगति या लाभ के समय फूलकर कुप्पा हो जाता है। ऐसा नहीं होना चाहिए। चन्द्रमा अपनी कलाओं के घटने-बढ़ने पर भी चन्द्रमा ही रहता है (और अमृत बरसा कर सबका मन मोहता है—किसी को कष्ट नहीं देता)। मनुष्य भी जन्म से जवानी तक बढ़ता है और जवानी से वृद्धावस्था तक घटता है, किन्तु शरीर की इस घट-बढ़ से आत्मा पृथक ही रहता है। (अमावस के समय चन्द्रमा जैसे दिखाई नहीं देता, किन्तु होता है और अगले ही दिन से दिखाई भी देने लगता है, उसी प्रकार मृत्यु के समय आत्मा होते हुए भी प्रतीत नहीं होता, किन्तु फिर दूसरे शरीर में प्रगट होता है।)

'सूर्य से यह शिक्षा मिलती है कि समय पर विषयों का ग्रहण कर, समय से उन्हें त्याग देना अथवा दान दे देना चाहिए। संग्रह नहीं करना चाहिए। जैसे सूर्य अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी से जल खींचते हैं, पर समय आने पर वर्षा के रूप में बरसा देते हैं। वह एक ही होकर, विभिन्न दर्पणों, जलों या पात्रों में पड़ने वाले अपने प्रतिबिम्ब से अज्ञानियों को अनेक और हिलते-डुलते प्रतीत होते हैं। हे राजन्! (यही सूर्य देव तपरूपी अज्ञान का नाश करते हैं। किसी को भी निद्रा त्यागने को नहीं कहते, तो भी उनके उदय होते ही संसार अपने कार्य से लग जाता है। उसी प्रकार साधक को प्रचार की ओर ध्यान न देना चाहिए, उसमें गुणों का उदय होते ही संसार स्वयं उसके प्रभाव को मान प्रसारित करता है। सबके कल्याण के लिए निरंतर तपते रहना ही सूर्य का एक सीखने लायक गुण है)। कबूतर घर गृहस्थी के चक्करों में ही उलझा रहता है और अन्ततः व्याध्र के जाल में जा फंसता है। ठीक वैसे ही सांसारिक मनुष्य मोह, लोभ, वासना के अधीन हो जीवन पूर्ण कर देता है और काल के गाल में चला जाता है। परलोक के हित साधन के लिए कुछ भी नहीं कर पाता। बिल्ली को देखकर आंखें बन्द कर लेना भी कबूतर का शिक्षा लेने योग्य स्वभाव है।'

'हे राजन्! जो मिल जाए उसी में संतुष्ट रहना, भोगों के लिए व्यर्थ भाग-दौड़ न करना, अपने ही में मस्त तथा बाहर से उदासीन रहना। ग्रहण करने योग्य वस्तु को दूर ही से खींच लेना तथा निद्रारहित होने पर भी सोया हुआ-सा (उदासीन) रहना अजगर से मैंने सीखा है। बिना उद्योग किए ही उसे उसका आहार मिलता है और जितना मिलता है, वह उसी में संतुष्ट होकर पड़ा रहता है और के लिए उद्यम नहीं करता। यह संतोष और वैराग्य अजगर का परम गुण है। कर्मेन्द्रियों के होते हुए भी उनसे कम-से-कम चेष्टा करना और सजग रहते हुए भी सोया हुआ-सा लगना भी अजगर के ही विशिष्ट गुण हैं। सदा प्रसन्न, गम्भीर, अथाह व क्षोभरहित रहना तथा अपने गुणों को अपने भीतर ही छिपाए रखना, प्रदर्शन न करना मैंने समुद्र से सीखा है। वह न ग्रीष्म में घटता है न ही वर्षा में बढ़ता है। यह तटस्थता और अनुकूलता या प्रतिकूलता में सम रहना समुद्र का परम गुण है। छोटे तलाबों या नदियों की तरह नहीं, जो गर्मियों में सूख जाते और वर्षा में अपने तटों का अतिक्रमण कर जाते हैं। समुद्र तो समस्त नदी-नालों को स्वयं में लेकर भी शान्त बना रहता है। उपलब्धियों का घमंड या प्रदर्शन नहीं करता।'

'पतंगा अग्नि से सम्मोहित होकर उसके निकट जाता है और नष्ट हो जाता है। जैसे विषयी मनुष्य विषयों या काम (स्त्री) के आकर्षण में फंसकर नष्ट हो जाता है। अतः मनुष्य को अपनी इन्द्रियों व मन को वश में रखकर, माया से पृथक रहना चाहिए। अन्यथा उसे पतंगे के समान नष्ट हो जाना पड़ेगा, यह शिक्षा पतंगे से मिलती है। भंवरे से—स्थान-स्थान पर जाकर, छोटे-बड़े सभी फूलों से रस पीने के समान सार संग्रह, ज्ञान व गुणों के संग्रह करने की शिक्षा मिलती है। द्वार-द्वार पर जाकर भिक्षाटन की भी शिक्षा मिलती है तथा विभिन्न सुन्दर-सुन्दर व सुगंधित फूलों पर मंडराने के बाद

भी किसी फूल के प्रति आसक्त न होने की भी शिक्षा मिलती है। मधुमक्खी से यह शिक्षा मिलती है कि संग्रह (धन आदि) की प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि उम्र भर शहद इकट्ठी करती रहने के बाद भी उस शहद का उपयोग मधुमक्खी स्वयं नहीं कर पाती, कोई छत्ते में से शहद चुराकर ले जाता है और मधुमक्खी हाथ मलती रह जाती है। अतः मनुष्य को बस आज और अभी की चिन्ता करनी चाहिए। कल की नहीं अन्यथा उसे मधुमक्खी की भांति अन्त में पछताना पड़ेगा।'

'हाथी इतना बलवान होते हुए भी हाथी पकड़ने वालों के तिनकों से ढके गड्ढे पर रखी कागज की हथिनी के चक्कर में पड़कर गड्ढे में जा पड़ता है और बंध जाता है। उसी प्रकार स्त्री के सौंदर्याकर्षण में एक बार भी फंस गया मनुष्य विषय वासना की दलदल/गड्ढे में फंस जाता है। (निर्भय जंगल में मस्ती के साथ रहना हाथी से सीखने का गुण भी है।) हिरण से भी यह सीख मिलती है कि संन्यासी को कभी विषय-सम्बन्धी गीत तक न सुनने चाहिए, अन्यथा व्याध्र के संगीत से आकर्षित हो जाने वाले हिरण की भांति उन्हें भी फंस जाना पड़ता है। हरिण के गर्भ से उत्पन्न होने वाले ऋष्यश्रृंग मुनि भी विषय सम्बन्धी गान व नृत्य देख-सुनकर स्त्रियों के हाथ की कठपुतली बन गए थे, यह तुम जानते ही हो। इसके अलावा भीतर से उठती कस्तूरी की गंध से पगलाकर उसे बाहर खोजते हुए दौड़ना हिरण का स्वभाव है, जो हमें शिक्षा देता है कि शान्ति या परमात्मा हमारे ही भीतर है, उसे बाहर ढूंढना व्यर्थ है। एकाग्रचित्त होकर उसे अपने भीतर ही खोजना चाहिए।'

'मछली कांटे में लगे मांस के लोभ में पड़कर अपने प्राण गंवाती है। उसी प्रकार मनुष्य जीभ/स्वाद के चक्कर में पड़कर विभिन्न रोगों को आमंत्रित कर मृत्यु को प्राप्त होता है। अतः मन और इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए। (जीवन के लिए भोजन करना चाहिए, भोजन के लिए जीना नहीं चाहिए। उत्पन्न होते ही तैरना आरम्भ कर देना मछली का एक गुण भी है, जो विषम परिस्थितियों में भी जूझना सिखाता है।) धन की आशा से वेश्या, नीच और घृणित कार्य करती है। अतः लोभ से सदा बचना चाहिए, यह वेश्या से सीख मिलती है। (बहुत से पुरुषों के साथ रमण करके भी वह धन के अतिरिक्त और किसी की नहीं होतीं, यह दुर्गुण उसका एक गुण भी है, जो बताता है कि मनुष्य की दृष्टि केवल लक्ष्य (परमात्मा/मोक्ष) पर होनी चाहिए। मार्ग के सभी प्रलोभनों को भूल जाना चाहिए अथवा उनमें फंसना नहीं चाहिए। यह वेश्या से सीखने की बात है। व्यवहार कुशलता सांसारिक लोगों को वेश्या से सीखनी चाहिए। कुरर पक्षी से भी यह सीख मिलती है कि संग्रह न करें। धन पास में रहता है तो भय, चिन्ता, अनिद्रा, अशान्ति आदि साथ रहते हैं। धन पास न हो तो आदमी सुखी रहता है।

'घर में कोई भी समस्या हो, बच्चा खेल में मस्त रहता है। किसके साथ और कहां खेल रहा है? यह भेद बुद्धि भी उसको नहीं होती, जाति-पांति, ऊंच-नीच, विपरीत लिंग आदि का कोई भेद उसमें नहीं होता। अतः बालक से भेदरहित, निश्छल, सरल, मौज में या मस्त रहने तथा चिन्तामुक्त रहने की शिक्षा मिलती है।' (बालक के खेल

में लगे रहने तक मां गृहस्थी के कामों में लगी रहती है, किन्तु मां का स्मरण आने या भूख लगने पर जब वह रोता है तब मां सब काम छोड़कर उसके पास दौड़ती हुई आती है। इसी प्रकार मनुष्य जब तक सांसारिक प्रलोभनों में उलझा रहता है, तब तक परमात्मा भी उसकी ओर से निश्चिंत ही रहता है, किन्तु जब वैराग्य होने पर सब खेल तमाशे छोड़ मनुष्य अन्तर्मन से भगवान को पुकारता या उसके लिए छटपटाता है, तब भगवान सारे काम छोड़कर अपने भक्त के पास आ जाते हैं, यह भी बालक से ही हमें सीखने को मिलता है।)

'एक कुमारी कन्या को देखने वाले आए हुए थे। घर में तब कोई और न होने से उसी ने उनका सत्कार कर बैठाया और घर वालों के आने तक प्रतीक्षा करने को कहकर भीतर धान कूटने चली गई। धान कूटने में चूड़ियां छन-छन करने लगीं, उसे लगा कि अतिथि यह समझेंगे कि घर में मोटे काम करने वाला कोई नौकर तक नहीं है। अतः उसने सारी चूड़ियां तोड़कर कलाई में बस दो ही चूड़ियां रहने दीं। खन-खन थोड़ी कम हुई पर हुई फिर भी। अतः उसने कलाई में एक ही चूड़ी रहने दी और धान कूटने लगी। मैंने इस घटना को बाहर से देखा और यह सीखा कि बहुत से लोगों के एकसाथ रहने से कलह होती है। दो लोगों में भी बातचीत में समय तो नष्ट होता ही है। अकेला आदमी ही सुख-शांति से रहता हुआ अपने समय का इच्छानुसार सदुपयोग कर सकता है। बाण बनाने वाले कारीगर को मैंने अपने कार्य में इतना तत्पर देखा कि उसे राजा की सवारी निकलने तक का पता न चला, उससे मैंने एकाग्रचित्त होना सीखा तथा बाण की भांति लक्ष्य की ही ओर चलना सीखा। सांप से मैंने सीखा कि अकेले रहो, कभी मठ या आश्रम आदि न बनाओ। एक ही स्थान पर न रहो, आचरण द्वारा पहचाने न जाओ और किसी से सहायता न लेते हुए मौन रहो। घर के पचड़े में मत पड़ो। सांप तो किसी के भी बनाए घर में आराम से अकेला रहता है और बहुत कम बोलता है। (केंचुली में रहना और समय आने पर उसे बदल देना भी सांप का सीखने लायक गुण है।)'

'मकड़ी बिना किसी की सहायता के और बिना किसी बाह्य अवलम्ब के अपने ही थूक से जाला बनाती है और कीट-पतंगे तो जाले में फंसते हैं, किन्तु मकड़ी नहीं फंसती। उसी प्रकार भगवान भी बिना किसी बाह्य अवलम्ब के अपनी ही लीला से माया फैलाते हैं। सांसारिक लोग उसमें फंसते हैं, किन्तु भगवान या उनके तत्व को जानने वाला साधक उसमें नहीं फंसता। बाद में मकड़ी अपने ही जाले को निगल जाती है। ठीक वैसे ही प्रलय में भगवान अपने भीतर से उपजी माया को फिर अपने भीतर ही समेट लेते हैं। भृंगी कीड़े से यह शिक्षा मिलती है कि यदि प्राणी स्नेह, द्वेष या भय से भी जानबूझकर एकाग्र रूप में अपना मन किसी में लगा दें, तो उसे उसी वस्तु का स्वरूप प्राप्त हो जाता है, क्योंकि भृंगी जिस कीड़े को अपने रहने के स्थान पर बंद कर देता है। वह कीड़ा भयवश उसी का चिन्तन करता हुआ बिना पहले शरीर को त्यागे उसी शरीर से उसी के तद्रूप हो जाता है। अतः मनुष्य को सदैव परमात्मा का

ही चिंतन करना चाहिए। अपने गुरुओं से मैंने यह शिक्षा ली है। अतः मैं अपने शरीर के प्रति मोह नहीं रखता तथा सांसारिक प्रवृत्तियों से भी विरक्त रहता हूं। अपने मन, बुद्धि व इन्द्रियों को वश में रखता हुआ आत्मविस्मृत रहता हूं।'

'कृष्ण बोले—'अवधूत दत्तात्रेय से यह सुनकर यदु को ज्ञान हुआ और उन्होंने प्रणाम कर उनकी स्तुति की। फिर समस्त आसक्तियों को त्यागकर समदर्शी हो गए और अन्ततः मोक्ष प्राप्त किया। उसी प्रकार हे उद्धव, तुम भी समस्त आसक्तियों को त्याग कर जब समरूप हो जाओ तो निःसन्देह मुझी को प्राप्त हो जाओगे।'

'श्रीकृष्ण ने आगे कहा—'हे उद्धव! जैसे जलने वाली लकड़ी से जलाने व प्रकाशित करने वाली आग सर्वथा पृथक है, उसी प्रकार पंचमहाभूतों से निर्मित शरीर से आत्मा भी सर्वथा अलग ही है, किन्तु दोनों को एक मान लेने से भ्रम के अभ्यास के कारण ही जीव जन्म-मृत्यु के चक्र में फंसता है। आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होते ही जीव मुक्त हो जाता है। ज्ञानाग्नि, तपाग्नि और योगाग्नि ही माया और अविद्या को कर्म बन्धनसहित जला सकती है, किन्तु मेरी कृपा के अभाव में ये तीनों भी प्रज्वलित नहीं होतीं और मेरी कृपा अकेली ही (इन तीनों के बिना ही) माया, अविद्या और कर्मबन्धन को जलाकर मोक्ष प्रदान कर देती है। अतः फेर में न पड़ने वाले मुझे ही भजते हैं। सकाम कर्म ही बन्धनकारी या दुःखद होते हैं, निष्काम कर्म नहीं। अतः जो ऊपर कहे किसी भी मार्ग को न अपनाए वह निष्काम कर्म करता हुआ कर्मयोगी होकर भी अन्ततः मुझी को प्राप्त हो सकता है। अतः इनमें से कोई भी एक उपाय मुक्ति की इच्छा करने वाले पुरुष को अवश्य ही करना चाहिए।''

''हे परीक्षित!'' शुकदेव जी आगे बोले—''फिर उद्धवजी के पूछने पर श्रीकृष्ण ने बद्ध, मुक्त और भक्त जनों के लक्षण कहे, सत्संग की महिमा और कर्मों के त्याग की विधि कही, क्योंकि बिना सत्संग के विवेक नहीं होता और बिना ईश्वर की कृपा के सत्संग भी सुलभ नहीं होता है। तुम्हारे लिए मैं इसको अति संक्षेप में कहता हूं। सुनो—

''संसार वृक्ष के दो बीज पाप व पुण्य हैं। असंख्य वासनाएं जड़ और तीन गुण तने हैं। पंचमहाभूत इसकी प्रधान शाखाएं हैं, पांच विषय रस हैं, ग्यारह इंद्रियां उपशाखाएं हैं। जीव और ईश्वर दो पक्षी इसमें घोंसला बनाकर रहते हैं। इस वृक्ष पर वात्, पित्त, कफ तीन प्रकार की छाल हैं। सुख-दुःख दो फल हैं। यह विशाल वृक्ष सूर्यमण्डल तक फैला है। सूर्यमण्डल का भेदन करके जाने वाले पुनः संसार में नहीं लौटते, किन्तु कर्मबन्धन में फंसे लोग इसी वृक्ष पर दुःख भोगते हैं। भगवान एक ही हैं—शेष सब माया है। माया भी भगवान का ही रूप है। यह बात जान लेना ही वेद रहस्य जान लेना है। अनन्य भक्ति अथवा सांख्य योग या तप द्वारा ज्ञान की कुल्हाड़ी तेज करके धैर्य व सावधानी द्वारा जीव भाव (अहं) को काट दो, फिर परमात्म स्वरूप होकर उन वृत्तिरूपी अस्त्रों (ज्ञान आदि) को भी त्याग दो और अपने अखण्ड स्वरूप में ही स्थित हो जाओ। इसी प्रकार कर्मयोग के उपाय से भी ऐसी ही अखण्ड स्थिति प्राप्त की जा सकती है, किन्तु कर्मों का त्याग (कर्तायन का त्याग) अनिवार्य है। श्रद्धा, विश्वास और ज्ञान—ये

तीन ही मनुष्य के अस्त्र हैं, जो अज्ञान, अविद्या व माया को काट सकते हैं। इनमें से एक हो तो बाकी दोनों भी आ जाते हैं।'

'फिर भगवान कृष्ण ने हंस रूप में सनकादि मुनियों को दिए उपदेश का भी वर्णन किया, जिसका सार यह है कि जीव का अहं (मैं पन) ही उसे सीमित कर परमात्मा से पृथक कर देता है। योग, ज्ञान, भक्ति आदि उपायों द्वारा जब साधक अपने उस अहं को गिरा देता है तो वह परमात्मा का ही अंश हो जाता है, जिस प्रकार बूंद अपने आकार के कारण सागर से पृथक हो क्षुद्र हो जाती है, किन्तु अपना आकार मिटाकर जब वह स्वयं को सागर में लीन कर देती है तब स्वयं सागर हो जाती हैं। इसी प्रकार अहं नष्ट होने से जीवात्मा भी परमात्मा हो जाता है।'' शुकदेव जी ने कहा।

शुकदेव जी आगे बोले—''उद्धवजी को भक्तियोग का मर्म समझाते हुए कृष्णजी ने कहा—'जो अपने अन्तःकरण से सब प्रकार से मुझी को समर्पित हो जाता है, मैं उसकी आत्मा में परमान्द रूप में स्फुरित होने लगता हूं। अपने को मुझे सौंप देना ही भक्ति है और मैं सदा भक्तों के बस में हूं, किन्तु अनन्य श्रद्धा और अनन्य भक्ति के बिना मैं पकड़ में नहीं आता। अतः निरन्तर मेरा ही चिन्तन करते हुए तुम अपना चित्त शुद्ध कर लो, फिर मुझे स्वयं ही में विराजमान पाओगे। सुखद व सम आसन पर सीधा बैठकर, दोनों हाथ गोद में रखकर दृष्टि नासिकाग्र पर जमाओ। पूरक, कुम्भक, रंचक आदि प्राणायामों के द्वारा नाड़ियों का शोधन करो। इस अभ्यास के साथ इन्द्रियों को जीतने का भी अभ्यास करो। फिर ॐकार का चिन्तन करते हुए, प्राणों के द्वारा उसे ऊपर ले आओ और घण्टानाद के समान स्वर स्थिर करो। तदुपरांत मेरी मनोहर छवि को स्मृति में लाते हुए सूक्ष्म चिंतन द्वारा उसका साक्षात्कार करो। मन और इन्द्रियां जब पूरी तन्मयता से मेरे स्वरूप को ध्यान करेंगी, तब मैं शनैः शनैः प्रत्यक्ष होने लगूंगा। इस प्रकार ध्यान द्वारा साधक मुझ सर्वात्मा को अपने में ही अनुभव करने लगता है। इस स्थिति को बढ़ाते जाना चाहिए।

'हे उद्धव! जब साधक का चित्त निर्बाध रूप से मुझी में तल्लीन होने लगता है, तब अणिमा, महिमा, लधिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशिता, ईशिता और कामावसायिता—यह आठ सिद्धियां साधक को प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त—भूख-प्यास आदि के वेगों का न होना, दूरदर्शन, दूरश्रवण, स्थानांतरण (मन के साथ शरीर की यात्रा), इच्छारूपी होना, संकल्प सिद्धि, आकाश गमन आदि बहुत-सी सिद्धियां साधक को प्राप्त होने लगती हैं। इन सिद्धियों के लोभ में फंसकर भी जो साधक निरन्तर मेरा ही चिन्तन करता चला जाता है, वह निश्चित ही मुझे प्राप्त करता है।''

शुकदेव ने आगे कहा—''हे राजन्! फिर श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों को बताते हुए वर्णों व आश्रमों के धर्मों का भी उद्धवजी से वर्णन किया तथा भक्ति, ज्ञान एवं यम-नियम आदि साधनों का भी वर्णन किया। यम बारह हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंगता, लज्जा, असंचय, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा और अभय। नियम भी बारह ही हैं—शौच, स्नान, जप, तप, हवन, श्रद्धा, अतिथिसेवा, पूजा, तीर्थयात्रा,

परोपकार, संतोष और गुरुसेवा। इन यम व नियमों का पालन-तपस्वी हो, योगी हो अथवा भक्त हो, सभी को करना चाहिए। हे परीक्षित! फिर योगों के तीन रूप—भक्तियोग, कर्मयोग व ज्ञानयोग तथा गुण-दोष व्यवस्था का स्वरूप व रहस्य आदि कहते हुए कृष्ण ने तत्वों की संख्या एवं पुरुष प्रकृति विवेक के विषय में भी कहा और एक तितिक्षु ब्राह्मण का इतिहास कहते हुए सांख्य योग की भी चर्चा की। तीन गुणों वाली (सत, रज, तम) वृत्तियों का भी निरूपण किया। (इस प्रकार संक्षेप में भागवत् पुराण को ही दुबारा कहा। पुनरावृत्ति के भय से हमने इसे संक्षेप में लिखा है।) फिर क्रियायोग और भागवत धर्मों का तथा परमार्थ का निरूपण करते हुए पुरूखा के उर्वशी के मोह में फंसने तथा अन्त में वैराग्य उत्पन्न होने की कथा भी कही। इस प्रकार उद्धवजी ने कृष्ण का उपदेश सुनने के बाद कृष्ण को प्रणाम कर बद्रिकाश्रम को प्रस्थान किया और अपना चित्त विशुद्ध रूप से श्रीकृष्ण भगवान में ही स्थिर कर दिया।''

'परीक्षित द्वारा आगे जानने की जिज्ञासा प्रकट करने पर शुकदेव बोले—''इस प्रकार उद्धवजी को बद्रिकाश्रम भेजकर श्रीकृष्ण समस्त यदुवंशियों के साथ प्रभास क्षेत्र को चले गए। वहां कृष्ण के निर्देशानुसार यादवों ने शांतिपाठ आदि मंगल कार्य किए, किन्तु दैव ने उनकी बुद्धि हर ली थी, अतः वे सब उस मैरेयक नाम की मदिरा का पान करने लगे, जो स्वाद में मधुर होकर भी मद उत्पन्न करने के कारण विनाशकारी होती है। तब मदिरा के नशे में वे एक-दूसरे से झगड़ बैठे। बात बढ़ गई और वाक्युद्ध से द्वन्द्व युद्ध तथा द्वन्द्व युद्ध से शस्त्रयुद्ध पर आ गई। कृष्ण की प्रेरणा से मूढ़ हुए यादव मदोन्मत्त होकर जंगली पशुओं की भांति एक-दूसरे के प्राणों के प्यासे हो गए। तब प्रद्युम्न साम्ब से, अक्रूर भोज से, अनिरुद्ध सात्यकी से, सुभद्र संग्रामजित् से, गद-गद पुत्रों से, सुमित्र सुरथ से, निशठ व उल्मुक आदि भी सहस्त्रजित्, शतजित् व भानु आदि यादवों के साथ भिड़ गए। दाशार्ह, वृष्णि, अंधक, सात्वत, मधु तथा अबुर्द आदि वंश के यादव भी—माथुर, शूरसेन, विसर्जन, कुकुर व कुंति आदि वंश के यादवों से उलझ गए। उस समय पिता-पुत्र, मामा-भानजा, चाचा-भतीजा, भाई-भाई, नाना-नाती, दादा-पोता, फूफा-भतीजा, मौसा-भानजा तथा मित्र-मित्र परस्पर लड़ रहे थे।'

'हे राजन्! जब उनके धनुष, तलवार, गदा आदि शस्त्र टूट गए तब वे समुद्र तट पर उगी एरका नाम की कुशा उखाड़कर ही एक दूसरे के सीनों व गर्दनों में उतारने लगे। यह वही घास थी जो ऋषियों के शाप से उत्पन्न मूसल के चूरे से पैदा हुई थी। उनके हाथों में आते ही वह कुशा वज्र के समान कठोर हो गई। श्रीकृष्ण द्वारा रोके जाने पर वे कृष्ण व बलराम को भी अपना शत्रु समझ, उन्हें मारने को दौड़े। तब बलरामजी कृष्ण सहित क्रोधित होकर वही घास उखाड़कर उनको मारने लगे। इस प्रकार स्पर्धामूलक क्रोध और शक्ति अहंकार तथा मदिरा के नशे के कारण वे सभी यादव एक-दूसरे के प्राण ले बैठे। पूरे कुल को नष्ट हुआ जान बलरामजी अतिविरक्त होकर समुद्रतट पर ही एकाग्रचित्त से आसन पर बैठे और अपने आत्मा को परमात्मा का चिन्तन करते हुए आत्मस्वरूप में ही स्थिर कर देह का त्याग कर दिया (योग समाधि ले ली)। कृष्ण

ने जब बलरामजी को परमपद में लीन होते देखा तो वे स्वयं एक पीपल के वृक्ष के नीचे धरती पर ही बैठ गए।'

'हे परीक्षित! तब जरा नामक बहेलिए ने वृक्ष के दूसरी ओर से देखा तो उसे श्रीकृष्ण का तलवा (जो वृक्ष से बाहर निकला हुआ था) किसी मृग का मुंह मालूम हुआ और उसने उसे अपने बाण से बींध दिया। यह वही बाण था, जिसमें ऋषि शाप से उत्पन्न मूसल के लोह टुकड़े की नोक लगी हुई थी। तब वृक्ष के इस ओर आकर कृष्ण के तलवे में तीर लगा देख वह अत्यंत पछताता हुआ क्षमा मांगने लगा। कृष्ण बोले—'अरे तू भयभीत न हो। यह तो तूने मेरी ही इच्छा से मेरा कार्य किया है। जा तू स्वर्ग में निवास कर।' तब वह बहेलिया प्रसन्नतापूर्वक कृष्ण की तीन बार परिक्रमा व प्रणाम करके स्वर्ग को चला गया। उसी समय कृष्ण को खोजता हुआ उनका सारथि दारुक भी वहां आ गया और कृष्ण को उस अवस्था में देखकर शोक करने लगा। तब कृष्ण ने उसे समझाया और सांत्वना देकर कहा—'तुम द्वारका चले जाओ और वहां स्त्रियों आदि को यहां की स्थिति से अवगत कराके अर्जुन के संरक्षण में मेरे माता-पिता सहित इन्द्रप्रस्थ भेज दो, क्योंकि मेरे न रहने पर समुद्र द्वारका को डुबो देगा और तुम भागवत् धर्म का आश्रय लेकर शांत हो जाओ।' इस प्रकार दारुक को समझाकर द्वारका भेजने के पश्चात् श्रीकृष्ण अपने दिव्य-अस्त्रों के साथ गरुड़ रथ पर आसीन होकर अपने धाम को लौट गए। (इसी समय में कलियुग पृथ्वी पर प्रवेश कर गया।) ब्रह्मा आदि देवताओं ने श्रीकृष्ण का पुष्प वर्षा करके स्वागत किया। प्रातःकाल श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन के इस प्रसंग का श्रवण कीर्तन एकाग्रता व भक्तिपूर्वक करने वाला मनुष्य भगवान का सर्वश्रेष्ठ परमपद प्राप्त करता है।''

शुकदेव जी आगे बोले—''दारुक द्वारा सब समाचार जान, उग्रसेन, वसुदेव, देवकी, रोहिणी तथा कृष्ण-बलराम व अन्य यदुओं की स्त्रियां अत्यंत शोकग्रस्त हुए। वसुदेव जी ने तत्क्षण अपने प्राण त्याग दिए। तब यदु स्त्रियां एवं कृष्ण पटरानियां आदि अपने-अपने पतियों का ध्यान कर अग्नि में प्रविष्ट हो गईं (सती हो गईं या अग्नि समाधि ले ली)। अर्जुन ने श्रीकृष्ण के गीता उपदेश का स्मरण कर बहुत कठिनाई से स्वयं को संभाला और यादवों का पिण्डदान व श्राद्ध आदि करवाया और बचे हुए स्त्रियों-बच्चों व वृद्धों के साथ इन्द्रप्रस्थ आए तथा अनिरुद्ध पुत्र वज्र का राज्याभिषेक कर दिया। द्वारका को समुद्र ने डुबो दिया (एकमात्र कृष्ण का निवास छोड़कर) भगवान कृष्ण के सदावास करने से वह स्थान स्मरण मात्र से पापों का नाशक है, फिर दर्शन करने पर तो कहना ही क्या? हे राजन्! पाण्डवों ने जब यदुकुल के विनाश तथा श्रीकृष्ण के स्वधाम को लौटने का समाचार अर्जुन से सुना तो उन्होंने भी तुम्हारा राज्याभिषेक करके हिमालय की यात्रा की (संन्यास ले लिया)। श्रीकृष्ण की जन्म लीला व कर्म लीला को सम्पूर्ण सुनने वाला समस्त पापों से मुक्त हो कृष्ण के चरणों में पराभक्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार तुम्हारे कहने पर श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र मैंने तुमको सुना दिया है, जो परम कल्याणकारी है।''

☐

राजा परीक्षित बोले—"हे महामुने! श्रीकृष्ण के परमधाम को चले जाने के बाद पृथ्वी पर किस वंश का राज्य हुआ? तथा अब किसका राज्य होगा? यह बताने की भी कृपा कीजिए।"

तब शुकदेव जी ने कहा—"जैसा कि पहले बताया था—जरासंध के वंश का अंतिम राजा पुरञ्जय/रिपुञ्जय होगा। शुनक नामक उसका अमात्य उसे मारकर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाएगा। प्रद्योत के पुत्र-पौत्र आदि क्रमशः पालक, विशाखयूप, राजक व नन्दिवर्द्धन होंगे। प्रद्योतवंश में यही पांच राजा होंगे जो 'प्रद्योतन' कहे जाएंगे और एक सौ अड़तीस वर्ष तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे।'

'इसके बाद शिशुनाग का राज्य होगा। शिशुनाग के वंश में पुत्र-पौत्रादिक के क्रम से दस राजा—काकवर्ण, क्षेमधर्मा, क्षेत्रज्ञ, विधिसार, अजातशत्रु, दर्भक, अजय, नन्दिवर्धन और महानन्दी (दसवां स्वयं शिशुनाग) होंगे जो तीन सौ साठ वर्ष पृथ्वी का शासन करेंगे। महानन्दी की शूद्रा पत्नी से नन्द उत्पन्न होगा, जो बहुत बलवान होगा। महानन्दी को महापद्म भी कहा जाएगा, जो क्षत्रिय राजाओं के विनाश का कारण बनेगा, अतः महानन्दी और नन्द से राजा प्रायः शूद्र व अधार्मिक होने लगेंगे। उनके सुमात्य आदि 8 पुत्र सौ वर्षों तक पृथ्वी को भोगेंगे। कौटिल्य तथा चाणक्य नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण नन्द का उसके आठ पुत्रों सहित नाश करेगा। नन्द के एक छत्र राज्य की समाप्ति पर मौर्यवंशी पृथ्वी पर शासन करेंगे। इनमें पहला चन्द्रगुप्त होगा, जिसे चाणक्य राज्याभिषिक्त करेगा। चन्द्रगुप्त का पुत्र-पौत्रादि का क्रम इस प्रकार होगा—वारिसार, अशोकवर्द्धन, सुयश, संगत, शालिशूक, सोमशर्मा, शतधन्वा और बृहद्रथ। ये 137 वर्ष राज्य करेंगे, तब बृहद्रथ का सेनापति पुष्यमित्र शुंग उसे मारकर राजा बन जाएगा और शुंग वंश शासन करेगा। पुष्पमित्र के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः अग्निमित्र, सुज्येष्ठ, वसुमित्र, भद्रक, पुलिन्द, घोष तथा वज्रमित्र, भामवत्, देवभूति। ये 112 वर्ष पृथ्वी पर शासन करेंगे।'

'लम्पट देवभूति को उसका मंत्री वसुदेव मार डालेगा। यह कण्ववंशी होगा। अतः तब कण्ववंशियों का शासन हो जाएगा। वसुदेव का पुत्र भूमित्र, पौत्र नारायण व प्रपौत्र सुशर्मा होगा। ये चारों 'काण्वायन' कहे जाएंगे और 347 वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेंगे। तब सुशर्मा का शूद्र सेवक बली सुशर्मा को मारकर राजा बनेगा। बली के बाद उसका भाई कृष्ण राजा होगा। कृष्ण के पुत्र-पौत्रादि क्रमशः शान्तकर्ण, पौर्णमास, लम्बउदर, चिबिलक, मेधस्वाति, अटमान, अनिष्टकर्मा, हालेय, तलक, पुरीषभीरु, सुनन्दन, चकोर होंगे। चकोर के शिवस्वाति नामक 8 पुत्र, पुरीमान्, मेदःशिरा, शिवस्कन्द, यज्ञश्री, विजय, चन्द्रविज्ञ तथा (उसका भाई) लोमधि—ये 30 राजा 456 वर्ष पृथ्वी पर राज्य करेंगे (बली के अन्धकजाति का होने से इन्हें अन्धक वंशीय कहा जा सकता है)।'

'फिर सात आभीर, दस गर्दभी, सोलह कंक, आठ यवन और चौदह तुर्क राजा पृथ्वी का राज्य करेंगे। इसके बाद दस गुरण्ड राजा। ये सब एक हजार निन्यानबे वर्ष पृथ्वी को भोगेंगे। तब ग्यारह मौन नरेश भूमि पर तीन सौ वर्ष राज्य करेंगे। फिर भूतनन्द, वंगिरि, शिशुनन्दि, यशोनन्दि और प्रवीरक नाम के राजा पुत्र पौत्रादिक के क्रम से 106 वर्ष राज्य करेंगे। इनके 13 पुत्र बाहिलक कहे जाएंगे। उसके बाद पुष्पमित्र और उसके पुत्र दुर्मित्र का शासन रहेगा। सात अन्ध्रदेशीय, सात कौशलदेशीय, कुछ विदूर भूमि तथा कुछ निषध देश के राजा भी राज्य करेंगे। फिर मगध देश में विश्वस्फूर्जि राज्य करेगा जो अत्यंत दुष्ट होगा। कलियुग की वृद्धि के साथ-साथ ब्राह्मण संस्कारहीन और राजा शूद्र तुल्य हो जाएंगे। तब सिन्धुतट, चन्द्र भागतट, कौन्तीपुरी और काश्मीर मंडल पर शूद्रों के संस्कार वाले व ब्रह्मतेज से हीन नाममात्र के द्विजों व म्लेच्छों का राज्य होगा।'

'आचार विचार से म्लेच्छ ये राजा एक ही समय में विभिन्न प्रान्तों में राज्य करेंगे। ये सभी क्रूर व अत्याचारी होंगे और प्रजा का खून चूसेंगे। इनकी शक्ति व आयु थोड़ी होगी। इनके शासन में 'यथा राजा तथा प्रजा' के सिद्धांतानुसार प्रजा भी वैसी ही हो जाएगी और एक-दूसरे का वध करने व उत्पीड़न करने में ही नष्ट होती जाएगी।''

शुकदेवजी ने आगे कहा—''इस प्रकार कलियुग के बढ़ने के साथ-साथ धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरण शक्ति का लोप होता जाएगा। धनवान को ही कुलीन व सद्गुणी तथा शक्तिशाली को ही न्यायकर्ता व श्रेष्ठ समझा जाएगा। तब पारस्परिक रुचि से ही (Love Mariage) विवाह होंगे। धूर्त और छल-कपट वाला ही व्यवहार कुशल समझा जाएगा। स्त्री और पुरुष की श्रेष्ठता उनके शील-संयम व गुण से नहीं अपितु रति कौशल से मापी जाएगी। ब्राह्मण अपने गुण स्वभाव से नहीं यज्ञोपवीत व पाखण्ड से पहचाने जाएंगे। गाल बजाने वाला और

वाक्पटु ही पंडित और विज्ञ माना जाएगा। निर्धन को ही दोषी माना जाएगा, समस्त न्याय, मर्यादा आदि नष्ट हो जाएंगी। लोग बेईमान हो जाएंगे और परिश्रम करने के स्थान पर दलाली खाने लगेंगे। स्त्रियां स्वच्छन्दाचरण करने वाली होंगी और उनकी कमाई से ही पुरुष अपना कार्य चलाएंगे। शृंगार ही सौंदर्य और स्नान का पर्याय बन जाएगा। ढीठ को सच्चा माना जाएगा। आजीविका कमा लेना ही एकमात्र पुरुषार्थ व जीवन का लक्ष्य हो जाएगा। बलवान ही राजा बन जाएगा। सदाचरण करने वाला, आस्तिक या धार्मिक जो कोई मिल जाएगा तो उसे ढोंगी समझा जाएगा। लुटेरों और राजाओं में कोई अन्तर न रहेगा। विवशता का लाभ उठाना ही कौशल माना जाएगा। प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाएगा, ऋतुओं का समय व स्वभाव बदल जाएगा। मनुष्यों की बुद्धि, शक्ति, सामार्थ्य व आयु सीमित हो जाएगी। आयु क्षीण होती जाएगी और कलियुग की पराकाष्ठा पर आयु मात्र 20-30 वर्ष ही रह जाएगी। छोटे-बड़ों का सम्मान न करेंगे। रिश्तों व भगवान के प्रति श्रद्धा नष्ट हो जाएगी। उचित-अनुचित में भेद न रहेगा। शासनसूत्र पुरुषों के हाथ से निकलकर स्त्रियों के और बाद में उनके हाथ से भी निकलकर नपुंसकों के हाथ में आ जाएगा।'

'तब शम्भल-ग्राम में विष्णुयश नामक ब्राह्मण के घर भगवान कल्कि अवतार लेंगे। वे देवदत्त नामक तीव्रगामी अश्व पर सवार होकर तलवार द्वारा दुष्टों का विनाश करेंगे और फिर सतयुग आरम्भ होगा। जब चन्द्रमा, सूर्य, बृहस्पति एक ही समय में एक साथ पुष्य नक्षत्र के प्रथम पल में प्रवेश करते हैं, तब उनके एक ही राशि में आने से सतयुग का प्रारम्भ होता है। इस प्रकार समस्त सूर्यवंशियों और चन्द्रवंशियों का संक्षेप में तुमसे वर्णन कर दिया (जो हुए और जो होंगे दोनों का ही), तुम्हारे जन्म से लेकर राजा नन्द के अभिषेक तक 1000 वर्ष व एक सौ 15 वर्ष का समय लगेगा। कलियुग की आयु देवताओं की गणना से बारह सौ वर्ष तथा मनुष्यों की गणना से चार लाख 32 हजारवर्ष है। जब सप्तऋषि मघा नक्षत्र पर विचरते हैं तब कलियुग का आरम्भ होता है। नन्द के राज्य से कलियुग अत्यंत वृद्धि को प्राप्त होगा तथा कल्कि अवतार के बाद से कलियुग के अन्त में सतयुग का उदय होगा। यह केवल मनुवंश को तुमसे संक्षेप में कहा। कलियुग के अन्त में कलापग्राम में योगबल से स्थित शन्तनु के भाई देवापि (चन्द्रवंशी) तथा इक्ष्वाकुवंशी मरु (सूर्यवंशी) भगवान की आज्ञा से फिर आएंगे और वर्णाश्रम व्यवस्था का विस्तार करेंगे। हे राजन्! रंक हो अथवा महान राजा सभी को काल के गाल में जाना होता है। यह जिन महान और अद्वितीय राजाओं की तुमसे कथा कही, उन महावीरों का भी अब नाम ही शेष रह गया है, फिर साधारण मनुष्य की तो औकात ही क्या है? अतः कुल का, जाति का, शक्ति का, ऐश्वर्य का, पद का, ज्ञान का अथवा अपने गुणों या आयु का, नाम का और रूप आदि का घमंड तो करना ही नहीं चाहिए। तुम देखते ही हो कि सृष्टि की आयु

की तुलना में मनुष्य की आयु तो बुलबले के जीवन से भी कम है—फिर भी मनुष्य अपनी मृत्यु को भूलकर अहं करता है और कर्मजाल में फंसता है। यह भगवान की माया का ही प्रभाव है।"

'कलियुग के प्रभाव से मुक्त रहने अथवा उसके दोषों से बचने का उपाय पूछने पर शुकदेव जी परीक्षित से बोले—"धर्म के चार चरण-सत्य, दया, तप और दान होते हैं। प्रत्येक युग में उसका एक-एक चरण क्रमशः घट जाता है। अधर्म के भी चार चरण—असत्य, हिंसा, असंतोष और कलह होते हैं, जो युग प्रभाव से बढ़ते हैं। जब मन, बुद्धि और इन्द्रियां सत्यगुण में स्थित होकर अपना काम करते हैं—तब सतयुग समझना चाहिए। तब मनुष्य तप व ज्ञान से अधिक प्रेम करने लगता है, रजोगुण में मन बुद्धि व इंन्द्रियों का स्थिर होकर काम करना ही त्रेतायुग है। तब मनुष्य धर्म, अर्थ व लौकिक पारलौकिक सुख भोगों की ओर मुड़ता है। द्वापर में रजोगुण और तमोगुण का मिश्रण होता है। तब लोभ, अभिमान, असंतोष व मत्सर आदि दुर्गुण मनुष्य में आने लगते हैं। कलियुग में तमो गुण में ही मन, इन्द्री व बुद्धि स्थित रहते हैं, अतः तब झूठ, कपट, हिंसा, शोक, भय, दीनता, आलस्य, मर्यादाहीनता, परपीड़न आदि दुर्गुण उत्पन्न होने लगते हैं। इस प्रकार कलियुग के तो अनेकों दोष हैं। उन सबसे बचने का एकमात्र सरल उपाय भगवान के नामों का कीर्तन ही है। सब दोषों का मूल स्रोत अन्तःकरण है। भगवान के संकीर्तन, लीला श्रवण, ध्यान, पूजन आदि से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और भगवान उसमें आ बसते हैं अतः एक-दो क्या करोड़ों जन्मों के पापों का नाश हो जाता है। पाप ही कलियुग का प्रधान दोष है। अतः मनुष्य को कृष्ण का संकीर्तन करना चाहिए। सतयुग में जो प्रभाव ध्यान द्वारा, त्रेता में यज्ञों द्वारा और द्वापर में पूजा द्वारा होता है, वहीं आसक्तियों के नाश का प्रभाव कलियुग में केवल कीर्तन द्वारा ही प्राप्त होता है। हे राजन्! तुम्हारी मृत्यु का समय भी निकट आ रहा है—अतः तुम भी अन्तःकरण का शोध न कर, परमात्मा को हृदय में धारण करो, इससे तुमको परम गति प्राप्त होगी।"

शुकदेव जी आगे बोले—"मैं अब तुमको चार प्रकार की प्रलय भी बताता हूं, फिर अन्तिम उपदेश दूंगा। सुनो—युगों और कल्पों के विषय में तो तुमसे कह ही आया हूं। कल्पांत में कल्प जितने ही समय का प्रलय होता है। कल्प को ब्रह्म दिन और प्रलय को ब्रह्म रात्रि भी कहते हैं। उस समय तीनों लोक लीन हो जाते हैं। इस अवसर पर ब्रह्मा सारे विश्व को स्वयं में लीन कर लेते हैं और शेषशायी विष्णु भी शयन करते हैं। इसको नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है। इस प्रकार ब्रह्मदिन व ब्रह्मरात्रियों से जब ब्रह्मा की आयु 100 ब्रह्मवर्ष (मनुष्यों के गणित से दो परार्द्ध) पूर्ण हो जाती है तब महतत्व, अहंकार व पंचतन्मात्रा ये सातों प्रकृतियां अपने मूलकारण प्रकृति में लीन हो जाती हैं—तब उसको प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। इसमें पूरा ब्रह्माण्ड ही अपने

कारण रूप में लीन हो जाता है। संकर्षण भगवान की मुखाग्नि पूर्व ब्रह्माण्ड को जला डालती है। अत्यंत संतप्त होकर तदुपरांत वर्षों तक भयंकर वर्षा होकर सब कुछ जलमग्न हो जाता है। जल प्रलय होने के बाद जल पृथ्वी को ग्रस लेता है। फिर वायु-जल को और आकाश वायु को ग्रस लेता है। आकाश तामस अहंकार में और तामस अहंकार सात्विक अहंकार में लीन हो जाता है। फिर यह तत्व सात्विक अहंकार को और सत्त्व आदि गुण महतत्व को ग्रस लेते हैं। फिर अव्यक्त प्रकृति सत्त्व आदि गुणों को ग्रस लेती है। तब प्रकृति ही शेष रहकर अपनी साम्यावस्था को प्राप्त होती है। तब सब शून्य हो जाता है। उस अवस्था का तर्क द्वारा अनुमान करना भी कठिन है। वह प्राकृत प्रलय कही जाती है। उस समय पुरुष व प्रकृति (चेतन व जड़) दोनों की शक्तियां काल प्रभाव से क्षीण हो जाती हैं, जिससे वे अपने मूलस्वरूप में लीन हो जाते हैं। तब शून्य के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहता।'

'चौथी प्रलय 'आत्यन्तिक प्रलय' कही जाती है, इसी को मोक्ष भी कहते हैं। अहंकार ही मोक्ष में बाधक होता है। सूर्य से ही उत्पन्न व सूर्य से ही प्रकाशित होने वाला बादल जिस प्रकार सूर्य को ढक लेता है। उसी प्रकार ब्रह्म से ही उत्पन्न व प्रकाशित होने वाला अहंकार माया के वशीभूत होकर ब्रह्म को भुला बैठता है। ब्रह्म के साक्षात्कार और जीव के मध्य यह अहंकार बाधक बन जाता है। जब ज्ञान या श्रद्धा द्वारा यह अहंकार नष्ट हो जाता है तब जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं रह जाता। जीव अपनी ही आत्मा में परमात्मा को साक्षात् करता हुआ परमात्मा में विलीन हो जाता है। इस विलय को आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं और वैसे नित्य जन्म-मरण के रूप में, संघटन-विघटन के रूप में प्रतिक्षण उत्पत्ति व प्रलय होते ही रहते हैं, किन्तु काल की सूक्ष्म गति के कारण मनुष्य को उनका प्रायः आभास भी नहीं होता।'

'हे राजन्! यह सब विष्णु की ही लीला है, जिसे स्वयं ब्रह्मा भी पूरी तरह कह नहीं सकते। मैंने अपने पिता कृष्ण द्वैपायन व्यास से यह वेद तुल्य भागवत्संहिता का अमृत उपदेश प्राप्त किया था। मेरे पिता ने इसे देवर्षि नारद से और नारदजी ने सनातन ऋषि नर-नारायण से सुना था। अब मैंने इसको तुम्हें सुनाया। कालांतर में जब शौनक आदि ऋषि नैमिषारण्य में बहुत बड़ा ब्रह्म सत्र करेंगे, तब उनके पूछने पर पौराणिक वक्ता श्रीसूतजी उनको इसी संहिता को सुनाएंगे।'

'हे परिक्षित! इस पुराण में बार-बार श्रीविष्णु ही का संकीर्तन हुआ है। उन्हीं की लीलाओं का वर्णन हुआ है। अविद्या/माया ही ब्रह्म को जीव बना देती है, किन्तु देहयांत हो जाने या अहंकार की सीमाएं नष्ट हो जाने पर जीव ही ब्रह्म हो जाता है। वास्तव में जीव को स्वयं के अब्रह्म होने की प्रतीति होती है—जिसका कारण माया ही है। अपने स्वरूप को भुला देने वाली इसी माया को यह भागवत् पुराण नाश करता

है और जीव को जन्म-मृत्यु व कर्मबन्धन के चक्र में फंसना नहीं पड़ता। अतः हे परीक्षित! तुम अपने हृदय व बुद्धि को शुद्ध करके अपने अन्तर में उस परमात्मा का साक्षात्कार करो। अपने स्वरूप को पहचानो। तब तुम्हें ब्राह्मण के शाप से प्रेरित तक्षक का भय नहीं रहेगा। तुम्हारे पूछे गए समस्त प्रश्नों का उत्तर मैंने तुमको दे दिया है। अब और कुछ जानने सुनने की इच्छा हो, तो वह कहो। मैं तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान करूंगा।''

'तब परीक्षित उन्हें प्रणाम करके बोले—''भगवन! आपकी कृपा से मेरी समस्त शंकाओं और जिज्ञासाओं का अन्त हो गया है। श्री भगवत् पुराण के श्रवण कर लेने पर मुझे कुछ भी जानना शेष नहीं रह गया है। मैं स्वयं को परिपूर्ण और परमानन्दित अनुभव कर रहा हूं। ब्रह्म और आत्मा की एकता का साक्षात्कार कर मैं परम शान्ति स्वरूप ब्रह्म में स्थित हो गया हूं। अब मुझको अपनी मृत्यु के निमित्त तक्षक से तो क्या दल की दल मृत्युओं से भी कुछ भय नहीं रह गया है। मैं पैदा ही कब हुआ था जो मरुंगा? मैं तो सदा से था और सदा रहूंगा। यह जो मैंने परीक्षित नाम का चोला धारण किया है—इसका समय पूरा हो जाएगा तो यह नष्ट हो जाएगा, किन्तु मैं नहीं। हे प्रभो! अब आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं मौन होकर कामनाओं के संस्कार से रहित चित्त को इन्द्रियातीत परमात्मा के स्वरूप में विलीन कर इस देह को छोड़ दूं और अपने वास्तविक स्वरूप में लीन हो जाऊं।' इस प्रकार कहकर परीक्षित वहां से चले गए और गंगातट पर आसन बिछाकर महायोग में स्थित हो गए, तब तक्षक ने उनको आकर डसा और उनका देह भस्म हो गया, किन्तु परीक्षित तो पहले ही ब्रह्म में स्थित हो चुके थे।''

सूतजी आगे बोले—''जनमेजय अपने पिता परीक्षित की, तक्षक द्वारा मृत्यु का समाचार सुना तो वह अत्यंत क्रुद्ध होकर ब्राह्मणों के साथ विधिपर्वूक सर्पों का अग्निकुंड में हवन करने लगा। तक्षक तब भयभीत हो इन्द्र की शरण में गया। बहुत से सर्पों के नष्ट हो जाने पर भी तक्षक को आया न देख जनमेजय ने ब्राह्मणों से कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि वह इन्द्र की शरण में चला गया है। तब जनमेजय ने ब्राह्मणों से कहा कि वे तक्षक सहित इन्द्र को भी आवाहनित कर यज्ञकुण्ड में गिरा दें। ब्राह्मणों ने उसी प्रकार के आकर्षण मंत्र का पाठ आरम्भ कर दिया। तब इन्द्र ने तक्षक के साथ घबराकर अपने विमान से भागना चाहा किन्तु मंत्रों के प्रभाव से विमान भी चक्कर काटता हुआ यज्ञ कुण्ड की ओर जाने लगा। तब अंगिरापुत्र बृहस्पति जनमेजय से बोले—'राजनू! तक्षक अमृत पीकर अजर-अमर हो गया है, अतः उसका वध सम्भव नहीं, तुमने अपने यज्ञ कुण्ड में अभिचार कर्म द्वारा बहुत से निरपराध सर्पों की बलि दे दी है, अब इस हिंसा को तुम्हें बन्द कर देना चाहिए। तुम्हारे पिता को तक्षक ने डसा है, किन्तु उनकी मृत्यु उसके विष से नहीं हुई, वे पहले ही योगसमाधि

ले चुके थे।'

'हे शौनक! इस प्रकार बृहस्पति जी के समझाने पर जनमेजय ने उनकी आज्ञा मानते हुए वह अभिचार यज्ञ बन्द कर दिया। माया के वशीभूत होकर मनुष्य मृत्यु के, हानि के, लाभ के तथा विभिन्न परिणामों के लिए उनके निमित्त कारणों को ही दोषी मानने लगता है, किन्तु सत्य तो यह है कि सब अपने-अपने प्रारब्ध के अनुसार ही अपने कर्मों का फल भोगते हैं।''

तब शौनकजी ने वेदव्यास जी के शिष्यों द्वारा वेद के विभाजन के विषय में प्रश्न किया। सूतजी ने उनकी जिज्ञासा जानकर उनको इस विषय में बताया—''अपनी मनोवृत्तियों को रोक लेने पर मनुष्य को अपने भीतर एक अनाहत नाद सुनाई देता है। योगीजन उसी की उपासना करते हैं। उसी अनाहत नाद से ॐकार प्रकट हुआ है, जो स्वयं अव्यक्त व अनादि है और परमात्मा स्वरूप होने से स्वयं प्रकाश भी है। ब्रह्म के स्वरूप का बोध ॐकार ही कराता है। यही ॐकार सम्पूर्ण मंत्रों, वेदों, उपनिषदों का सनातन बीज है। ॐकार के तीनों वर्ण—'अ' 'उ' और 'म' सत्, रज, तम त्रिगुणों तथा ऋक्, यर्जु और साम तीन नामों/वेदों, भूः भुवः और स्वः—तीन अर्थों, जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन वृत्तियों को प्रकट करते हैं। इसी ॐकार से समस्त अक्षर व वर्णमाला की रचना ब्रह्मा ने अपने चार मुखों से की है और उससे (प्रत्येक मुख से एक) चार वेद प्रकट किए। ब्रह्माजी के पुत्रों ने उन वेदों का ज्ञान बांटा और प्रसार किया। फिर लोगों की सामर्थ्य व बुद्धि कम हो जाने पर मेरे पिता व्यास जी ने वेदों को चार भागों में बांटा और अपने चार शिष्यों में उनकी संहिताएं बनाकर शिक्षा दी।'

'हे शौनक! 'बह्वृच' नामक ऋक्-संहिता पैल ऋषि को, 'निगद' नामक युजः संहिता वैशम्पायन जी को, सामश्रुतियों की 'छन्दोग्संहिता' जैमिनी ऋषि को और सुमन्तु ऋषि को 'अथर्वाङ्गिरस संहिता को मेरे पिता ने अध्ययन कराया। बाद में लोगों की सरलता के लिए पैल ऋषि ने अपनी संहिता को दो भाग कर इन्द्रप्रमिति और बाष्कल नामक दो शिष्यों को अलग-अलग बांटकर शिक्षा दी। बाष्कल ने अपने भाग की संहिता के चार भाग कर—बोध, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र को पढ़ाया। इन्द्रप्रमिति ने माण्डूकेय को अपनी संहिता को बिना बांटे अध्ययन कराया। माण्डूकेय ने देवमित्र तथा देवमित्र ने सौभरि आदि शिष्यों को उस संहिता का अध्ययन कराया। माण्डूकेय से उनके पुत्र शाकल्य ने भी अध्ययन किया और उस संहिता के पांच भाग करके अपने पांच शिंष्यों को (वात्स्य, मुद्‌गल, शालीय, गोखल्य और शिशिर) एक-एक भाग की शिक्षा दी तथा जातुकर्ण्य नामक एक और शिष्य को भी पढ़ाया। जातुकर्ण्य ने संहिता के तीन भाग करके बलाक, वैज, बैताल और विरुज को तत्सम्बन्धि निरुक्त के साथ पढ़ाया।'

'उधर बाष्कल के पुत्र बाष्कलि ने सब शाखाओं से एक 'वालखिल्य' नामक

शाखा की रचना की। उसे बालायनि, भज्य व कासार ने सीखा। इन ब्रह्मऋषियों ने पूर्वोक्त वर्णित सम्प्रदायानुसार ऋग्वेदीय 'षड्वच' शाखाओं को धारण किया। वेदों के विभाजन के इस इतिहास को श्रवण करने वाला भी पापमुक्त हो जाता है।'

'हे शौनक! वैशम्पायन द्वारा हुए ब्रह्महत्या जनित पाप के प्रायश्चित के लिए उनके कुछ शिष्यों ने एक व्रत का अनुष्ठान किया और वे सब इस कारण 'चरकाध्वर्यु' कहे गए। तब वैशम्पायन के एक अन्य शिष्य याज्ञवल्क्य ने 'चरकाध्वर्यु' की उपेक्षा करते हुए स्वयं गुरु के पाप के प्रायश्चित का प्रस्ताव रखा, इस पर वैशम्पायन क्रुद्ध हो गए और बोले—'मुझे तुम्हारे जैसे ब्राह्मणों का अपमान करने वाले शिष्य की आवश्यकता नहीं, मेरी दी हुई शिक्षा को यहीं त्याग कर लौट जाओ।' याज्ञवल्क्य देवरात के पुत्र थे। उन्होंने तुरन्त गुरु की आज्ञा मान उनके द्वारा सीखे यजुर्वेद का वमन कर दिया। इस प्रकार शिक्षा का त्याग कर दिया और अपने गुरु के पास भी जो श्रुतियां न हों—ऐसी श्रुतियां प्राप्त करने के लिए उन्होंने सूर्योपासना आरम्भ की। उधर कुछ मुनियों ने यजुर्वेद को वमन रूप में देखा तो उसे लेने को ललचा उठे, किन्तु ब्राह्मण होकर मुख से उगले हुए मंत्रों को ग्रहण करना उचित न था, अतः उन्होंने तीतर बनकर उस संहिता को चुरा लिया। उन्हीं से यजुर्वेद की परम रमणीय शाखा 'तैत्तिरीय' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इधर याज्ञवल्क्यजी की स्तुति से प्रसन्न होकर सूर्य उनके सामने अश्व रूप में प्रकट हुए और याज्ञवल्कय ऋषि के अनुसार उन्हें ऐसे यजुर्वेदीय मंत्रों का उपदेश दिया, जो किसी को भी प्राप्त न थे। तब याज्ञवल्कय ने उन असंख्य मंत्रों से यजुर्वेद की 15 शाखाएं बनाईं जो 'वाजसनेय' (घोड़े के रूप में सूर्य की कही हुई होने से) नाम से प्रसिद्ध हुईं तथा कण्व, माध्यन्दिन आदि ऋषियों ने उनकी शिक्षा ले उन्हें ग्रहण किया।'

'जैमिनीजी ने सामसंहिता का अध्ययन किया था। उन्होंने अपने पुत्र सुमन्तु और पौत्र सुन्वान् को सामसंहिता दो भागों में बांटकर पढ़ाई। जैमिनी के शिष्य सुकर्मा ने भी वह संहिताएं जैमिनी से पढ़ी और उसने सामवेद की एक हजार संहिताएं बना दीं। सुकर्मा के शिष्यों—हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि व आवन्त्य ने उनका अध्ययन कर उनको धारण किया। पौष्यञ्जि और आवन्त्य के 500 शिष्यों ने उनमें एक-एक संहिता का अध्ययन किया और वे औदीच्य सामवेदी तथा प्राच्य सामवेदी कहलाए। पौष्यञ्जि के अन्य पांच शिष्यों—लौंगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुसीद और कुक्षि ने शेष 500 संहिताओं का (एक ने 100 का) अध्ययन किया। हिरण्यनाभ ने अपने शिष्य कृत को 24 संहिताएं पढ़ाईं और शेष आवन्त्य ने अपने शिष्यों को दे दीं। इस प्रकार सामवेद का विस्तार हुआ।'

'अथर्ववेद का ज्ञान सुमन्तु ऋषि ने प्राप्त किया था। उनसे कबन्ध नामक शिष्य ने वह संहिता प्राप्त की और उसके दो भाग करके पथ्य और वेददर्श को पढ़ाई।

वेददर्श के चार (शौल्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष, पिप्पलायनि) तथा पथ्य के तीन (कुमुद, शुनक व जाजलि) शिष्यों ने इन दो-दो संहिताओं का अध्ययन किया। शुनक के शिष्य बभ्रु व सैन्धवायन ने तथा सैन्धवायन के सावर्ण्य, नक्षत्रकल्प, शान्ति, कश्यप, आंगिरस आदि कई शिष्यों ने भी इन संहिताओं का अध्ययन किया। (अथर्ववेद से ही बाद में आयुर्वेद की उत्पत्ति हुई।) अब पुराणों के विषय में सुनो।'

'पुराणों के 6 आचार्य प्रसिद्ध हैं—त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत। मेरे पिता से इन्होंने एक-एक पुराण संहिता पढ़ी थी। मेरे पिता ने स्वयं भगवान व्यास से इनको पढ़ा था। मैंने इन छह आचार्यों से सभी संहिताओं का अध्ययन किया। इन 6 के अतिरिक्त 4 मूल संहिताएं भी थीं, जिन्हें कश्यप, सावर्णि, परशुराम शिष्य अकृतव्रण तथा मैंने व्यास शिष्य और मेरे पिता रोमहर्षणजी से पढ़ा था। पुराणों के दस लक्षण—सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था (प्रलय), हेतु और अपाश्रय हैं। इनमें महापुराणों में दसों तथा छोटे पुराणों में 5 लक्षण मिलते हैं। ऐसे लक्षणों से युक्त छोटे-बड़े सब मिलाकर कुल अट्ठारह पुराण हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुड़पुराण, नारदपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण और ब्रह्माण्ड पुराण। इस प्रकार वेदों और पुराणों के विषय में तुमसे कह दिया। यह प्रसंग सुनने व पढ़ने वालों के ब्रह्मतेज की अभिवृद्धि करता है।"

तब शौनक ऋषि बोले—"हमने सुना है कि मृकण्ड ऋषि के पुत्र मार्कण्डेयजी चिरायु हैं। वे प्रलय में भी जीवित रहे थे, जबकि हम उन्हें श्रेष्ठ भृगुवंशी के रूप में उत्पन्न हुआ जानते हैं। आप श्रेष्ठ वक्ता हैं। कृपापूर्वक हमारी समस्त शंकाओं का समाधान आपने किया है। अब कृपया मार्कण्डेयजी के विषय में हमारी शंका का निवारण भी कीजिए।"

सूतजी ने कहा—"लोगों का भ्रम मिटाने के लिए तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि इस प्रसंग में नारायण की महिमा छिपी है, जो गान करने वालों के पापों को धो डालती है। सुनो, मैं तुमको यह कथा भी सुनाता हूं।'

'मृकण्ड ऋषि के पुत्र मार्कण्डेयजी ने वेदों का विधिपूर्वक अध्ययन किया, आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया और वृक्षों की छाल मात्र को ही धारण कर, जटाएं बढ़ाए हुए अग्निहोत्र, गुरुवन्दन, सूर्योपस्थान, ब्राह्मण-सत्कार, मानस पूजा आदि द्वारा तपस्या और स्वाध्याय में तत्पर रहते हुए करोड़ों वर्ष तक भगवान की आराधना की और मृत्यु पर विजय पा ली। इस प्रकार सबको आश्चर्यचकित कर एकाग्रचित्त से भगवान को ही समर्पित रहते हुए उन्होंने 6 मन्वन्तर व्यतीत किए। तब इन्द्र उनके तप से भयभीत व शंकित होकर विघ्न डालने लगे। उन्होंने अप्सराओं, गंधर्वों, काम, बसन्त,

मलयानित, लोभ व मद आदि को मार्कण्डेयजी के तप में विघ्न डालने को भेजा। तब मार्कण्डेयजी के आश्रम में जो हिमालय के उत्तरार्ध पुष्पभद्रा नदी के तट पर स्थित हैं, वे सब गए और इन्द्राज्ञा का पालन करने लगे। कामदेव ने अपने पांच बाणों—शोषण, दीपन, सम्मोहन, तापन और उन्मादन को लक्ष्य पर ताना, पुञ्जिकस्थली नामक अप्सरा ने मार्कण्डेयजी को रिझाना आरम्भ किया। बसन्त आदि ने सहयोगी वातावरण तैयार किया, परन्तु मार्कण्डेयजी पर उनके समस्त उद्योग निष्फल हो गए, वे तपलीन ही रहे।'

'इन्द्र को कामदेव की सैन्य सहित पराजय देखकर बहुत हैरानी हुई। तब नर व नारायण मार्कण्डेयजी के सम्मुख प्रकट हुए। मार्कण्डेय ने उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। तब प्रसन्न होकर नर-नारायण ने उनसे वर मांगने को कहा। तब मार्कण्डेय जी ने उनकी माया देखने की इच्छा प्रकट की। 'तथास्तु' कहकर नर-नारायण बद्रिकाश्रम को लौट गए। मार्कण्डेयजी अपने आश्रम पर प्रतीक्षा करने लगे कि उनको भगवान की माया के दर्शन कब होंगे। वे सर्वत्र भगवान के दर्शन करते हुए, पूजा करते माया को देखने की इच्छा का चिन्तन करते रहते।'

'एक दिन संध्या समय जब वे नदी तट पर उपासना में तन्मय हो रहे थे तब भयानक शोर, विकट आंधी और घोर शब्द के साथ वर्षा आरम्भ हो गई। बादल गड़गड़ाने और बिजली चमकने लगी। आंधी के वेग से जल उछलने लगा, बाढ़-सी आ गई और देखते-ही-देखते समुद्र ने पूरी पृथ्वी को डुबो दिया। फिर समस्त दिशाओं और लोकों को भी डुबो दिया। पूरा ब्रह्मांड ही प्रलय जैसा जलमग्न हो गया, तब घबराकर मार्कण्डेय जी प्राण रक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगे, किन्तु स्थान कहां था? घोर अंधकार में कुछ सूझता न था। जल के वेग के थपेड़े और विस्फोटक ध्वनि कान फाड़े दे रही थी। वे लाखों करोड़ों वर्षों तक उन लहरों, मगरों आदि जन्तुओं, विभिन्न रोगों तथा अंधकार से भयभीत हो इधर-उधर भागते रहे। कभी वे बेहोश हो जाते, कभी चिल्लाने लगते, कभी उन्हें लगता कि वे मर गए हों इस प्रकार वे विक्षिप्त से हो गए और वे विष्णु माया से विमोहित हो गए।'

'एक बार उन्हें पृथ्वी के टीले पर एक बरगद का वृक्ष दिखा। उसमें ईशान कोण पर पत्तों से बन गए एक दोने में एक अति आकर्षक शिशु लेटा हुआ दिखाई दिया। वह अपने हाथों से पैर का अंगूठा पकड़कर चूस रहा था। उस दिव्य शिशु को देखकर मार्कण्डेय की सारी थकावट दूर हो गई। शरीर पुलकित हो गया। यह कौन है? कहां से आया? यहां क्या कर रहा है? आदि प्रश्न उनके हृदय में उठने लगे। तब वे उस शिशु के पास सरके, किन्तु उनकी श्वास से खिंचकर वे उसके उदर में जा पहुंचे। शिशु के उदर में अंतरिक्ष, पृथ्वी, तारे आदि सम्पूर्ण सृष्टि उन्होंने देखी जो प्रलय से पूर्व थी। वहां उन्होंने अपना आश्रम और स्वयं को भी देखा। फिर वे

आश्चर्यचकित होते हुए शिशु की निःश्वास से उदर से निकलकर बाहर प्रलय-जल में गिर पड़े और वहीं बरगद के वृक्ष के पत्तों के दोने में सोए हुए शिशु को देखा। तब मार्कण्डेयजी अत्यंत आश्चर्य और हर्ष से पुलकित हो उस शिशु की दिव्यता से प्रभावित हो उसे गले लगाने को बढ़े तो सब कुछ अन्तर्धान हो गया और उन्होंने स्वयं को पूर्ववत अपने आश्रम में बैठा पाया। तब मार्कण्डेयजी को अभास हुआ कि जो कुछ उन्होंने सत्य के समान देखा और भोगा—वह सब तो मात्र माया थी, सत्य नहीं था। यह सोचकर उन्हें रोमांच हो आया और वे मायापति भगवान ही को माया से मुक्ति का एकमात्र उपाय जानकर उन्हीं की शरण में स्थिर हो गए।'

'उसी समय पार्वती व अन्य गणों के साथ नन्दी पर नभ मार्ग से जाते शंकरजी ने मार्कण्डेय को देखा। तब पार्वतीजी मार्कण्डेय के प्रति अति वात्सल्य से भरकर शिव से बोलीं—'स्वामी! उस ब्राह्मण को देखिए। तूफान के बाद शान्ति के समान शान्त अन्तःकरण से वह बैठा है। आप समस्त सिद्धियों के दाता हैं। कृपाकर उसे इसके तप का फल दीजिए।' तब शिव बोले—'हे प्राणप्रिय! यह ऋषि लोक-परलोक की कुछ इच्छा नहीं रखता। इसे मोक्ष तक की इच्छा नहीं है, यह भगवान के चरणकमलों की भक्ति प्राप्त कर चुका है, इसे हमारी कोई आवश्यकता नहीं है तो भी मैं इससे बात करूंगा, क्योंकि संतों के साथ समागम से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।' तब शिव-पार्वती अन्य गणों के साथ मार्कण्डेयजी के पास पहुंचे। मार्कण्डेय उस समय पूरी तन्मयता से भगवद् भाव में डूबे थे, उन्हें स्वयं का और जगत् का भी पता न था अतः उन्हें शिव आदि के आगमन का पता न चला। शिव ने यह बात जान ली और वे मार्कण्डेय के अन्तःकरण में प्रविष्ट हो गए। तब शिवजी को अपने अन्तर में देख मार्कण्डेयजी ने आंखें खोलीं।'

'साक्षात् शिव को पार्वती व गणों सहित सामने देखकर उन्होंने गद्गद होकर सबको प्रणाम किया। फिर बोले—'हे त्रिगुणातीत प्रभु शिव! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?' तब शिव सन्तुष्ट होकर बोले—'ब्रह्मा, विष्णु और मैं वरदाताओं के स्वामी हैं। अतः हमारा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। मरणशील मनुष्य को भी अमरत्व प्राप्त हो जाता है। अतः तुम अपना अभीष्ट वर मांग लो।' ब्राह्मणों पर तो मैं, विष्णु व ब्रह्मा सदा प्रसन्न ही रहते हैं, क्योंकि वे सद्गुणों व शांति से मुक्त हो सदैव हमारा ही चिन्तन किया करते हैं।'

'तब मार्कण्डेय जी बोले—'आपके दर्शन हो जाने के बाद मांगने को शेष ही क्या रह जाता है? आप पूर्ण हैं। भक्तों की कामना पूर्ण करते हैं। मुझसे वर मांगने का आदेश देते हैं, तो यही वर दीजिए कि आपमें और भगवान के भक्तों में मेरी अविचल भक्ति सदा बनी रहे।' तब शिवजी ने कहा—'ऐसा ही हो। कल्प पर्यंत तुम्हारा यश फैले और तुम अजर-अमर होओ। तुम्हारा ब्रह्मतेज सदा अक्षुण्ण हो, तुम त्रिकालज्ञ

होओ और पुराणों का आचार्यत्व भी तुम को प्राप्त हो, ऐसा मैं वरदान देता हूं।'

'इस प्रकार हे शौनक! मार्कण्डेय को अमरत्व प्राप्त हुआ तथा जो उन्होंने विष्णु माया को भोगा वह भी मैंने तुमको कहा। वह जो प्रलय जैसी स्थिति उन्होंने भोगी थी वह क्षणिक थी और उन्हीं के लिए थी, सर्व साधारण के लिए नहीं, तथापि माया के कारण उन्हें वह लाखों वर्ष लम्बी लगी। अतः इस विषय में तुमको शंका न करनी चाहिए। यह मार्कण्डेय चरित्र भी विष्णुमहिमा से परिपूर्ण है तथा श्रवण-कीर्तन करने वालों को आवागमन चक्र से मुक्त करने वाला है।'' सूतजी बोले।

फिर शौनक जी के पूछने पर सूतजी ने भगवान विष्णु के अंग-उपांग तथा अस्त्रों का रहस्य भी उनको बताते हुए कहा—''हे शौनक! ब्रह्मा आदि ने पाञ्चरात्र आदि तन्त्र ग्रन्थों में भगवान विष्णु की जिन विभूतियों का वर्णन किया है वह तुमसे कहता हूं। भगवान का विराट रूप जो त्रिलोकी के दर्शन कराता है(प्रकृति, सूत्रात्मा, महतत्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा) नौ तत्वों, (पंचमहाभूत, ग्यारह इन्द्रियां) सोलह विकारों से बना है। पृथ्वी उसके चरण, स्वर्ग मस्तक तथा नाभि अंतरिक्ष हैं। सूर्य नेत्र हैं, वायु नासिका हैं, दिशाएं कान हैं। प्रजापति लिंग हैं, मृत्यु गुदा है, लोकपालगण भुजाएं, चन्द्रायन और यमराज भवें हैं। लज्जा ऊपरी होंठ, लोभ नीचे का होंठ, चांदनी दंतावली, भ्रम मुस्कान, वृक्ष रोम, बादल केश हैं। वे अजन्मा भगवान कौस्तुभ मणि के रूप में जीव चैतन्य रूप आत्मज्योति को ही सीने पर धारण करते हैं। उसकी प्रभा को श्रीवत्स रूप में धारण करते हैं। माया को वैजयन्ति माला के रूप में, छन्द को पीताम्बर रूप में तथा ॐकार को यज्ञोपवीत के रूप में धारण करते हैं। सांख्य व योग को मकराकृत कुण्डलों के रूप में, अभय देने वाले ब्रह्मलोक को मुकुट के रूप में, मूल प्रकृति को शेष शैय्या के रूप में, धर्म-ज्ञानादि युक्त सत्वगुण को नाभि कमल के रूप में, इन्द्रिय व शरीर सम्बन्धी शक्ति से युक्त प्राणतत्व को कौमुदि गदा के रूप में, जलतत्व को पांचजन्य शंख के तथा तेज सत्व रूप को सुदर्शन चक्र के रूप में धारण करते हैं। आकाश तत्व को खड्ग के रूप में, तमोमय अज्ञान को ढाल, काल को शाङर्ग धनुष, कर्म को तरकश तथा इन्द्रियों को बाणों के रूप में धारण करते हैं। क्रियाशक्ति युक्त मन ही उनका रथ है। सूर्यमण्डल ही उनकी पूजा का स्थान व अन्तःकरण की शुद्धि ही मनादीक्षा है। अपने समस्त पापों को नष्ट कर लेना ही भगवान की पूजा है।'

'ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान व वैराग्य यह छह पदार्थ हैं। 6 पंखुड़ियों वाला कमल है, जो उनके हाथ में रहता है। धर्म व यश चंवर और व्यंजन (पंखे) के रूप में तथा अपने निर्भय धाम वैकुण्ठ को छत्र रूप में भगवान धारण करते हैं। तीनों वेद ही गरुड़ रूप में अन्तर्यामी परमात्मा का वहन करते हैं। आत्मस्वरूप भगवान से कभी न अलग होने वाली आत्मशक्ति ही लक्ष्मी हैं। भगवान के पार्षद उनके

स्वाभाविक गुण तथा द्वारपाल अष्ट सिद्धियां हैं। भगवान विष्णु ही वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न व अनिरुद्ध इन चार मूर्तियों में अवस्थित होने से चतुर्व्यूह रूप हैं। इस प्रकार उनके अंग-उपांग व आयुधों का चिन्तन करने वाला परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तथा पवित्र मन से प्रातःकाल इसका श्रवण, पाठ करने से हृदय में रहने वाले परमात्मा को साक्षात कर लेता है।"

फिर शौनकजी के कहने पर सूतजी ने सौरगण आदि का वर्णन करते हुए श्रीमद्‌भागवत की विषय सूची को संक्षेप में दुहराया और विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या भी बताई जो इस प्रकार है—

सूतजी ने बताया—"ब्रह्मपुराण में 10,000, पद्‌म पुराण में 55,000, विष्णु पुराण में 23,000, शिवपुराण में 24,000, श्रीमद्‌भागवत् पुराण में 18,000, नारद पुराण में 25,000, मार्कण्डेयपुराण में 9,000, अग्निपुराण में 15,400, भविष्य पुराण में 14,500 ब्रह्मवैवर्तपुराण में 18,000, लिंग पुराण में 11,000, वाराहपुराण में 24,000, स्कन्द पुराण में 81,100, वामनपुराण में 10,000, कूर्मपुराण में 17,000, मत्स्यपुराण में 14,000, गरुड़ पुराण में 19,000, और ब्रह्माण्ड पुराण में 12,000 श्लोक हैं। इस प्रकार सब अट्‌ठारह पुराणों के कुल श्लोक संख्या चार लाख हैं। (कुछ स्थानों में 'वायुपुराण' तथा 'देवी भागवत् पुराण' आदि का भी वर्णन मिलता है।) ये समस्त उपनिषदों के सार हैं और इनका एक मात्र लक्ष्य श्रवण करने वालों का कैवल्य मोक्ष है।'

'जैसे समस्त क्षेत्रों में काशी श्रेष्ठ है, वैसे ही समस्त पुराणों में भागवत् पुराण श्रेष्ठ है। इसमें कर्मों की आत्मन्तिक निवृत्ति भी ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति से युक्त है। यह सर्वथा दोष रहित व अद्वितीय है। संत सभा में दूसरे पुराण तभी तक शोभा पाते हैं, जब तक भागवत्पुराण के दर्शन नहीं होते। भाद्रपद मास की पूर्णिमा के दिन स्वर्ण सिंहासन पर रखकर यह पुराण दान करने से परम गति प्राप्त होती है। इसको श्रवण, मनन व पाठ करने वाला समस्त पापों से छूटकर मुक्त हो जाता है तथा भगवान की भक्ति पा लेता है। यह भगवत् ज्ञान का श्रेष्ठ प्रकाशक है। इसे नारायण भगवान ने पहले ब्रह्मा के लिए प्रकट किया था। फिर ब्रह्मा ने नारद को और नारद ने व्यासजी को सुनाया। व्यास ने शुकदेव जी को और शुकदेव ने करुणावश राजा परीक्षित को सुनाया और अब मैंने आप लोगों को सुनाया है। जिन देवताओं के आराध्य भगवान विष्णु के नामों का संकीर्तन व श्रवण समस्त जीवों के पापों को धो डालता है और जिन श्रीवासुदेव के चरणों में किया गया समर्पण सदा के लिए समस्त भयों व शोकों का नाश कर परमानन्द से भर देता है। उन मुक्तिदाता और कृपालु भगवान नारायण के श्री चरणों में मेरा प्रणाम हो, उन सर्वशक्तिमान, मंगलकारी, अच्युत व वर्णनातीत भगवान श्रीहरि के चरण कमलों में मेरा बारम्बार नमस्कार हो।'

□□

श्रीमद्भागवत की आरती

आरति अतिपावन पुराण की।
धर्म-भक्ति-विज्ञान-खान की।।
महापुराण भागवत निर्मल।
शुकमुख विगलित निगम कल्प फल।।
परमानन्द सुधा रसमय कल।
लीला रति रस रस निधान की।।
आरति ....।।
कलिमल मथनि त्रिताप निवारिनि।
जन्म मृत्युभय भव भय हारिनि।।
सेवत सतत सकल सुखकारिनि।
सुमहौषधि हरिचरित गान की।।
आरति ....।।
विषय विलास विमोह विनाशिनि।
विमल विराग विवेक विकासिनि।।
भगवत्तत्व रहस्य प्रकाशिनि।
परम ज्योति परमात्म-ज्ञान की।।
आरति ....।।
परमहंस मुनि मन उल्लासिनी।
रसिक हृदय रस रास विलासिनी।।
भुक्ति, मुक्ति, रतिप्रेम सुदासिनी।
कथा अकिञ्चनप्रिय सुजान की।।
आरति ....।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। सृष्टि की रचना, उसका पालन एवं उसका विनाश यही तीनों क्रम सृष्टि में युग-युगान्तरों से चले आ रहे हैं। जब-जब पृथ्वी पर पाप बढ़ता है, तब-तब भगवान विष्णु मानव रूप में पृथ्वी पर अवतरित होते हैं -उस पाप का नाश करने के लिए। श्रीमद्भागवत पुराण भगवान श्रीकृष्ण रूप में भगवान की अद्भुत लीलाओं और चमत्कारों का कथा संग्रह है। श्रीमद्भागवत पुराण की कथा पढ़ने एवं श्रवण करने मात्र से ही मनुष्य हर प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। श्रीमद्भागवत पुराण भगवान श्रीकृष्ण की अलौकिक लीलाओं को दर्शाता एक अनमोल पुराण

गोल्ड बुक्स (इण्डिया)